

**TEXT PROBLEM
WITHIN THE
BOOK ONLY**

**THE BOOK WAS
DRENCHED**

**TEXT FLY WITHIN
THE BOOK ONLY**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182868

UNIVERSAL
LIBRARY

विद्यापुस्तकमाला नं० ६

अलंकारमंजूषा

लेखक

लाला भगवानदीन



प्रकाशक

रामसहायलाल

मालिक विद्याप्रचारक बुकडिपो

कचहरी रोड, गया ।

मूल्य १।)

अलंकारमंजूषा

अर्थात्

हिन्दी-साहित्य की परीक्षाओंक पराक्षार्थियोंके लिये

अलंकार विषय का एक ग्रंथ

जिसमें

हिन्दी भाषा के अलंकारों की विशद
व्याख्या की गई है



लेखक

ला० भगवानदीन



प्रकाशक

रामसहायलाल

मालिक विद्याप्रचारक बुकडिपो

कचहरी रोड-गया



बी. एल्. पावगी द्वारा

द्विचिन्तक प्रेस, रामघाट, बनारस सिटी में मुद्रित

चतुर्थबार १०००]

सन् १९२५

[मूल्य १।) रुपया

जातीयगान

बन्दों श्री भरतभूमि सर्व सेव्य माता ।

चंदन सम तापहरनि, सस्यपूर्ण स्याम बरानि,
विषुल सुजल सुफल धरनि, धवल सुजस ख्याता ॥ १ ॥

हिमागिरि के तुंग श्रृंग, क्रीट मुकुट उत्तमंग,
युगल बाहु कच्छ बंग, अभय बर प्रदाता ॥ २ ॥

मिधु ब्रह्मपुत्र भेस, लहरें युग ओर केस,
बदरी बन मन सुवेश, बिमल बुद्धि-खाता ॥ ३ ॥

मध्यदेश मध्यदेश, बिन्ध्या कटिपट सुवेश,
उदर बर वरार देश, मदन लखि सिहाता ॥ ४ ॥

पूर्वी पच्छिमी घाट, युगल जंघ जानु ठाट,
सिंहलहू निज ललाट, चरण पै नवाता ॥ ५ ॥

गंगा जमुना सुठार, पुष्टिप्रदा दुग्ध-धार,
छुवत पियत एक बार, जम भय भगि जाता ॥ ६ ॥

चंद-ज्योति मुख-विकास, कुन्द-कुमुद-सुमन हास,
खग-रव बाणी-विलास, सुखद बरद माता ॥ ७ ॥

अतुल अमल रम्य रूप, सफल सजल बाग कूप,
भव्य दिव्य छवि अनूप, नमो नमो माता ॥ ८ ॥

बन्दों श्री भरतभूमि सर्व सेव्य माता ।

वक्तव्य

हिन्दी काव्य का रसास्वादन करने के लिये अलंकारों का जानना बहुत जरूरी है। अनेक अलंकार-ग्रंथ मौजूद हैं। उनके होते हुए भी यह ग्रन्थ हमने क्यों लिखा, इसका कारण यह है कि इस विषय के प्रायः समस्त ग्रंथ ऐसे देखे जाते हैं जिन्हें पढ़ाने में शिष्यों को संकोचभाव धारण करना पड़ता है, अर्थात् कोई गुरु अपने शिष्य को, कोई पिता अपने पुत्र को या कोई बड़ा भाई अपने छोटे भाई को निःसंकोच भाव से नहीं पढ़ा सकता। युवतीकन्याओं को ये ग्रंथ पढ़ाते हुए इतना संकोच हो सकता है कि उन्हें वे ग्रन्थ आखिरी आंत पढ़ाये ही नहीं जा सकते।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने कुछ परीक्षाओं प्रचलित की हैं जिनमें नवयुवक लड़के और नवयुवती कन्याओं सम्मिलित होने लगी हैं। हिन्दी काव्य के कुछ अच्छे ग्रंथ भी पाठ्य पुस्तकों में रखे गये हैं। परन्तु अलंकार विषय समझे बिना काव्य को पूर्णतया समझ लेना दुरूह ही है। और यह विषय शिष्य के समझाये बिना आ नहीं सकता। कोई गुरु अलंकार विषय का कोई ग्रंथ शिष्य को निःसंकोच भाव से पढ़ा नहीं सकता। यही कठिनता दूर करने के लिये हमने यह ग्रंथ लिखा है।

प्राचीन ग्रंथों की अपेक्षा इस ग्रन्थ में नीचे लिखी विशेषताएँ हैं:-

१-अलंकार की परिभाषा सुनकर अत्यंत स्पष्ट और सरल पथ में शक्ती गई है।

२-पुनः जहाँ जरूरत जान पड़ी है वहाँ गद्य में उसकी विशद याचना कर दी गई है।

३-प्रत्येक अलंकार के कई एक उदाहरण दिये गये हैं।

४-उदाहरण प्राचीन काव्य से चुने गये हैं ।

५-जहाँ तहाँ विशद विपनियों और सूचनायें भी दी गई हैं ।

६-अलंकारों की बारीकियाँ और भेद गद्य में समझाये गये हैं ।

७-यह समस्त ग्रंथ कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति को निःसंकोच भाव से पढ़ा सकता है ।

८-उर्दू, फारसी तथा अँगरेज़ी भाषा के अलंकारों के साथ हिंदी अलंकारों का मिश्रण भी दर्शाया गया है ।

९-कई अलंकारों के विषय में प्राचीनों से मतभेद और अपनी स्वतंत्र सम्मति भी लिखी गई है ।

१०-कुछ अलंकारों के दोष भी लिखे गये हैं ।

मनुष्य से भूल होती है । इन ग्रंथ में भी भूलें होंगी ! सूचित किये जाने पर अगले संस्करण में भूलों का सुधार कर दिया जायगा ।

विनीत-

भगवानदीन

सूची

नाम	पृष्ठ
अलंकार (व्याख्या)	१
अंत्यानुपास	१०
अतद्गुण	१६६
अतिशयोक्ति	८६
अत्युक्ति	२२१
अधिक	१५०
अनन्वयोपमा	४८
अनुगुण	१६८
अनुशा	१८६
अनुपास	३
अनुपास के दोष	२३८
अन्योक्ति	१३७
अन्योक्ति के दोष	२४५
अन्योन्य	१५३
अपह्नुति	७१
अप्रस्तुत प्रशंसा	१२३
अर्थान्तरम्यास	१७५
अर्थालंकारों के दोष	२४०
अल्प	१५२
अवज्ञा	१८७
असंगति	१४३
असंभव	१४३

(घ)

नाम	पृष्ठ
आक्षेप	१३५
आवृत्ति दीपक	१००
उत्प्रेक्षा	७६
उत्प्रेक्षा के दोष	२४४
उदात्त	२२०
उदाहरण	१०७
उन्मीलित	१८६
उपमा	३५
उपमा के दोष	२४०
उपमेशोपमा	४८
उल्लास	१८५
उल्लेख	६४
एकावली	१५७
कारक दीपक	१०२
कारण मात्रा	१५६
काव्यलिङ्ग	१७३
काव्यार्थापत्ति	१७२
क्रम	१५६
गम्योत्प्रेक्षा	८६
गूढोक्ति	२१०
गूढोत्तर	२०३
चित्र	१२
चित्रोत्तर	२०५
छेकानुपास	३

नाम	पृष्ठ
छेकोक्ति	२१५
तद्गुण	१६५
तिस्कार	१८६
तुल्ययोगिता	६६
दीपक	६६
दृष्टान्त	१०६
देहरीदीपक	१०३
निदर्शना	११०
निरुक्ति	२२३
परिकर	१२०
परिकरांकुर	१२१
परिणाम	६४
परिवृत	१६५
परिसंख्या	१६६
पर्याय	१६३
पर्यायोक्ति	१३१
पिहित	२०८
पुनरुक्ति प्रकाश	१६
पुनरुक्ति वशाभास	१६
पूर्वोपमा	३६
पूर्वरूप	१६७
प्रतिवस्तूपमा	१०४
प्रतिषेध	२२४
प्रतीप	५१

(च)

नाम	पृष्ठ
प्रत्यनीक	१७१
प्रमाण	२२५
प्रस्तुतांकुर	१२६
प्रहर्षण	१८३
प्रहेलिका	२१
प्रौढोक्ति	१७६
भाविक	२१६
भाषा समक	२५
भ्रान्ति-(भ्रम)	६६
माळा दीपक	१०३
मालोपमा	४४
मिथ्याध्यवसित	१८१
मीलित	१६६
मुदा	१६१
यमक	२३
यमक का दोष	२४०
युक्ति	२१२
रत्नावली	१६४
रसनोपमा	४७
रसवत	२३७
रूपक	५४
लजित	१८२
लजितोपमा	४६
लाटानुपास	८

नाम	पृष्ठ
लुप्तोपमा	३७
लुप्तोपमा सूचक चक्र	४२
लेश	१६०
लोकोक्ति	२१४
वक्रोक्ति (शब्द)	२६
वक्रोक्ति (अर्थ)	२१५
विकल्प	१६८
विकस्वर	१७८
विचित्र	१५०
विधि	२२५
विनोक्ति	११६
विप्ता	२६
विभावना	१४०
विरोधाभास	१३८
विवृतोक्ति	२११
विशेष	१५३
विशेषरू	२०१
विशेषकोन्मीक्षित	२०२
विशेषोक्ति	१४२
विषम	१४५
विषादान	१८४
वृत्त्यनुप्रास	४
व्यतिरेक	११४
व्याघात	१५५

(ज)

नाम	पृष्ठ
व्याजनिन्दा	१३४
व्याजस्तुति	१३३
व्याजोक्ति	१०६
शब्दालंकारों के दोष	२३७
श्रुत्यनुप्रास	७
श्लेष—(शब्द)	६०
श्लेष (अर्थ)	१२२
संकर	२३३
संदेह	७०
संभावना	१८०
संमृष्टि	२३१
सम	१४८
समाधि	१७०
समासोक्ति	११७
समासोक्ति का दोष	२४५
समुच्चय	१६६
समुच्चयोपमा	४६
सहोक्ति	११५
सामान्य	२००
मार	१५८
सूचक	२०७
स्मरण	६६
स्वभावाक्ति	२१६
हेतु	१३०

धीराम

अलंकारमंजूषा

(पहला पटल)

अलंकार

किसी वाक्य के वर्णन करने का ' चमत्कारिक ' ढंग अलंकार ' कहलाता है। दूसरे शब्दों में यों कहिये कि "जिस सामग्री से किसी वाक्य में रोचकता वा चमत्कार आजाय वह सामग्री ' अलंकार ' कहलाती है "

जैसे गहने पहनने से किसी व्यक्ति का शरीर कुल अधिक रोचक देख पड़ता है, वैसे ही अलंकार से वाक्य की रोचकता बढ़ जाती है। अलंकार ' काव्य का एक आवश्यक अंग है। ऐसा तो नहीं कहा जा सकता कि बिना अलंकार के कविता बनही नहीं सकती, पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि अलंकार से काबिता की मनोहरता बहुत अधिक बढ़ जाती है।

मुख्य अलंकार तीन प्रकार के होते हैं—(१) शब्दालंकार (२) अर्थालंकार और (३) उभयालंकार।

(१) जहां शब्दों में चमत्कार पाया जाय वहां शब्दालंकार कहा जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि यदि उन शब्दों को बदलकर उनके स्थान में उनके पर्यायवाची शब्द

रख दिये जायें तो वह चमत्कार न रहेगा ।

(२) जहां अर्थ में चमत्कार पाया जाय वहां अर्थालंकार माना जाता है । इसका तात्पर्य यह है कि वह चमत्कार निकाल कर यदि उस वाक्य का केवल तात्पर्य कहा जाय तो वह वाक्य बिबकुल सादा और अरोचक हो जायगा । जैसे कहना यह है कि “ अमुक व्यक्ति बड़ा विद्वान है ” । तो इस वाक्य को सीधे यों न कहके कि “ अमुक व्यक्ति बड़ा विद्वान है, ” यों कहें कि (क) अमुक व्यक्ति दूसरा बृहस्पति है, (ख) अमुक व्यक्ति की विद्वत्ता से लज्जित होकर बृहस्पति पोले हो गये हैं, (ग) अमुक व्यक्ति बृहस्पति के समान है, (घ) अमुक व्यक्ति की विद्वत्ता से हारकर बृहस्पति दिन में अपना मुँह नहीं दिखलाते, (ङ) अमुक व्यक्ति मनुष्य नहीं बृहस्पति है इत्यादि, तो इस प्रकार के कथनों में कुछ विशेष चमत्कार आजाता है । इसी चमत्कार को अर्थालंकार कहते हैं । यह अलंकार अर्थ पर निर्भर रहता है । इसलिये इसके शब्द पर्याय-वाची शब्दों से बदल दिये जा सकते हैं ।

(३) ऊपर कहे हुए अलंकारों में से किसी प्रकार के एक से अधिक अलंकारों के सम्मेलन को उभयालंकार कहते हैं, परन्तु उसमें नियम यह है कि जिस अलंकार का मुख्यता समझी जायगी वही अलंकार मान लिया जायगा ।

शब्दालंकार

नीचे लिखे हुए मुख्य १० शब्दालंकार सर्वमान्य हैं:- (१) अनुप्रास (२) चित्र (३) पुनरुक्ति प्रकाश (४) पुनरुक्ति वदाभास (५) प्रहेलिका (६) भाषा समक (७) यमक (८) वक्रोक्ति (९) विप्लवा और (१०) श्लेष ।

(१)-अनुप्रास *

दो०-व्यंजन सम वरु स्वर असम अनुप्रासऽलंकार ।

छेक, वृत्ति, श्रुति, लाट अरु अंत्य पांच विस्तार ॥

बिवरण-जहां व्यंजनों की समानता हो चाहे उनके स्वर मिलें वा न मिलें, उसे अनुप्रास अलंकार कहते हैं। इसके ५ भेद हैं-(१) छेक (२) वृत्ति (३) श्रुति (४) लाट और (५) अन्त्य ।

(१)-छेकानुप्रास

दा०-वर्ण अनेक कि एक की आवृत्ति एकै बार ।

सो छेकानुप्रास है आदि अंत निर्धार ॥

बिवरण-जहां एक अक्षर की वा अनेक अक्षरों की आवृत्ति केवल एक बार हो, चाहे वह आदि में हो चाहे अन्त में । जैसे-
उ० राधा के बर बैन सुनि चीनी चकित सुभाय ।

दाख दुखी मिसरी मुरी, सुधा रही सकुचाय ॥

यहां ' बर ' और ' बैन ' में ' ब ' की 'चीनी' और 'चकित' में ' च ' की, ' दाख ' औ ' दुखी ' में ' द ' की, मिसरी और मुरी में ' म ' की, ओर ' सुधा ' और ' सकुचाय ' में ' स ' की आवृत्ति शब्दों के आदि में हुई है ।

उ० जन रजन भंजन दनुज, मनुज रूप सुरभूष ।

विश्ववदर इव धृत उदर जोवत सोवत सूप ॥

इस उदाहरण में रंजन और भंजन में, दनुज और मनुज

* (नोट)-फारसी, अरबी, तथा उर्दू में अनुप्रास, और यमक अलंकारों को "तजनीस" कहते हैं। हिन्दी की तरह इन भाषाओं में भी इन अलंकारों के अनेक भेद हैं ।

में, बदर और उदर में जीवत और सोवत के अंत में दो दो अक्षरों की आवृत्ति एक बार है। रूप और भूप में अंत में एक अक्षर की आवृत्ति है। विश्व और बदर में सोवत और सूप में आदि में एक एक अक्षर की आवृत्ति है।

(कवित्त)—बाँधे द्वार का करी चतुर चित्त काकरी सो उमिर वृथा करी न राम की कथा करी। पाप को पिनाक गी न जाने नाक नाकरी सु हारिल की नाकरी निरंतर ही ना करी। ऐसी सूमता करी न कोऊ समता करी सुबेनी कविता करी प्रकाश नासु काकरी। देव अरचा करी न ज्ञान चरचा करी न दीन पै दया करी न बाप की गया करी ॥

विवरण—इसमें ' का करी ' और ' का करी ' में तीन अक्षरों की आवृत्ति ' वृथा ' और ' कथा ' में ' थ ' की आवृत्ति, सूमता और समता में तीन अक्षरों की आवृत्ति, अरचा और चरचा में दो की आवृत्ति दया और गया में एक अक्षर की आवृत्ति अंत में है। चतुर ओर चित्त में ' च ' ' त ' की आवृत्ति आदि में है। दीन और दया में ' द ' की आवृत्ति आदि में है।

(२)—वृत्यनुप्रास

दो०—वर्ण अनेक कि एक को जहँ सरि कैयो बार।

सो है वृत्यनुप्रास जो परै वृत्ति अनुसार ॥

विवरण—उक्तानुप्रास की तरह आदि वा अंत में एक वर्ण की वा अनेक वर्णों की समता वृत्तियों के अनुकूल कई बार पड़े उसे वृत्यनुप्रास कहेंगे।

मूचना—इस अलंकार को समझने के लिये पहले यह समझ लेना चाहिये कि हिंदी कविता में वृत्तियाँ तीन हैं—(१) उपनागरिका । (२) परुषा और (३) कोमला । इन्हो तीनों के अन्य नाम क्रम से मैदभी, गौड़ी और पांचाली भी हैं।

(१) माधुर्यगुण सूचक वर्ण अर्थात् टवर्ग को छोड़कर शेष मधुरवर्ण और सानुनासिक वर्ण जिस कविता में हों उसे 'उपनागरिका' वृत्ति कहते हैं । (२) टवर्ग, द्वित्तवर्ण, रेफ और श, ष इत्यादि वर्ण और लंबे समास तथा संयुक्त वर्ण जिसमें अधिक हों उसे 'परुषा' वृत्ति और (३) य, र, ल, व, स, ह और छोटे समास वा समासरहित शब्द जिसमें अधिक हों उसे 'कोमला' वृत्ति कहते हैं । शृङ्गार, करुणा और हास्य रस की कविता उपनागरिका में, रौद्र, वीर, और भयानक रस की कविता परुषा में और शांत, अद्भुत और बाभ्रस रस की कविता कोमला वृत्ति में अच्छी लगती है ।

(उपनागरिका के अनुकूल)

उ०—धर्म धुरीण धीरनयनागर । सत्य सनेहशाल सुखसागर ॥
बिरति बिबेक विनय विज्ञाना । बोध यथार्थ वेद पुराना ॥

पुनः—रघुनंद आनंदकंद कौसलचंद दसरथनंदन ।

पुनः—मनस मुरार देश देशन में कीर्ति गाई, ऐसी चपलई
कहौ छाई है मदन में । नट में न नारि में न नय में न
नैनन में मृग में न मारुत में मीन में न मन में ।

पुनः—सोई जानको पति मधुर मूरति मादमय मंगलमई ।

पुनः—देवबंदिनी के निमिवंशचंदिना के युग
नीके पदकंज मिथिलेशनंदिनी के हैं ।

पुनः दो०—लोपे कोपे इन्द्र लौ रोपे प्रलय अकाल ।

गिरधारी राखे सबै गा गोपी गोपाल ॥

(परुषा वृत्ति के अनुकूल)

दो०—वक्र वक्र करि पुच्छ करि रुष्ट ऋक्ष कपिगुच्छ ।

मुभठ ठट्ट घन घट्ट सम मर्दाई रच्छन तुच्छ ॥

कबित्त-बारि डारि डारौं कुंभकर्णहि बिदारिडारौं, मारौं मेघनादैं भाजु यौ बल अनन्त हौं । कहै पदमाकर त्रिकूट हू को ढाहि डारौं, डारत करेई जातुधानन को अंत हौं । अच्छहि निरच्छ कपि रुच्छ हूँ उचारौं इमि तोम तिच्छ तुच्छन को कछुवै न गंत हौं । जारि डारौं लंकहि उजारि डारौं उपवन फारि डारौं रावण को तों मैं हनुमंत हौं ।

छप्पय-मुंड कटत कहूँ रुंड नटत कहूँ सुंड पटत घन ।
 गिद्ध लसत कहूँ सिद्ध हँसत सुख वृद्धि रसत मन ॥
 भूत फिरत करि बूत भिरत सुर दूत बिरत तहँ ।
 चंडि नचत मन मंडि रचत धुनि डंडि मचत जहँ ॥
 इमि ठानि घोर घमसान अति भूषण तेज कियो अटल ।
 सिवराज साहिसुव खग बल दलि अडोल बहलोल दल ॥

पुनः-क्रुद्ध फिरत अति युद्ध जुरत नहि रुद्ध मुरत भट ।
 खग बजत अरि बग तजत सिर पग सजत चट ॥
 दुक्कि फिरत मद भुक्कि भिरत करि कुक्कि गिरत गनि ।
 रंग रक्त हर संग छकत चतुरंग थकत भनि ॥
 इमि करि संगर अति ही बिषम भूषण सुजस कियो अचल
 सिवराज सुसाहिव खग बल दलि अडोल बहलोल दल ॥

पुनः-खग काक कंक शृगाल । कटकटहि कठिन कराल ॥

(कोमला वृत्ति के अनुकूल)

जैसे-सत्य सनेह सील सुखसागर ।

दो०-स्वामल गौर किशोर बर सुन्दर सुखमायेन ।

कबित्त-ख्याल ही की खोल में अखिल ख्याल खेल खेल
 गाकिल है भूलो दुख दोष की खुस्याली तैं । लाख लाख भांति

अभिलाष लखे खाल अरु अलख लख्यों न लखी लालन की
लाली तैं ॥ हरि हर 'देव' प्रभु सों न पल पाली प्रीति है है
करताली न रिभायो बनमाली तैं ॥ झूठा झिलमिल की झलक
ही में झूठी जल मल की पखाल खल गाली खाल पाली तैं ॥

बावन से रावन से रामजू सों गेलि गेलि खलनि की
खालनि खिलीना ज्यों खिलाइगे । काटे काल व्याल ऐसे बली
बलभद्र ऐसे बली ऐसे बालि से बबूला से बिलाइगे ॥

इन उदाहरणों में र, ख, और ल, को अनेक आवृत्तियां हैं ।

नोट-छेक और वृत्ति अनुशासों श्री अंगरेजी में Alliteration कहते हैं ।
नीचे लिखा हुआ उदाहरण शेक्सपियर ने लाई ऊर्जनी कोलचप करके बहुत
प्रशंसा लिखा है ।

Begot by butcher by bishop bred.

How high His Highness holds his haughty head

पुनः-रूप माला छापा तिलक सरै न एको काम ।

मन कान्छै नान्छै बृथा सान्छै राँछै गम ॥

(३)-श्रुत्यनुप्रास

जहा तालु कंठादि की व्यंजन समता होय ।

सोई श्रुत्यनुप्रास है कहत सुघर कबिलोय ॥

बिबरण-जहां तालु कंठादि स्थानों से उच्चरित होने वाले
व्यंजनों की अर्थात् एक स्थान से उच्चरित होनेवाले वर्णों की
समता हो उसे श्रुत्यनुप्रास कहते हैं ।

स्मरण रहना चाहिये कि:-

(१) अ, आ, क, ख, ग, घ, ङ, ट और (ः) विसर्ग
का उच्चारण कंठ से होता है ।

(२) इ, ई, उ, ऊ, ज, झ, ञ और श का उच्चारण तालु
से होता है ।

- (३) ऋ ऋ, ट, ठ, ड, ढ, ण, र, प का मूर्द्धा से होता है ।
 (४) ल, न, थ, द, ध, न, ल और स का दांती से होता है ।
 (५) उ, ऊ, प, फ, ब, भ, म का उच्चारण होठों से होता है ।
 (६) ए, ऐ का उच्चारण कंठ और तालु से होता है ।
 (७) ओ और औ का उच्चारण कंठ और होंठ से ।
 (८) व का दांत और होंठ से ।
 (९) पंचम वर्ण और अनुस्वार का नासिका से ।

सूचना—इस विचार से जब कविता में ऐसे शब्द रखे जाते हैं जो एक स्थानीय उच्चारण वाले अक्षरों में वगेरे हो तो उस कविता में एक प्रकार की धारा प्रवाहिनी शक्ति और तपुस्वता आती है और उसका सुनना कानों को प्रिय लगता है । इसके विरुद्ध स्वर्ग वाले शब्द कानों में खटकते हैं—जैसे—

तुलसिदास कीर्तन नासादन देखत तुम्हार निटुराई ।

इसमें आधकतर दांती अक्षर आये हैं इससे यह पद बहुत मीठा जान पड़ता है । और 'पर क्या न विषयात्कृष्टता करती विचारोत्कृष्टता' इस रचना में शब्दों का संगठन वंसा नहीं है, इसलिये कानों को कटु जान पड़ता है । इसका तात्पर्य और भी समझ लो । तुलसी और पदप्रकाश की कविता में यह गुण अधिक है ।

(४)—लाटानुप्रास

नोट—शब्द अर्थ एक रहें, अन्वय करतहि भेद ।

सो लाटानुप्रास है भाषत सुकायि अज्वेद ॥

विवरण—(पहले कहे हुए अनुप्रास अक्षरों का अनुप्रास है ।
 वर लाटानुप्रास शब्द का अनुप्रास है) शब्द और उसका अर्थ वही रहै, केवल अन्वय करने से अर्थ में भेद हो जाय

उसे लाटानुप्रास कहते हैं। यह अनुप्रास 'लाट' देशवाले कवियों का निकाला हुआ है। इसी से इसका यह नाम पड़ा है।

उदाहरण

दोहा तीरथ व्रत साधन कहा, जो निम्न दिन हरि गान ।

तीरथ व्रत साधन कहा, विन निम्न दिन हरि गान ॥

यहाँ शब्द और अर्थ दोनों की आवृत्ति है, अतः तात्पर्य में भेद है। अर्थात् जो मनुष्य रात दिन हारिगण गान करता रहे तो उसके लिये तीर्थ व्रत और साधन आवश्यक नहीं हैं जिस तीर्थ व्रत और साधन में रात दिन हारिगण गान का विधान न हो वह तीर्थ व्रत और साधन व्यर्थ है।

दो०—राम हृदय जाके वसे विपति सुमंगल ताहि ।

राम हृदय जाके नहीं, विपति सुमंगल ताहि ॥

जिनके हृदय में राम बसते हैं उसके लिये विपत्ति भी सुमंगल हो जाती है। और जिसके हृदय में राम नहीं है उसके लिये सुमंगल भी विपत्ति हो है।

दो०—औरन को जाँचे कहा, नहीं जाँच्यो शिवराज ? ।

औरन के जाँचे कहा, जा जाँच्यो शिवराज ? ॥

कभी कभी कोई एक शब्द अन्य शब्दों के साथ समास द्वारा मिल जाता है—जैसे

तुरमुती तहखाने गाढ़ गुसुलवाने सूका मिलहखाने कूकत कीस हैं। हिरन हर्मखाने सपाहा है। पुतुसखाने पढ़े पोतखाने औकरंजखाने कीस हैं। भूदत खवाजा माजी खग्ग सौ खपाये खल खानखाने खलन के खरे भये खास ह। खजाने खजाने खरगोस खिलवतखाने खास खाले खसखाने खास खयास हैं।

इस काव्य में भूपन ने सब प्रकार के अनुप्रास एकत्र

दिखलाये हैं। तहखाने, गुसुलखाने, सिलहखाने, हरमखाने सुतुरखाने, पीलखाने करंजखाने, खिलवतखाने और खसखाने इत्यादि शब्दों में 'खाने' शब्द का अर्थ सब जगह एक ही है, परन्तु भिन्न भिन्न शब्दों के साथ समास होने से उन शब्दों के अर्थ भिन्न २ हो जाने से लाटानुप्रास है।

तुरमुती तहखाने, गीदर गुसुलखाने, सूकर सिलहखाने हिरन हरमखाने, स्याही हैं सुतुरखाने, गड़े पोलखाने, करंजखाने कीस हैं, खरगोस खिलवतखाने इत्यादि शब्दों में छेकानुप्रास है।

अतिम दोनों चरणों में 'ख' का आवृत्ति अनेक बार होने से वृत्त्यनुप्रास है।

दो०—मुधा तीर्थ को भ्रमण है, रहैं हरी चित जासु।

मुधा तीर्थ को भ्रमण है, न रहैं हरि चित जासु ॥

(५)—अन्त्यानुप्रास

दो०—व्यंजन स्वर युत एक ने जो तुकान्त में होहि ।

सो अन्त्यानुप्रास है. अरु तुकान्त हू ओहि ॥

विवरण—प्रत्येक छंद में चार चरण होते हैं; चारों चरणों के अन्त्याक्षर 'तुकान्त' कहलाते हैं। इसी तुकान्त को अन्त्यानुप्रास कहते हैं। भाषा काव्य में तुकान्त बहुत अच्छा लगता है। इसी को फारसी तथा उर्दू में काफिया कहने हैं। भाषा काव्य में छः प्रकार के तुकान्त हो सकते हैं:—

१—सर्वान्त्य—जैसे किसी सवैया वा कवित्त (मनहरण) के चारों तुकान्त एक से होते हैं।

२—समान्त्य विषमान्त्य अर्थात् पहले और तीसरे चरण का और दूसरे और चौथे चरण का तुकान्त एक हो जैसे—

(क) जेहि सुमिरत सिधि होय, गणनायक करिवरवदन ।

करहु अनुग्रह सोय, बुद्धिगासि शुभगुणसदन ॥

(ख) मूक होहिं वाचाल, पंगु चढ़ैं गिरिवर गहन ।

जासु कृपा सु दयालु, द्रवहु सकल कलिमल दहन ॥

(ग) कुन्द इंदु सम देह, उमारमण करुणा अयन ।

जाहि दीन पर नेह, करहु कृपा मर्दन मयन ॥

३-समान्त्य-जिसमें केवल दूसरे और चौथे चरण का तुकान्त समान हो-जैसे दोहा का होता है ।

दो०-एक छत्र इक मुकट माणि, सब वर्णन पर जोउ ।

तुलसी रघुवर नाम के, वरण विराजत दोउ

या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोय ।

ज्यों ज्यों भिजै स्याम रँग, त्यों त्यों उज्जल होय ॥

४-विषमान्त्य-जिसमें पहले चरण और तीसरे चरण का तुकान्त एक सा हो-जैसे—

सो०-सुनि केवट के बैन, प्रेम लपेटे अटपटे ।

विहँसे करुणा ऐन, चितै जानकी लखन तन ॥

धराणि धरहु मन धीर, कह विरंचि हरि पद सुमिरि ।

जानत जन की पीर, प्रभु भंजहिं दारुण विपाति ॥

५-सम विषमान्त्य-जिसमें पहले और दूसरे का और तीसरे और चौथे चरण का तुकान्त एकसा हो । जैसे—

चौ०-गुनहु लखन कर हमपर रोषू । कतहु सुधाइहुंते बड़दोषू ॥

देह जानि शंका सबकाहू । वक्र चन्द्रमहिं ग्रसै न राहू ॥

छंद—पद कमल धोइ चढ़ाई नाथ न नाथ उतराई चहौं ।

मोहिं राम राउरि आन दसरथ सपथ सब सांची कहौं ॥

बरु तीर मारहिं लखन पै जब लगि न पाँव पखारिहौं ।

तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पार उतारिहौं ॥

६-भिन्नान्त्य—भिन्न तुकान्त वा बेतुकी—जिसमें चारो चरणों में भिन्न भिन्न तुकान्त हों । इसे अँगरेजी में 'ब्लैंकवर्स' (Blank verse) कहते हैं । हिन्दी के प्राचीन कवियों ने ऐसी कविता नहीं लिखी, हालमें कुछ लोग लिखने लगे हैं । जैसे पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय ने अपने 'प्रियप्रवास' में लिखी है ।

सूचना—भिन्न तुकान्त कविता के लिये कुछ वर्णों छन्द ही उपयुक्त जान पड़ते हैं—जैसे—शादूलविक्राडित, वंशस्थ, द्रुतविलंबित, इन्द्रबजा, भुजंगप्रगात, वसंतविलका इत्यादि । मायिक, छन्दों में भिन्न तुकान्त कदापि अच्छा नहीं लगता ।

(२)—चित्र

दो०—चित्र वरण विन्यास है कमलादिक आकार ।

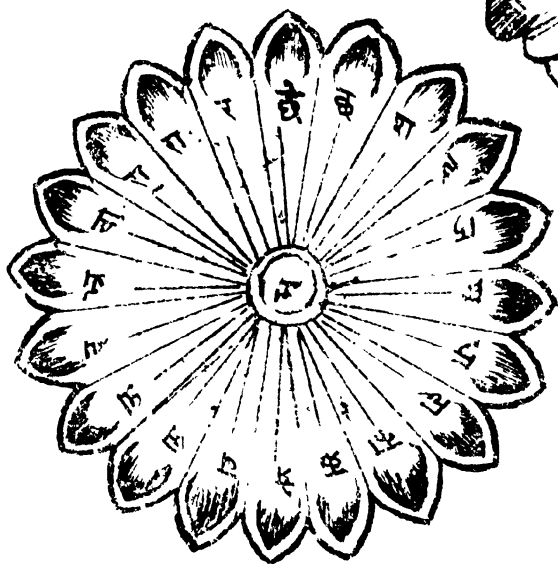
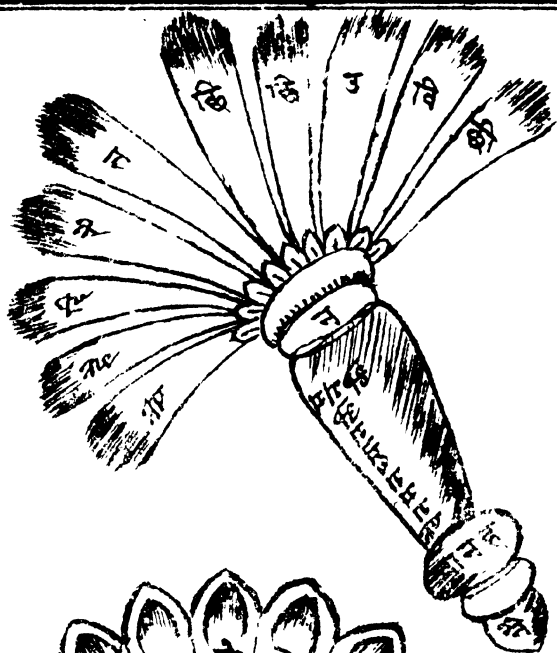
गोरखबंधा मम निरस त्यागत सुकवि विचार ॥

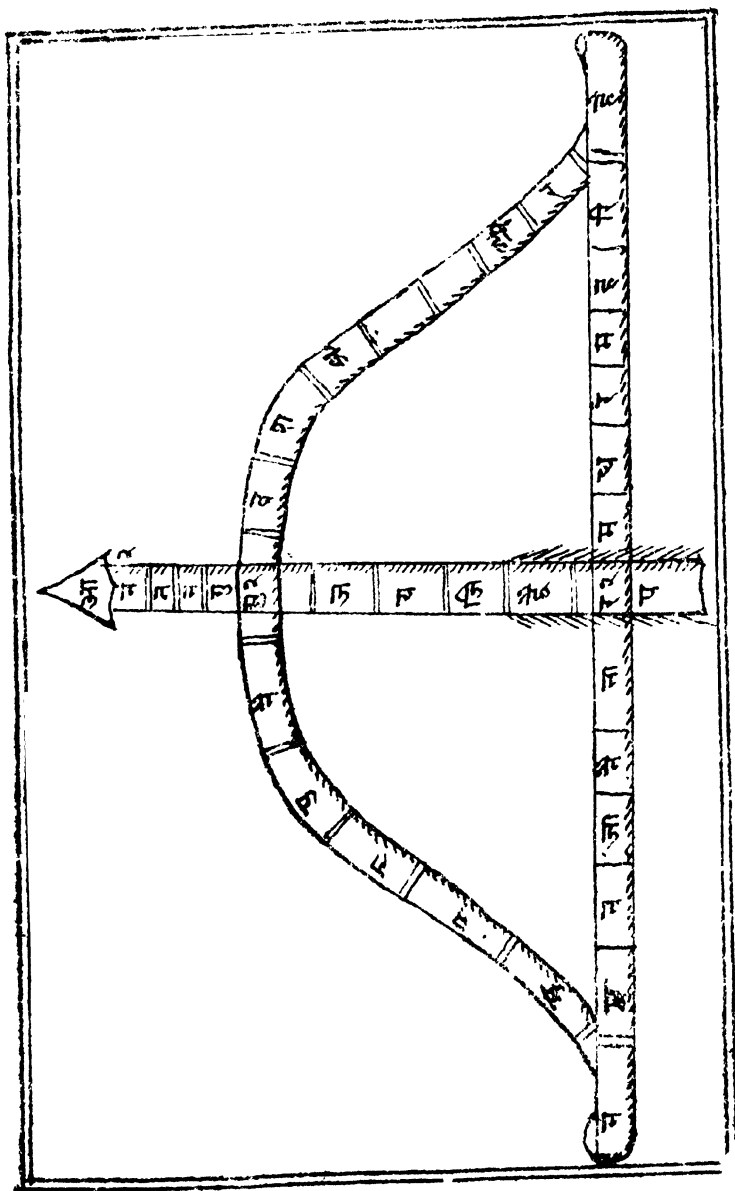
विवरण—छंद रचना में ऐसे वर्ण लाना जिनके द्वारा विशेष विशेष विन्यास से विशेष चित्र बन जाये ।

१—चित्रकाव्य—इसमें ' अलंकारत्व ' नहीं है । केवल कवि की सतुर्साई और परिश्रम का परिश्रय मिलता है । इस काव्य द्वारा कमल, छत्र, चक्र, ज्वर, खड्ग, तलवार, दंड, रथ, ध्वजा, हाथी घोड़ा, मनुष्य, हंस, दर्पण वृक्ष इत्यादि के चित्र बन सकते हैं । बिन्दुआरभय से सबके उदाहरण न देकर केवल कुछ ही देते हैं ।

कमलबंध—(दोहा)

राम राम रम छेम छम शम दम जम श्रम धाम ।





दाम काम क्रम प्रेम वम जम जम दम भ्रम वाम ।

(कविप्रिया)

इस दोहा के प्रत्येक दल में १० शब्द हैं और प्रत्येक शब्द का दूसरा अक्षर 'म' है। इससे चामर, चक्र, दर्पण, इत्यादि कई एक अन्य चित्र (चित्र देखो) बन भी सकते हैं।

पुनः—नैन बान हन बैन मन ध्यान लीन मन कीन ।

चैन है न दिन रैन तन छिन छिन उन विन छोन ॥

ऊपर लिखे हुए दोहे की भांति इस दोहे से भी कमल का चित्र बन सकता है। इन्हीं दोनों दोहों से दर्पण, चक्र, मुष्टिका, हार, हलकुंडी, चामर चौकी, कपाट, इत्यादि बहुत से चित्र बन सकते हैं। कमलबंध और दर्पणबंध को फारसी तथा उर्दू में "सनअतमुदीवर" कहते हैं।

(चामर चित्र देखो)

इस दोहे में भी कमलबंध की सी रचना है। प्रत्येक दल में १० शब्द और प्रत्येक शब्द का दूसरा अक्षर एक ही 'न' है।

इससे भी कमलबंध बन सकता है।

(धनुष बंध—दोहा)

परम धरम हरि हेरहीं केशव सुनै पुगन ।

मन मन जानै नार द्वै जिय जसु गुन तन आन ॥

इस चित्र में बाण के आकार में तीन जगह २ के अंक हैं। उन अक्षरों को दो बार पढ़ो।

इसी चित्रालंकार के अंतर्गत प्रान्तोन कवियों ने अनेक भेद

माने हैं, जिनमें मुख्य २ ये हैं ।

२-निरोष्ठ-जिसके पढ़ने में परस्पर ओंठ न छू जायँ-जैसे

लोकलोक नीकी लाज लीलत से नंदलाल लोचन ललित
लोक लीला के निकेत हैं । सौंहनि को सोच ना सकोच लोका-
लोकनि को दंत सुख ताकी सखी दूनो दुख देत हैं ॥ केशोदास
कान्हर कनैर ही के कोरक से अंगरंग राते अंतरंग अति सेत
हैं । देखि देखि हरि की हरनता हरिननैनी देखत ही देख्यो नहीं
हियो हरि लेत हैं ॥

ऐसी कविता में प, फ, ब, भ, म इत्यादि अक्षर न लाने
चाहिये ।

इसको फारसी तथा उर्दू में "वासेउस्शफतेन" कहते हैं ।
इसके ठीक विरुद्ध ऐसी कविता भी हो सकती है जिसके
प्रत्येक शब्द के पढ़ने में ओंठ से ओंठ मिले । ऐसी रचना
"सोष्ठ" कहलायेगी ।

३-अमत्त-जिसमें मात्राएं न हों-जैसे:—

जग जगमगत भगत जन रस बस भव-भय-हरकर करत
अचर चर । कनक बसन तन असन अनल बटु बटदल बसन
सजल थल थलचर ॥ अजर अमर अज बरद चरनधर परम
धरम गन बरन सरन पर । अमल कमल बर बदन सदन जस
हरन मदनमद मदनकदन हर ॥

इस अलंकार को फारसी तथा उर्दू में "मुकत्ता" कहते हैं ।

४-अंतर्लापिका—

दो०-उत्तर आवै अंत में प्रश्न जहां ही होय ।

सोई अंतर्लापिका कहत सुकवि सब कोय ॥

विवरण—जिस प्रश्न का उत्तर प्रश्न के अंतर्गत ही हो, उसे अंतर्लपिका कहते हैं। जैसे—

सो०—भूषित को हरि अंग ? कोह भरे का तिय करै ? ।

काने होय अनंग, ? को मराल हित ? ' मानसर, ॥

यहां ४ प्रश्न हैं—हरि के अंग को कौन भूषित करता है ? उत्तर 'मा' = (लक्ष्मी) । काधित होकर स्त्री क्या करती हैं ? उत्तर 'मान' । काम किससे पैदा होता है ? उत्तर 'मानस' = (मन) । हंस का हिनू कौन है ? उत्तर 'मानसर' । इसलिये 'मानसर' इसका उत्तर है ।

पुनः दो०—कौन जाति सीता सती ? दर्ई कौन कहँ तात ? ।

कौन ग्रंथ वर्ण्यो हरी ? रामायण अवदात ॥

सती सीता जी किस जाति की स्त्री थीं ? इसका उत्तर है 'रामा' (जो सबके मनको अपने में रमा ले) ।

उनके पिता ने किस को दिया था ? उत्तर है 'रामाय' (राम को) । कौन ग्रन्थ में उनका हरण वर्णन किया गया है ? उत्तर है 'रामायण' । प्रत्येक प्रश्न के उत्तर में एक एक अक्षर बढ़ता गया है ।

५—बहिर्लपिका—“बाहर से उत्तर कहे बहिर्लपिका सोय”

विवरण—जिस प्रश्न का उत्तर प्रश्नान्तर्गत न होकर बाहर से निकलै, उसे बहिर्लपिका कहते हैं । यथा—

कवित्त-भाषैं काह सज्जेन को ? कौन शंभु बाहँन है ?
कांको सुख होत ? काकी मॉल शिव धारो है । कहा गज बंधने
छबीले दूग काके अति ? कौन हरपुत्रै ? सीपसुत को सुप्यारो
है । शोभा को सुनाम का है ? कृष्ण नख धारो कहाँ ? सिंधु से

मिलत कौन ? कोई अनियागे है । उत्तर के बर्णन में आदि अंत छोड़दीजै मध्य लीजै सो हिये मनोरथ महारो है ।

१-सयाने २-बरद ३-सुकृति ४-कपाल ५-सांकर ६-हरिणी ७-गनेश- ८-मुक्ता ९-पानिप १०-पहाड़ ११-सरिता १२-नयन । इन सब शब्दों के मध्याक्षर लेने से जो उत्तर निकलता है, वह छंद के अंतर्गत नहीं है, अतः बहिर्लपिका है ।

सूचना-अंतरापिका और बहिर्लपिका के तीन तीन भेद हैं- (१) श्राव-चरी, (२) मध्याक्षरी और (३) अन्त्याक्षरी । कवि जैसा चाहे वैसा लिखे ।

६-लोमविलोम-सूत्रो उलटो बाँचिये औरै औरै अर्थ ।
ऐसी रचना कर सकै जो कवि महा समर्थ ।

बिबरण-सीधा पढ़ै तो और अर्थ, उलटा, पढ़ै तो और अर्थ होता है । ऐसी रचना कोई समर्थ कवि ही कर सकता है ।

सूचना-ऐसी रचना भिखारीदास और 'केशवदास' ने की है, परन्तु उसका अर्थ बहुत खींच खाँच कर लगाया पड़ता है, इसमें यद्वा नहीं लिखते ।

इसको फारसी तथा उर्दू में “ सनअत अक्स ” कहते हैं ।

७-गतागत-भीधो उलटो बाँचिये एकै अर्थ प्रमान ।

कहत गतागत ताहि कवि केशवदास सु जान ॥

बिबरण-सीधा पढ़ै चाहै उलटा, अर्थ वही रहैगा ।

सूचना-इस रचना का 'केशव' ने केवल एक ही सर्वेषा कहा है ।

अर्थ कठिनता के कारण उसे न लिखकर केवल दो चार शब्दों के उदाहरण देते हैं । जैसे—

तख्त । दरद । शरक । सहस । कसक । कनक । विकट
कवि । नवजीवन ।

नोट-फारसी तथा उर्दू में इसको “ मकलूब मुस्तवा ” कहते हैं ।

८-कामधेनु-ऐसी रचना जिससे अनेक छंद बन सकें । यथा

मोरपखा	बनमाल	बिराजत	बेनुबजै
१	२	३	४
गुणभैव	सुपर्सन	संगसखा	नंदलाल
५	६	७	८
यभ्राजत	मोद सजै	यगसेव	तुकसंन
९	१०	११	१२
दद्धिचखा	करिख्याल	हिक्ताजत	पावत जै
१३	१४	१५	१६
भतितेव	तुहर्सन	ध्यानरखा	छबिजाल
१७	१८	१९	२०
हिछाजत	स्वांतरजै	बलदेव	सुदर्सन
२१	२२	२३	२४

सूचना-इस सवैया में २४ टुकड़े हैं। जहां से ग्रहो छः टुकड़ों का एक पद बनाकर पढ़ो। इसी तरह चारों पद कह लो, तो २४ छंद बन जावेंगे। (पुनः)

साजत हैं	सिधियाय	इहांसबि	मोदता	शुचिवेश	प्रणैवर
१	२	३	४	५	६
आजत हैं	रिधिराय	छजेछवि	हेतरता	बलदेव	सुधाधर
७	८	९	१०	११	१२
छाजत हैं	वरमाय	भनैकबि	सुष्टुमता	सुखदेश	गुणा कर
१३	१४	१५	१६	१७	१८
राजत हैं	यशछाय	यथारवि	रुद्रपता	प नरेश	कृपाधर
१९	२०	२१	२२	२३	२४

सूचना-उपरोक्त गीति से पढ़ने से इसके भी २४ छंद बन सकेंगे।

६-दृष्टिकूटक-दृष्टिकूटक शब्द का अर्थ है 'दृष्टि को छलने वाला' शब्दों की ऐसी रचना जिसका अर्थ केवल देखने मात्र से न भासै दृष्टिकूटक कहलाती है।

ऐसी रचना शब्दों ही पर निर्भर है, अतः इसकी गणना शब्दालंकारों ही में होनी चाहिये।

इसमें अर्थ-कठिनता अत्यधिक रहती है, इसलिये कवि लोग ऐसी कविता की गणना अधम काव्य में करते हैं, परन्तु बिचार करने से उसके शब्दों में अलंकारता अवश्य पाई जाती है। अतः, उसे अलंकार मानना ही चाहिये। भक्तशिरोमणि 'सूरदास' ने इस अलंकार से अच्छा काम लिया है और इसी अलंकार में 'साहित्यलहरी' नामक एक ग्रंथ ही रच डाला है। कौन कह सकता है कि सूरकृत इस ग्रंथ के पदों में अलंकारता नहीं है। यथा:—

दो०—मेष राशि तें पांच लौं गने कदै जो नाम ।

ता भक्षण द्वादश गये आये नहिं घनश्याम ॥

(मास)

अहिवल्लीरिपु की सुता, ताके पति को हार ।

ता अरिपति की भामिनी, सदा वसै तुव द्वार ।

(लक्ष्मी)

पद—कहै कोई परदेसी की बात ।

मंदिर अरध अवधि हरि वदि गये हरि अहार चलजात ।

अजयाभक्त अनुसारत नाहीं कैसे के दिवस सिरात ॥

ससिरिपु वर्ष भानुरिपु युग सम हररिपु कीन्है घात ।

वेद नखत ग्रह जोरि अरध करि सोई बनत अब खात ॥

मघ पंचम लै गयी साँवरो ताते जिय अकुलात ।

सूरस्याम बिनु बिकल बिरहिनी कर मीजत पछितात ।

(३)-पुनरुक्ति प्रकाश

दो०-एक शब्द बहु बार जहँ परै रुचिरता अर्थ ।

पुनरुक्ती परकाश सो वरणै बुद्धि समर्थ ।

बिबरण-भाव को अधिक रुचिकर बनाने के लिये एकही शब्द कई बार कहा जाय । जैसे:—

दो०-बनि बनि बनि बनिता चलीं गनि गनि गनि डग देत ।

धनि धनि धनि अखियां सुखवि सनि सनि सनि सुख लेत ।

सवैया-मधुमास में 'दासजू' बस बिसे मन मोहन
आइहैं आइहैं आइहैं । उजरे इत भौनन को सजनी सुख पुंजन
छाहैं छाहैं छाहैं । अब तेरी सों एरी न संक एकंक बिथा
सब जाइहैं जाइहैं जाइहैं । घनस्याम प्रभा लखिकै सखियाँ
अखियां सुख पाइहैं पाइहैं पाइहैं ।

सूचना-छद्मरेजी में इस अलंकार को 'टालोजी' (Tautology) कहेंगे । फारसी तथा उर्दू में 'तजनीसमुकरर' कहते हैं ।

(४)-पुनरुक्तिवदाभास

दो०-जानि परै पुनरुक्ति सी पै पुनरुक्ति न होय ।

पुनरुक्तिवदाभास तेहि भूषण कह सब कोय ॥

बिबरण-जहां दो शब्द ऐसे रखे जायें जो पर्यायवाची हों और एकसा अर्थ देते हुए दिखाई दें, परंतु यथार्थ में अर्थ कुछ दूसरा ही हो, उसे पुनरुक्तिवदाभास अलंकार जानो जैसे:—

दो०-क्यों न होय छितिपाल सो, नीतिपाल जग एक ।

जाके निकट नु रहत हैं, सुमनस बिबुध अनेक ॥

यहां 'सुमनस' और 'बिबुध' का पहली दृष्टि में एकही

अर्थ “ देवता ” भासता है, परन्तु वास्तव में अर्थ है “ सुन्दर चित्तावाले विशेषज्ञ पंडित ”

पुनः—बंदनीय कहिके नहीं वे कविद मतिमान ।

सुगम गये हू काव्य रस जिह्वाको जगत जहान ।

यहां ‘ जगत ’ और ‘ जहान ’ पहले एकार्थवाची जान पड़ते हैं; परन्तु विचार करने से अर्थ स्पष्ट हो जाता है ।

पुनः—पुनि फिरि राम निकट सो आई ।

प्रभु लल्लिमन पहुँ बहुनि पठाई ॥

यहाँ पुनि ओर फिर में आभास है । ‘ फिर ’ का अन्वय ‘ आई ’ के साथ होगा ।

पुनः—अली भौं गूजन लगे होन लग दल घात ।

जहँ तहँ फूल रूख तरु प्रिय प्रीतम किमि जात ॥

यहां अली और भौर, दल और पान, रूख और तरु, तथा प्रिय और प्रीतम एकार्थवाची जान पड़ते हैं, परंतु विचार करने से जान पड़ता है कि:-अली = समी, पान होन लगे = गिरने लगे । रूख = रूख = सूखे और प्रिय = प्यारा है ।

पुनः—(काव्यत्त) भृगुलात पद हिय प्रियवर राजन है, मोरपंख पक्ष साजे मेरे मन भावै है । राजै द्वार बनमाल आड़तें दिखाई देत “काशिराज” तन पर गोरज साहावै है । रहै परदोष सांभ समै में । वहारी श्याम ललित अरुण अंग ताम्र को लजावै है । दक्षिण हस्ति हरे रंग संग बलदेव कुंजर मतंग दंत कंध धरे आवै है ॥

इसमें लात और पद, पंख और पक्ष, द्वार और बनमाल, परदोष और सांभ अरुण और ताम्र, हस्ति और हरे, कुंजर और मतंग एकार्थवाची शब्द जान पड़ते हैं, परंतु अर्थ पृथक् २ हैं । अर्थात् पद = स्थान । पक्ष = पक्षवाले लोग । बनमाल =

वनके वृक्षों का समूह । परदाप = परायण दीप । अरुण = लाल रंग, दक्षिणहस्ति = दाईं ओर । हरे रंग संग = अत्यन्त प्रलम्ब चित्त । कुंजर — बड़न बड़ा ।

पुनः—(कबित्त) अरिन के दल सैन संगर में समुहाने दूक २ सकल कै डारे घमसान में । बार बार रुरो महानद पर-बाह पुरो बहत हैं हाथिन के मद जल दान में । भूपन भनत महाबाहु भौंसिना भुवाच सूर रवि कैसा तेज तीखनकृपान में । माल मकरंद जूके नंद कलानिधि ठगी सरजा सिवाजी जस जगत जहान में ।

यहाँ भी दल और सैन, सूर और राव तथा जगत और जहान में वैसाही आभास है । समझने में अर्थ अलगअलग है ।

(५) प्रहेलिका (गहेली) ❀

दो०—प्रश्नहि में उतर कहै, कलु शब्द के फेर ।

सो प्रहेलिका दोय विधि, शब्द अर्थगत हेर ॥

(शब्दगत प्रहेलिका)

देखी एक अगोखी जगरी । गुण उसमें इक सबसे भारी ॥

पढ़ी नहीं यह अच्छरज आवै । मरला जीना तुरत बतावै ॥

उत्तर—हाथ की नारी (नाड़ी)

बारे से वह सबको भावै । बड़ा हुआ कुछ काम न आवै ।

मैं कह दिया है उसका नाम । अर्थ करो कै छांडो गाम ।

उत्तर—दिया (दीपक)

* इस प्रलंकार को फारसी वा उर्दू में ' चाम्ना ' वा ' मुश्ममा ' कह सकते हैं ।

आदि कटे ते सब को पालै । मध्य कटे ते सबको शालै ।
अंत कटे ते सबको मीठा । सो खुसरो में आंखों दीठा ।

उत्तर-काजल

चहुँ ओर फिर आई । जिन देखी तिन खाई । उत्तर-खाई ।

(अर्थगत प्रहेलिका)

लक्ष्मीपति के कर बसै पांच वरण गनि लेव ।
पहिलो अक्षर छोड़ि के आय हमैं किन देव ।

उत्तर-(सुदर्शन)

दो०-सब सुख चाहो भोगिबो जो पिय एकहि बार ।

चंद गहै जहँ राहु को जड़यो तेहि दरबार ।

उत्तर-(राजा बीरबर का दरबार, जहाँ चंद

नाम का एक द्वारपाल था)

दो०-ऐसी मूरि बताव सखि जेहि जानत सब कोय ।

पीठि लगावत जासु रस छाती सीरी होय ।

उत्तर-पुत्र

(६)-भाषा समक ❀

दो०-शब्दन की बिधि एक जहँ भाषा विविध प्रकार ।

* इस अलंकार को फारसी में 'मुलम्मा' कहते हैं । 'हाफिज शीरकाज़ी' का प्रसिद्ध शेर है:—

अला या अहिय उस्ताकी अदर कासिन व नाविलहा ।

कि इरक आसां नमूद अखल बले उफताद मुशकिलहा ॥

इसमें पर्वत आग की भाषा और उत गढ़ फारसी है ।

शक्य मनोहर होय तहँ भाषा समक विचार ॥

(यथा)

जादिन तँ जमुना तट बाहि वजावत बांसुरी नैक निहारो ।
होशम रफत न मांद बदस्त, भरोस रहै दिन रैन तुम्हारो ॥
हाफिज़ फिक्र कुदाम नुमायम कोई उपाय चलै न हमारो ।
देखलि गीउ उपाय रचौ फिर बारक देखिय नंददुलारो ॥

द्रष्टुं तत्र विचित्रतां सुमनसां में था गया बाग मे ।
काचित्तत्र कुरंगशावनयना गुल तोड़नी थी खड़ी ॥
उन्ने-भ्रूधनुषा-कटाक्षविशिखैर्घायल किया था मुझे ।
तत्सीदार सुदैव मोह जलधी हैदर गुज़ारै शूकर ॥

कासो कहों मन को कुविधा अपनो तन आप जराने परो ।
खेशो बुजुर्ग अकारिब राह में देखत खूब लजाने परो ॥
बाकी मुरबबतो उल्फत में हमें हाफिज़ हाथ बिकाने परो ।
दिल रफ्त जे दस्त शुदा अलमस्त किसोस महा पछिताने परो ॥

साँझ समै घर से निकली लिय संग सखी वह साँवरी मूरत ।
नाज़ो नियाज़ नमूद बसे अज़ ताब शुदम् अफज़ूद कदूरत ॥
मोतन ताकि दियो हँसि कै अभिमान भरी कलु भौंह मकरत ।
होशम रफत न मांद बदस्त शुदा दिल मस्त जे दीनने सूरत ॥

(७)—यमक अलंकार ❀

दो०—वहै शब्द फिरि फिरि परै अर्थ और ई और ।

* इस अलंकार को अँगरेजी में ' पन ' (Pan) कहते हैं । अर्थात् ' फारसी में ' तजनीस जायद ' कहेंगे ।

सो यमकालंकार है भेद अनेकन दौर ॥

बिबरण—बसा ही शब्द पुनः पुनः सुन पड़े परन्तु अथ जुदा जुदा हो उसे यमक कहते हैं । इसके सबमे अधिक भेद 'केशवदास' ने अपनी 'काव्यप्रिया' में लिखे हैं ।

उदाहरण ।

दो०—तो पर बाँों उरवसी सुनु राधिके सुजान ।

तू मोहन के उर वसी है उरवसी समान ॥

भजन कछो तासों भज्यो भज्यो न एको बार ।

दूरि भजन जासों कछौ सो तैं भज्यो गँवार ॥

यथा—मूर्तिमधुर मनोहः देखी । मयउ विदेह विदेह बिशेषी ।

दो०—वारन ते वारन कहूं होत जु बागन नाहि ।

लागी वार न बधत रिपु इन्हें सु वा रन मांहि ॥

सवैया—बसुधाधर में बसुधाधर में आ सुधाधर में त्यों सुधा में लस । अलिबृन्दन में अलिबृन्दन में आलबृन्दन में अतिस सरसै । हिय हारन में हुरिहारन में हिम-हारन में रघुराज लसे । ब्रजवारन बारन बारन वारन बारन बार बसन्त बसे ।

पुनः—ऐसी परी नरम हरम पातसाहन की नासपाती खाती ते बनासपाती खाती है ।

ऊँचे घोग मंदर के अंदर रहन बारी ऊँचे घोग मंदर के अंदर रहाती हैं । कन्दमूल भोग कर कंदमूल भोग करे तीन बेर खाती तेवै तीन बेर खाती हैं । भूखन सिथिल अंग भूखन सिथिल अंग विजन डोलाती तेवै विजन डालाती हैं । भूषन भनत शिवराज बीर तेरे प्रास नगन जडाती तेवै नगन जडाती हैं ।

(शिवा बावनी)

(मुक्तपदग्राह्य यमक)

दो०—चरण अंत अरु आदि के यमक कुंडलित होय ।

मुक्तपदाग्रह है वही सिंहवलोकन सोय ॥ यथा—

लाल है भालसिदूर भरा मुख भिधुर चारु औ बाँह बिशाल है ।
 शाल है शत्रुन का कबि देव सुशांभन सोमकला धरे भाल है ॥
 भाल है दीपत सूरज कोटि सो काटत कोटि कुलंकट जाल है ।
 जाल है बुद्धि बिबेकन का यह पारवती को लड़ायतो लाल है ॥

पुनः

नामहि के सुमंगे सुख पाइहौ और न कामगिनौ जग कामहि ॥
 कामहि कोऊ न भाइहैं ये सुत मानु पिता प्रिय बंधु औ बामहिं ।
 बामहिं हैं सिंगरे पव के सुख हाँन नहीं क्षण हूं बिसरामहिं ।
 रामहिं राम रटौ रे रटौ सब वेद पुराण को है परिणामहिं ॥

पुनः छप्पय ।

सारंग से दूग लाल माल सारंग की सोहत ।
 सारंग ज्या ननु श्याम वदन लखि सारंग मोहत ॥
 सारंग सम कटि हाथ माग बिच सारंग राजत ।
 सारंग लाये अग देखि छबि सारंग लाजत ॥
 सारंग भूपण पात प । सारंगपद सारंगार ।
 रघुनाथदास वंदन करन स्वीतापनि रघुबंश वर ।

सूचना स्मरण रखना चाहिये कि लाटानुशास में केवल शब्दों ही की नहीं वरन वाक्यों तक की आवृत्ति हो सकती है, केवल अन्वय से अर्थ में हेर फेर होता है । यमक में जिस अक्षर यमूह का आवर्तन होता है वह चाहे प्रकार का होता है—(१) दोनों निरर्थक, जैसे—“ मधुपराजि पराजित-मानिनी ” में ‘ पराजि ’ का कुछ अर्थ नहीं । यह उत्तम यमक है । (२) एक साथ एक निरर्थक—जैसे

* ‘सिंहवलोकन’ को फारसी में ‘सनअत इरसाद’ कहेंगे ।

“ है समर समरम सुमद मर पनि बादनी विछपात ” में पहले ‘समर’ का अर्थ है युद्ध और दूसरा ‘समर’ ‘समरस’ शब्द का एक खंड होने से निरर्थक है। (३) एक पूर्ण शब्द सार्थक दूसरा खंड होकर सार्थक-जैसे-उरवली और उर वसो में ये दोनों मध्यम समक हैं। (४) भिन्नार्थवाची दो वा अनेक शब्द जैसे-ऊपरवाली छापण में ‘माराग’ शब्द है। यह अक्षय समक है।

(८)- वक्रोक्ति

दो-होय श्लेष सों काकु सो, कल्पित औरै अर्थ ।

ताहि कहत वक्रोक्ति हैं, सिंगरे सुकावि समर्थ ॥

विवरण-कहे हुए वाक्य का श्लेष से अथवा काकु से और ही अर्थ कल्पित करें अर्थात् जब वक्ता कोई वाक्य एक अर्थ में कहता है, और श्रोता उसका दूसरा ही अर्थ लगाता है वहां वक्रोक्ति अलंकार होता है। ऐसा अर्थ श्लेष से वा काकु से हो सकता है।

(श्लेषवक्रोक्ति)

श्लेष वक्रोक्ति दो प्रकार की होती है-(१) भंगपद (२) अभंगपद ।

(१) भंगपद वह है जिसके पद का तोड़ कोड़ कर दूसरा अर्थ किया जाय, जैसे—

“गौरवशालिनी प्यारी हमारी सदा तुमहीं एक इष्ट अहो॥

श्री महादेवजी पारवती जी से कहते हैं कि हे गौरवशालिनी प्यारी ! तुम्हीं हमारी सदा इष्टदेवी हो ! पारवती जी शब्दों को तोड़ कर हँसी से कहती हैं—

“हौं न गऊ नहि हौं अबशा अलिनी हूँ नहीं अस काहे कहो ॥ अर्थात् न मैं ‘गौ’ हूँ न ‘अबशा’ हूँ और न ‘अलिनी,

हं, तुम ऐसा क्यों कहते हो ।

वर्थात् गीः + अवशा + अलिनी = गीरवशालिनी ।

पुनः—मान तजो गहि सुमति बर, पुनि पुनि होत न देह ।

मानत जोगी जोग को, हम नहि करत सनेह ।

कोई व्यक्ति किसी से कहता है—“ हे श्रेष्ठ ! सुमति गहि के मान तजो । वह व्यक्त शब्दों को तोड़ कर ‘मान तजो गहि’ को ‘मानत जोगहि’ समझकर उतर देता है । (पुनः)

दो०—नारी के अनुकूल तुम, आचरत जु दिनरात ।

कौन अरिन सों हित करत है बसुधा विख्यात ॥

यहां उत्तरार्ध में ‘नारी’ शब्द को तोड़कर न + अरि करके उत्तर दिया है ।

सूचना—सद् तथा फारसी में ‘समंगपद श्रेषा’ को ‘तजनीस मुरक्कब और ‘अमंगपद श्रेष को ‘तजनीस ताम’ कह सकते हैं ।

(२) अमंगपद वह है जिसमें शब्द वा पद तोड़ा न जाय किन्तु अनेकार्थ कोशसे किसी शब्द का अर्थ ऐसा लिया जाय जो कहनेवाले के अर्थ से भिन्न हो । जैसे—

कबिस—खोलो जू किचार, तुम को हो एतोबार ! हरिनाम है हमारो, बसो कानन पहार में । हौं तो प्यारी, माधव, तो कोकिला; के माथे भाग, मोहन हौं प्यारी, परो मंत्र अभिचार में । रागी हौं रंगीली, तौ जु जाहु काहु दाता पास, भोगी हौं छबीली, जाय बसी जू पतार में । नाथक हौं नागरी, तौ हांकों कहुं टांडो जाय, हौं तो घनश्याम, बरसो जू काहु खार में ।

(इसमें कृष्ण और राधिका का परिहास वर्णन है)

कृष्ण जी अपना जो नाम बताते हैं उसी का दूसरा अर्थ लेकर राधिका उच्चार देती जाती हैं । राधिकाजी का अर्थ—हरि = बंदर । माधव = बैसाखमास । मोहन = मोहनप्रयोग (मारण

मोहन इत्यादि का), रागी = गवैया । भोगी = सर्प । नायक = बंजारा । घनश्याम = काला बादल । (पुनः)

दो०—को तम ? हरि प्यारी ! कहा बानर को पुर काम ।

श्याम, सलोनी ! श्याम कपि ! क्यों न डरै तब बाम ।

सूचना—इन उपरोक्त उदाहरणों में यदि श्लिष्ट शब्दों को पर्याय शब्दों से बदल दें तो काव्य बिभक्तुल नष्ट भ्रष्ट होजायगा अर्थात् इन छंदों का कवित्व उन्हीं शब्दों पर निर्भर है इसलिये इनमें शब्दालंकार है ।

(काकु वक्रोक्ति)

दो०—जहां कंठध्वनि भिन्न तें, आशय जुदो लखाय ।

सो वक्रोक्ती काकु है, कविवर कहैं बुझाय ।

बिबरण—जहाँ शब्द के उच्चारण में कंठध्वनि से कुछ और ही अर्थ भासे वहाँ काकु समझो ।

सूचना—इसके उदाहरण रौद्रसपूर्ण वा हास्य समपूर्ण वाद-विवाद में अधिकता से हुआ करते हैं । रामायण में अंगद और रावण के संवाद में बहुत से हैं—यथाः—

अंगद—कहकपि धर्मशीलता तोरी । हमहुं सुनी कन पर तिय चोरी
धर्मशीलता तब जग जागी । पावा द्रश हमहुं बड़ भागी ॥

अंगद—सत्य कह्यौ दशकंठ सब, मोहि न सुनि कछु कोह ।

कोउ न हमारे कटक अस, तो सन लरत जो सोह ॥

पुः—कह कपि तब गुणगाहकनाई । सत्य पवन सुत मोहिसुनाई ॥

कह अंगद सलज्ज जगमाहीं । रावण तोहि समान कोउ नाही ॥

सो भुजबल राख्यो उर घाली । जीतेउ सहसबाहु बलि बाली ॥

(सीता)मैंसुकुमारिनाथबन योगू । तुमहिउचित तपमोकहैं भोगू ॥

पुनः—दो०—काह न पावकजारि सक, का न समुद्र समाय ।

का न करै अबला प्रबल, कोहि जग काल न खाय ॥

(राम) मानस सलिलसुधाप्रतिपाली । जियै किलवणपयोधिमराली
नवरसाल बन बिहरन शीला । सोह कि कोकिल विपिन करीला॥

सूचना-अनेक आचार्यों ने इस अलंकार को अर्थालंकार माना है । पर
इससे शब्दालंकार ही मानते हैं । क्योंकि विशेष कंठध्वनि ही से इसमें अर्थ
का हेर फेर हो पावे । कंठध्वनि श्रवण का विषय है । श्रवणमात्र की अलंका-
रता शब्दालंकार ही मानी जा सकती है ।

(६)-विप्सालंकार

दो०-आदर अचरज आदि हित, एक शब्द बहुवार ।

ताही विप्सा कहत हैं, जे सुबुद्धि भांडार ।

बिवरण-आदर, ताकीद, आश्चर्य अथवा अन्य कोई आक-
स्मिक भाव प्रगट करने के हेत एक शब्द कई बार कहा जाय
वही विप्सालंकार है ।

(आदर) १-शिव शिव ह्वे प्रसन्न करु दायी ।

२-राम राम राम जीह जीलों तू न जपिहै ।

तौलों तू कहुं जाय तिहुं ताप तपिहै ।

३-राम रामरमु, राम २रटु, रामराम जपु जीहा ।

४-राम राम राम राम राम राम जपत ।

मंगल मुद उदित होत कलमल छल छपत ।

दो०-राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम

तनु परिहरि रघुवर विरह, राउ गयो सुरधाम ॥

ताकीद (१) राम कहत चलु राम कहत चलु राम कहत चलु भाईरे
नाहीं तो भव बिगारि महुं परिहौ छूटत अति कठिनाईरे ॥

२-राम जपु राम जपु राम जपु बावरे ।

घोर भव नौरानधिनाम निज नाव रे ।

(आश्चर्य) राम राम ! यह क्या करते हो ।

(घृणा) छिः छिः उसे मत छुओ !

(पश्चात्ताप)—रामराम ! यदि मैं जानता कि ऐसा होगा तो मैं यह काम न करता ।

(अहंकार)—भाई भाई, क्या तुम्हीं बड़े बुद्धिमान हो ?

सूचना—इसी प्रकार और भी सांकेतिक भाव प्रगट करने के लिये शब्द दोहराये तेहराये जाते हैं ।

(१०)—श्लेष

दो०—दोय तीन अरु भांति बहु आवत जामें अर्थ ।

श्लेष नाम ताको कहत जिनकी बुद्धि समर्थ ।

विवरण—ऐसे शब्दों का प्रयोग जिनके दो तीन अर्थ हो सकते हों, श्लेष अलंकार कहलाता है । इसके दो भेद होते हैं—(१) वह जहां कवि का मुख्य तात्पर्य एक ही अर्थ से होता है । इसकी गणना शब्दालंकारों में हो सकती है । (२) वह जहां कवि का तात्पर्य दोनों वा तीनों अर्थों से होता है । इसकी गणना अर्थालंकारों में होनी चाहिये ।

उदाहरण

“रावण सिरसराज वनचारी । चली रघुवार शिलीमुख धारी”

यहां पर ‘शिलीमुख’ शब्द के दो अर्थ हैं. (१) बाण (२) भौरा । तुलसीदासजी कहते हैं कि जैसे भौरा दीड़कर कमल बन में जाते हैं और कमलों में घुस जाते हैं, उसी प्रकार रघुनाथजी के शिलीमुख (बाण) रावण के शिरों में घुसने लगे । तुलसीदासजी का मुख्य लक्ष्य बाणों की ओर जान पड़ता है न कि बाण और भौरा दोनों की ओर । इस हेतु यह श्लेष शब्दालंकार है । इसी प्रकार विहारी कृत नीचे लिखे दोहों में एक अर्थ की मुख्यता है, इसलिये इन दोनों का श्लेष शब्दालंकार है ।

दो०-अजौं तन्यौना ही रहौ श्रुति सेवत इक अंग ।

नाक बास बेसरि लहौ वामि मुकुतन के संग ॥

इसमें तस्वीना, श्रुति, नाक, मुकुतन शब्दों में श्लेष हैं । परन्तु विहारी का मुख्य तात्पर्य कर्णफूल और नथ से है न कि किसी मुमुक्षु से जैसा कि श्लेष में व्यंजित होता है । इसीसे यह शब्दालंकार है । इसी प्रकार नीचे के दोहों में समझना चाहिये ।

दो०-जो चाहो चटक न घटै मैनों होय न मित ।

रज राजस न छुवाइये नेह चीकने चित्त ॥

(इसमें रज और नेह शब्दों में श्लेष है)

दो०-दूरि भजत प्रभु पीठि दै गुन विस्तारन काल ।

प्रगटत निर्गुन निकट ही चंग रंग गोपाल ॥

(इसमें गुन और निर्गुन शब्दों में श्लेष है)

नीचे लिखे हुए रसनिधि कृत दोहों में भी ऐसा ही समझो । इनमें 'नेह' शब्द में श्लेष है ।

दो०-धनि दगतारन के जु तिल जिनमें स्याम सनेह ।

बिना नेह के तिल किते परे रहत हैं देह ॥

कहनावत यह मैं सुनी पोषत तनको नेह ।

नेह लगाये अब लगी सूखन सिगरी देह ॥

आपु बुसाते सज्जना नेह न दीजै जान ।

नेही तिल नेहै तजे खरि हैजात निदान ॥

(खरि = खली, निर्दई)

चलि न सकै निज ठौर ते जे तन द्रुम अभिराम ।

तहाँ आय रस बरसियो लाजिम तोहि वनश्याम ॥

(रस=पानी, आनन्द । घनस्याम = काला बादल, कृष्ण)

सूचना—जहाँ कवे का स्वयं यह तात्पर्य होता है कि पाठक दोनों वा तीनों अर्थों की ओर ध्यान दें वह श्लेष अर्थालंकार है । प्रसंगवश उनके कुछ उदाहरण यहीं लिखे गये हैं जिससे पाठक गण दोनों के भेद और बारीकी को भलीभाँति समझ सकें ।

(अर्थगत श्लेष के उदाहरण)

श्लो०—यः पूतनामारणलब्धकीर्तिः काकोदरो येन विनीतदर्पः
यशोदयालंकृतमूर्तिरव्यान् नाथो यदुनामथवा रघूणाम् ॥

स्वयं कवि कहता है कि इसका तात्पर्य यदुनाथ (कृष्ण) और रघुनाथ (राम) दोनों पर घटित हो सकता है ।

केशव कृत 'रामचन्द्रिका' में जब रामचन्द्र की सेना समुद्र पार जाकर सुवेल पर्वत पर ठहरी है, उस समय केशव ने एक विद्वत्तामय कावित कहा है जिसमें रामजी की सेना के लिये अन्तिम चरण में कहा है कि—यह राम की सेना है, कि विभीषण को राज्यश्री है, कि रावण की मृत्यु है । इससे स्पष्ट सिद्धित होता है कि कवि का लक्ष्य दोनों अर्थों पर है । इसलिये उसे अर्थालङ्कार ही मानना पड़ेगा ।

(केशव कहते हैं)

कुंतल ललित नील भृकुटी धनुष नैन कुमुद कटाक्ष बाण
सबल सदाई है । सुग्रीव सहित तार अगदादि भूषणन मध्य
देश केशरी सुगज गति भाई है । विग्रहानुकूल सब लक्ष लक्ष
ऋक्ष बल ऋक्षराजमुखी मुख केशोदास गाई है । रामचन्द्रजू
की चमू राजश्री विभीषण की रावण की मीचु द्रकूच
चलि भाई है ।

(सेनापति कवि सूम और दाता दोनों के लिये कहते हैं)

नाहीं नाहीं करें थोरे माँगे बहु देन कहैं मंगन को देखि पेट
देत बार बार हैं। जाको मुख देखे भली प्रापति की घरी होत सदा
सुभ जन मन भाये निरधार हैं ॥ भोगी हूँ रहत बिलसत अवनी
के मध्य कन कँन जोरें दान पाठ पर बार हैं। सेनापति बैनन
की रचना विचारो जामें दाता अरु सूम दोऊ कीन्हें इकतार हैं।

(१) पट = वस्त्र, किवाड़ । (२) = दातापक्ष में 'सुभजन
मन भाये' और सूम पक्षमें 'सुभ जनम न भाये' । (३)
भोगी = भोग विलास करनेवाला, और सांप । (४) कनकन =
कनक न और कणकण (थोड़ा थोड़ा)

(भूषण कवि कहते हैं)

सीता संग सोभित सुलच्छन सहाय जाके भूपर भरत नाम
भाई नीति चारु हैं। भूपन भनत कुल सूरकुल भूषण हैं दास-
रथी सब जाके भुज भुव भारु है। और लंक तोर जोर जाके
संग बान रहैं सिधुर है बांधे जाके दलको न पारु है। तेगहि कै
भेटै जौन राकस मरद जाने सरजा सिवाजी राम ही को
अवतारु है ॥

इसमें अंतिम चरन के अंतिम वाक्य से स्पष्ट प्रगट होता है
कि कविका लक्ष्य दोनों ओर है।

सीता संग सोभित = श्रीतासंग सोभित । लच्छन = लक्ष्मण
शुभ लक्षण । भरत = भरता है, भरतजी । सूरकुल = सूर्यकुल =
बीरगण । दासरथी = दशरथके पुत्र, रथी हैं दास जिसके ।
लंक = लंका, कमर । बान रहैं = बाण रहते हैं, बानर हैं । सिधुर
है बांधे = सिधुको बांधा, हाथी छोड़े बांधे रहते हैं । तेगहि कै

भेद—तलवार ही से भेंटता है, उसको पकड़ कर भेंटता है।
जोनराक का मरद जानै—जो नर अकस में मरद समझता है,
 जो राक्षसों को मर्दन करना चाहता है।

इसी प्रकार और भी उदाहरण समझ लेना चाहिये।

अर्थश्लेष के और अधिक उदाहरण अर्थालंकार में दिये जायेंगे।

सूचना-शब्दः श्लेष में एक वा दो शब्द होते हैं और उनका श्रेष्ठार्थ श्रेष्ठ वही शब्दों पर निर्भर रहता है। यदि वे शब्द पर्यायवाची शब्दों से बने हों तो वह अलंकार ही मिट जाता है। इसी ने उसे शब्दालंकार मानना पड़ा है।

अर्थश्लेष में शब्दों को बदल देने पर भी अलंकार बना रहता है। कहीं ऐसा भी होता है कि कुछ शब्दों को बदल सकते हैं, कुछ को नहीं बदल सकते। ऐसे स्थान पर जिसकी प्रधानता हो वही मानना चाहिये।

(दूसरा पटल)

अर्थालंकार

(१)—उपमा ❀

अर्थालंकारों में सर्वोत्तम और अनेक अलंकारों का मूल उपमा अलंकार है। इसी से इसे पहले लिखते हैं।

गोहा—रूप रंग गुण काहु को काहु के अनुसार।

तासों उपमा कहत हैं जे सुबुद्धि आगार ॥

जाको वर्णन कीजिये सो उपमेय प्रमान।

जाकी समता दीजिये ताहि कहिय उपमान ॥

उपमेयरु उपमान में समता जेहि हित होय।

भो साधारण धर्म है कहन सयाने लोय।

मो, से, मी, इव, तूल, लौं, सप्र, समान उर आन।

ज्यों, जैसे, इमि, सरिम, जिमि, उपमा बाचक जान ॥

कहीं कहीं “रंग, नाई, न्याय, और मतिन” भी बाचक होते हैं।

बिबरण—जब दो वस्तुओं में पृथक्ता रहते हुए भी कोई समता वर्णन की जाय तब उपमा अलंकार होता है। समता आकृति, रंग और गुणकी होनी चाहिये। वर्णन करने में जिसकी मुख्यता हो उसे ‘उपमेय’, जिससे समता दें उसे ‘उपमान’, जिस हेतु समता दें उसे ‘धर्म’ और जिस शब्द के आश्रय से समता प्रगट करें उसे ‘बाचक’ कहते हैं। जैसे—

बंदों कोमल कमल से जगजननी के पायँ।

* अँगरेजी में इस अलंकार की ‘सिमिली’ (Simila) और फारस तथा बर्मी में ‘तशबीह’ कहते हैं।

इसमें कवि का मुख्य तात्पर्य जगजननी (पार्वती) के चरणों के वर्णन में है। इस हेतु ' पाँच ' शब्द ' उपमेय ' है। कमल ' उपमान ' कामल ' धर्म ' आर ' से ' बाचक है। उपमा के दो भेद हैं—(क) पूर्णा (ख) लुप्ता ।

क—(पूर्णा उपमा)

बाचक साधारण धर्म उपमेय रु उपमान ।

ये चार। जहाँ प्रगट तहाँ पूरण उपमा जान ॥

उदा०—राम लखन सीता सहित सोहत परणानिकेत ।

जिमि वामव वस अमरपुर शची जयंत समेत ।

यहाँ राम लखन और सीता उपमेय बासव (इन्द्र) जयंत और शची उपमान, ' सहित ' धर्म और ' जिमि ' बाचक चारों प्रगट हैं । इसी प्रकार और भी जानो । कथा—

सो०—उदय सूर सो भाल, मिदुर यसो गनेस को ।

हरत विघ्न को जाल, जो जग व्यापक तिमिर सो ॥

यहां भाल उपमेय, सूर उपमान, उदय साधारण धर्म ' सो ' बाचक और विघ्न जाल उपमेय, तिमिर उपमान, हरत धर्म और ' सो ' बाचक प्रगट है ।

पुनः—आनंद देत चकोर हितून को है बस काकन का दुखवारो ।

कनन है सन कुमोदन को कल चाँदनी किस्तिमदा सन भारो ।

गोकुल शील सुधा सरसै बरसै सुख है अति ही उजियागे ॥

मंद करै अर्ग्य दन को यश चंद सो सेत महोपतिहारो ॥

सेवहि लखन माय रघु बागहि । जिमि अघिवेका पुरुष शरीरहि ।

रामहि लखन विलोकन कैसे । शशहि चकोर किशोरक जैसे ॥

कबित्त—फूलि उठे कमल से अमल हितू के नैन, कहै ' रघु नाथ, भरे चैनरस सियरे । दारि आवे भौर से कत गुनी गुन

गान सिद्ध से सुजान सुख सागर सों नियरे । सुरभी सों
खुलन सुकवि को सुमान लागी, चिरिया सी जागी चिन्ता जनक
के जियरे । धनुष पै ठाढ़े राम रवि से लसत आज भार के से
नखत नरिंद परे पियरे ।

पुनः १-करिकर सरिस सुभग भुजदण्डा ।

२-पीपरपात सरिस मन डोला ।

३-विरही इव प्रभु करत विषादा ॥

(पूर्णोपमा का चक्र)

नाम	उपमेय	उपमान	वाचक	धर्म	उदाहरण
पूर्णोपमा	राम	रवि	से	लसत	—राम रवि से लसत
	नरिंद	भोगनखत	से	परेपियरे	भोगके मनखतनरिंदपरपियरे
	भुजदंड	करिकर	सरिस	सुभग	करिकर म रिसुभग भुजदंडा
	मन	पीपरपात	सरिस	डोला	पीपरपात सरिस मन डोला
	प्रभु	विरही	इव	करतविषादा	विरही इव प्रभु करत विषादा

सूचना-उपमालंकार के प्रयोग से निम्न-लिखित पांच लाभ हैं :—

- (१) अभोष्ट वस्तु का सम्यक् ज्ञान होता है ।
 - (२) दो वस्तुओं की चमत्कारिक तुलना से चित्त प्रसन्न होता है ।
 - (३) उपमाजनित परिणामदर्शन से स्थायी शिक्षा मिलती है ।
 - (४) भाषा में चमत्कार और सौन्दर्य आ जाता है ।
 - (५) थोड़े में बहुत सा बोध होता है ।
- अतः कविता में इस अलङ्कार की अनिवार्य आवश्यकता है ।

ख —(लुप्तोपमा)

दो९—वाचक साधारण धरम उपमेय रु उपमान ।

इन्में में इक द्वै तीन त्रिनु लुप्ता विविध विधान ॥

विवरण—पुर्णोपमा में चार वस्तुएँ होती हैं । इनमें से जहां किसी का लोप हो वहां लुप्तोपमा कहते हैं ।

इस विषय में भिन्न आचार्यों के भिन्न २ मत हैं । हमारे मत से जो हमें ठीक जँचते हैं उन्हीं को हम यहां लिखते हैं ।

१—(वाचकलुप्ता)

जहां वाचक शब्द का लोप हो—जैसे—

१—जारी दियो उपसुंद सुत दुसह रूप दुख धाम ।

सूर शिरोमणि रावरो राम काम अभिगम ।

२—सरदमयंक बदन छवि सीवां ।

३—नव अम्बुज अम्बक छवि नोकी ।

४—शरद विमल विधु बदन साहावन ।

५—नील सरोरुह श्याम तरुण अरुण वारिज नयन ।

यहां सो, से, सम इत्यादि वाचक शब्दों का लोप किया गया है ।

२—(धर्मलुप्ता)

जहां साधारण धर्म का लोप हो—जैसे

१—करि प्रणाम रामहि त्रिपुरारी । हरषि मुधा सम गिरा उच्चारी ।

२—तुम सम पुरुष न मो सम नारी ।

३—गौतम नारी तर गई रही जो अघ सों पूरि ।

पाय सजीवन मूरि सी प्रभु पद पंकजधूरि ।

४—बाहें भुजंगसी, पल्लव से कर आँगुरी पै नख हीरक हार से ।

त्यो लछिराम घटान से रंग प्रभा विहँसे मुकुताहल धार से ।

ये भ्रमरावलि लौंजुलफँ युगमोहिँ कमानसी मानन मार से ।

बालमयंक लों भालथली रघुनाथ के लोचन खंजकुमार से ।

५-कुंद इंदु सम देह उमारण करुणायनन ।

६-करिकर सम प्रभुभुज दशकंधर ।

इन उदाहरणों में साधारण धर्म का लोप किया गया है ।
इसी प्रकार और भी लुप्ताओं में केवल नाम ही से उसकी परिभाषा जान लेनी चाहिये ।

३-(उपमानलुप्ता के उदाहरण)

१-वाके से चंचल नयन जग काहू के हैं न ।

२-सुन्दर नन्दकिशोर सो जग में मिले न ओर ।

३-लखन राम से राज समाज में राजत कौन महोप के बारे ।

४-समर धीरनहिजाय बखाना । नेहिसमनहि प्रतिभटजग आना

४-(उपमेयलुप्ता के उदाहरण)

१-चंचल हैं ज्यों मीन अरुणारे पंकज सरिस ।

निरखि न होय अधीन ऐसो नर नागर कवन ।

२-सौचरे गोरे घटा छटा से बिहरै मिथिलेशकी बागथली में ।

५-(वाचकधर्मलुप्ता)

जिसमें वाचक शब्द और साधारण धर्मका लोप किया जाय ।

१-ईशप्रसाद असीस तुम्हारी । सब सूतबधू देवसरि-बारी ।

२-विधुब्रजनी मृगशावकलोचनि ।

३-लखु लखु सखि सारसनयन इंदुबदन घनश्याम ।

बिज्जुहास दाडिमदसन बिम्बाधर अभिराम ॥

४-केहरिकंधर चारु जनैऊ ।

५-लहि प्रसाद माला जु भौ तनु कदंब की माल ।

मुचना-इसके कथन में बड़ी सावधानी चाहिये । तनक ही भेद से यह अलंकार रूपक अलंकार हो जाता है ।

६-(धर्मोपमेय लुप्ता)

जिसमें धर्म और उपमान का लोप किया जाय ।

१-रं आल मालति सम कुसुम दूँदेहु मिलिहै नाहि ।

यहां मालती कुसुम उपमेय, सम बाचक मौजूद है । सुंदर, मनोहर आदि धर्म का और 'मालिहै नाहि' कहकर उपमान का लोप किया गया है ।

२-आजु परंदर सम कोउ नाहीं ।

३-देखो दाडिम से दसन ।

यहां 'दसन' उपमेय और 'से' बाचक मौजूद है । स्वेत, चमकीले इत्यादि धर्म का और 'दाडिमबीज' उपमानका लोप है, क्योंकि केवल 'दाडिम' दांतों का उपमान नहीं कहा जा सकता । दाडिम शब्द केवल उसका लक्षक है ।

४-देख्यो खोजि भुवनदशचारी । कहँ अस पुरुष कहाँअस नारी

७-(धर्मोपमेय लुप्ता)

जहां धर्म और उपमेय का लोप किया जाय । जैसे —

१-त्यौर तिरोछे किये मुनि संगहि हेरत संभु सरासन मार से ।

त्यौँ लछिराम दुहँ कर बान कमानसीभौँहैं सुब्रह्मवतार से ।

सामुहैं श्रीमिथिलापतिकेडटिठाढ़े सहो रसवीरसिगार से ।

नीलम चंपक मालसे कौन ? स्वयम्बरमें मृगराजकुमार से ।

यहां मार से, रस वीर सिगार से, नीलम चंपक माल से और मृगराज कुमार से इत्यादि में उपमान और बाचक मौजूद हैं । धर्म का प्रत्यक्ष लोप है । अज्ञानसूत्रक 'कौन' शब्द कहकर उपमेय का लोप किया गया है, जो मुनि संग, श्रीमिथिलापति सामुहैं, और स्वयम्बर इत्यादि के साहचर्य से लक्षित होता है ।

८-(वाचकोपमेय लुप्ता)

जहां वाचक और उपमेय का लोप किया जाय-जैसे:-

- १-अटा उदय होतो भयो छबिधर पूरण चन्द ।
- २-चढो कदम पै कालिया बिपधर देखो आय ।

९-(वाचकोपमान लुप्ता)

जिसमें वाचक और उपमान का लोप किया जाय ।

- १-तेरे ये कटु बचन हूं सुनत हियो हरपात ।
- २-सूच्छम हरि कटि ऐन ।
- ३-चितवनि चारु मारमदहरनी भावत हृदय जाति नहि बरनी ।
- ४-अरुण नयन उर बाहु विशाला ।
- ५-सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे ।
- ६-मूरति मधुर मनोहर देखी । भयो विदेह विदेह विशेषी ।

१०-(वाचक धर्म उपमान लुप्ता)

जिसमें केवल उपमेय का जिक्र हो और युक्ति से उपमान का अभाव कहा जाय ।

- १-राम सरूप तुम्हार, बचन अमोचर बुद्धि पर ।
- २-अहै अनूप राम प्रभुताई । बुधि विवेक बल तरकि न जाई ।
- ३-देखि अनूप एक अमराई ।
- ४-अति अनूप जहँ जनक निवास ।
- ५-बलि बांधत प्रभु बाढ़ेऊ स। तनु बरणि न जाय ।

सूचना-‘वाचक धर्म उपमेय लुप्ता’ का ‘रूपकातिशयाक्ति’ अलग ही एक अलंकार है । ‘धर्म उपमान उपमेय लुप्ता’ में केवल वाचक रहैगा जिससे कोई अलंकारता नहीं आ सकती, और ‘वाचकोपमेयोपमान लुप्ता’ में केवल साधारण धर्म के तथ्य से अलंकारता आ नहीं सकती ।

(लुप्तालंकार सूचक चक्र)

नाम	उपमेय	उपमान	धर्म	वाचक
१-बाह्यकलुप्ता	राम	काम	अभिराम	×
	नयन	वारिज	तरुण अरुण	×
२-धर्मलुप्ता	तुम	पुरुष	×	सम
	मो	नारी	×	सम
	देह	कुंद, इंदु	×	सम
३-उपमानलुप्ता	नन्दकिशोर	×	सुन्दर	सो
	लक्ष्मणराम	×	राजत	से
४-उपमेय लुप्ता	×	घटा	साँवरे	से
	×	छटा	गोरे	से
५-वाचकधमलुप्ता	सुतबधू	देवमाधिवारी	×	×
	कंधर	केहरि (कधर)	×	×
६-धर्मोपमानलुप्ता	पुरन्दर	×	×	सम
	पुरुष	×	×	अस
	नारी	×	×	अस
७-धर्मोपमेयलुप्ता	×	नीलमधपकमाल	×	से
	×	मृगराजकुमार	×	से
८-वाचकोपमेयलुप्ता	×	पूर्णचन्द्र	छाबिधर	×
९-वाचकोपमान	नयन	×	अरुण	×
	उर	×	बिशाल	×
लुप्ता	बाहु	×	बिशाल	×
१०-वाचकधर्मो	रामप्रभुताई	×	×	×
	जनकनिवास	×	×	×
वमान लुप्ता	अमराई	×	×	×

उदाहरण

- = राम काम अभिराम ।
- = तरुण अरुण बारिज नयन ।
- = तुम सम पुरुष न मो सम नारी ।
- = कुंद इंदु सम देह ।
- = सुन्दर नंदकिशोर सो जग में मिलै न और ।
- = लक्ष्मनराम से राजसमाज में राजत कौन महीपके बारे ।
- = साँवरे गोरे घटा छटासे बिहरैं मिथिलेशकी बागथली में
- = सब सुतबधू देवसरि बारी ।
- = केहरि कंधर चारु जनेऊ ।
- = आजु पुरन्दर सम कोउ नाही ।
- = कहं अस पुरुष कहां अस नारी ।
- = नीलम चंपल माल से कौन स्वयंवर में मृगराजकुमार से ।
- = अटा उदय होतो भयो छविधर पूरण चंद ।
- = अरुण नयन उर बाहु विशाला ।
- = { अहै अनूप राम प्रभुताई ।
अति अनूप जहँ जनक निवास ।
देखि अनूप एक अमराइ ।

जो पाठक उर्दू, हिन्दी अङ्ग्रेजी तीनों भाषायें जानते हों
वे आगेवाले चक्र की भली भाँति समझ लें—

हिन्दी	उर्दू वा फारसी	अंगरेजी
उपमा	तशबीह	सिमिली (Simile)
पूर्णोपमा	तशबीह कामिल	कम्प्लीट सिमिली (Complete Simile)
उपमेय	मुशब्बह	दी सबजेक्टकम्पेयर्ड (The subject compared)
उपमान	मुशब्बह बिही	दी आबजेक्ट विद विच दी कम्पैरीज़न इज़ मेड । (The object with which the comparison is made)
वाचक	हर्फ तशबीह	दी वर्डइम्प्लाईंगकम्पैरीज़न (The word implying comparison)
धर्म	वजह तशबीह	दी कामन्पेड्रीव्यूट (The common attribute)
लुप्तोपमा	तशबीह नामुक्म्मल	इन्कम्प्लीट सिमिली (Incomplete Simile)

(२)-मालोपमा

दो०-जहाँ एकै उपमेय के वरनैं बहु उपमान ।

भिन्न अभिन्नहु धर्म तैं मालोपमा बखान ॥

विवरण-जहाँ एक उपमेय के बहुत से उपमान कहे जायें, वहाँ मालोपमा अलंकार होता है। यह दो प्रकार का होता है—
(१) भिन्नधर्मा (२) एरुधर्मा ।

(भिन्नधर्मा मालोपमा)

जहाँ अनेक उपमानों के पृथक्पृथक् धर्मों के वास्ते उपमा दी जाय । जैसे-

सवैया—तेजनिधाननमेंरवि ज्यों छविवंतनमेंविधुज्यों छविछाजै
 सैलन में ज्यों सुमेरु लसै वर वृक्षन में कलपद्रुम राजै ।
 देवन में मतिराम कहै मधवा जिमि सोहत सिद्ध समाजै ।
 राउछतासुत भाऊ दिवान जहान के राजन में इमि राजै ।

दो०—मरकत से द्रुतिवंत हैं रेशम से मृदु वाम ।

निपट महीन सुतार से कच काजर से स्याम ॥

बंदौ खल जस सेस सरोषा । सहस बदन वरनै परदोषा ।
 पुनि प्रणवौ पृथुराज समाना । पर अघ सुनै सहसदसकाना ।
 बहुरि शक्र सम विनवौ तेही । संतत सुरा नीक हित जेही ।
 दो०—सफरी से चंचल घने मृग से पीन सुऐन ।

कमलपत्र से चारु ये राधेजू के नैन ॥

(एकधर्मा मालोपमा)

जहां सब उपमानों का एक ही धर्म कथन किया जाय वा
 अनुमान कर लिया जाय ।

हिमवत जिमि गिरिजा महेसहि हरहि श्री सागर दर्द ॥
 तिमि जनक रामहि सिय समरपी विश्व कल कीरति नई ॥
 जिमि भानु बिनु दिन प्रात बिनु तनु, चन्द्र बिनु जिमि यामिनी ॥
 तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिनु, समुझि धौं जिय भामिनी ॥
 बैनतेय बलि जिमि चह कागु । जिमि शश चहै नागवरि भागु ॥
 जिमि चह कुशल अकारण कोही । सुखसंपदा चहै शिवद्रोही ॥
 लोभी लोलुप कीरति चहई । अकलंकित कौ कामी लहई ॥
 हरिपद बिमुख परमगति बाहा । तस तुम्हार लालच नरनाहा ।

कविस्त—सारद सो, सेस सो, सुधा सो, सकसिंधुर सो,
 सुरसरिता सो, सूर ससि सो, बखान है । हंसन सो हीरन

सो, हिम सो, हलायुध सो, हरगिरि हास्य हू सो, जपत जहान है । भनत 'मुरार' घनसार सर्दघन हू सो, पारद सो, प्रय सो, पिनाकी सो, प्रमान है । आज युद्ध-जीत-जस तखत महीप तेरो दीप दीप दीपै दीपमालिका समान है ।

सवैया—भृगुनन्द कुठार सी, वासव बज्र सी..... ।

त्रिपुरारि त्रिशूल सी श्रोपति चक्रसी 'बंक' कहै बड़वानलसी । नरसिंहनखाली सी खेत में काली सी नैस मुखानल की भलसी । तरवार तिहारिय मान महीपति है विकराल हलाहल सी ।

सारद नारद पारद अंग सी छीर तरंग सी गंग की धार सी । शंकर शैल सी चंद्रिका फैल सी सारसरैलसी हंसकुमार सी । 'दास' प्रकास हिमाद्रि विलाससीकुंदसीकाँससी मुक्तिभंडारसी । कीरति हिंदु नरेश की राजनी उज्ज्वल चारु चमेली के हारसी ।

इन्द्र जिमि जंभ पर बाडव सु अंभ पर रावण सदम्भ पर रघुकुल राज है । पौन बारिवाह पर शम्भु रतिनाह पर ज्यों सहस्र बाह पर राम द्विजराज है । दावा द्रुमदण्ड पर चीता मृग भुण्ड पर 'भूषण' वितुण्ड पर जैसे मृगराज है । तेज तिमिरंस पर कान्ह जिमि कंस पर त्यों मलेच्छ बंस पर सेर सिवराज है ।

शक्र जिमि शैल पर अर्क तम फैल पर बिघन की रेल पर लम्बोदर लेखिये । राम दसकंध पर भीम जरासंध पर 'भूपन' ज्यों सिंधुर पर कुंभज विसेपिये । हर ज्यों अनंग पर गरुड भुजङ्ग पर कौरव के अंग पर पारथ ज्यों पेखिये । बाज ज्यों विहंग पर सिंह ज्यों मतङ्ग पर मलेच्छ चतुरंग पर सिवराज देखिये ।

(समुच्चयोपमा)

कोई कोई कवि 'समुच्चयोपमा' नाम का एक और भा अलंकार मानते हैं, जिस का लक्षण यह है कि उपमेय और उपमान

की समता कई एक धर्मों के कारण की जाय । जैसे—“चम्पक कलिका सी अहै रूप रङ्ग अरु बास” । यहा एक ही उपमेय (किसी नायिका) की समता एकही उपमान (चम्पककलिका) से रूप रङ्ग और बास तीन धर्मों के कारण की गई है ।

पुनः—बहुवर्णासहज प्रिया तमगुणहरा प्रमान ।

जगमारग दरसावनी सूरज किरन समान ॥

३—(रसनोपमालंकार)

दो०—कथित प्रथम उपमेय जहँ होत जात उपमान ।

ताहि कहैं रसनोपमा जे जग सुकावि प्रधान ॥

विवरण—कई एक उपमालङ्कारों की एक शृङ्खलाबद्ध श्रेणी को, जिसमें क्रमशः प्रथम कहा हुआ उपमेय उपमान हाता जाता है, रसनोपमा कहते हैं ।

(उदाहरण)

दो०—मति सी नति, नति सी विनति विनती सी रति चारु ।

रति सी गति, गति सी भगति तो में पवनकुमार ॥

यंस सम बखत, बखत सम ऊँचो मन, मन सम कर, कर सम करो दान के (पुनः—) मुकुर सम विधु, विधु सरिस मुख, मुख समान सरोज ।

सवैया—न्यारों न होत बफारों ज्यों धूम तें, धूम ज्यों जात वने वन में मिलि । ‘दास’ उसास मिलै जिमि पौन में, पौन ज्यों पैठत आँधिन में पिलि । कौन जु दो करे लोन ज्यों नीर में, नीर ज्यों छीर में जात खरा खिलि । यों मति मेरी मिली मन मेरे सों, मो मन गो मनमोहन सों मिलि ।

दो०—बच सी माधुरि मूरती, मूरति सी कल कीति ।

कीरति लों सब जगत में छाव रही तव नीति ॥

पुनः-शुभ स्वरूप के सम सुमति, सुमति सरिस गुन ज्ञान ॥
सुगुन ज्ञान सम उद्यमहु उद्यम से फल जान ॥

४-(अनन्वयौपमा)

दो०--जहाँ होय उपमेय को उपमेयै उपमान ।
तहाँ अनन्वय कहत हैं जे जन परम सुजान ।

बिबरण-जहाँ उपमान के अभाव के कारण एकही वस्तु उपमेय और उपमान दोनों का काम दे, वहाँ अनन्वयालङ्कार होगा।
उ०-(१)-लही न कतहुँ हारि हिय मानी ।

इन सम ये उपमा उर आनी ॥

(२)-उपमा न कोउ कह दास तुलसा कतहुँ कवि कोबिद लहैं ।
बल विनय विद्या शील शोभा सिन्धु इन सम यह अहैं ॥

(३)-मिली न और प्रभा रती करी भारती दौर ।

सुन्दर नंदकिशोर से सुन्दर नन्दकिशोर ॥

(४)-निरवधि गुण निरुपम पुरुष भरत भरत सम जानि ।

(५)-स्वामि गुसाइहि सरिस गुसाई । मोहि समान मैं
स्वामि दीहाई ।

(६)-ओ रघुनाथ प्रताप लौं भूपर श्रीरघुनाथ प्रतापकी लाली ।

(७)-मैथिली सी तिहुँ लोकन में मिठी मैथिली की शुभ
सुन्दरताई ।

(८)-राम से राम, सिया सां सिया सिरमौर बिरंजि
विचारि सँवारे ।

५-(उपमेयौपमा)

दो०--उपमा लागै परसपर सो उपमा उपमेय ।

बिबरण-जहाँ उपमेय के लिये केवल, एकही उपमान हो,

तीसरीसदृश वस्तु का अभाव हो, वहां 'उपमेयोपमा' अलंकार कहा जायगा। जैसे—

१—वे तुम सम तुम उन सम स्वामी।

२—तो मुख सो ससि सोहत है वलि सोहत है ससि सो मुख तेरो।

३—भूपर भाऊ महीपति को मन सो कर औ कर सो मन ऊँनो।

४—लखन राम कलाधरसे सो कलाधर लखन राम सो सोहै॥

५—दो०—सुधा संत के बैन सम, बैन सुधा सम जान।

बैन खलन के विषहि से, विष खल बैन समान॥

(सवैया)—झंवरगंगसी हैं सरजू, सरजू सम गंग छटा नभ साजै।

यौं लछिराम सुदेव से सेवक, सेवक से शुभदेव समाजै॥

सोहैं सुरेश से राम नरेश, सुरेशह राम नरेश सो राजै।

औधपुरी अमरावती सी, अमरावती औधपुरी सी विराजै॥

सूचना—ये ऊपर लिखे हुए पाँचो अलंकार उपमा ही के भिन्न भिन्न भेद हैं। प्राचीन कवियों ने उपमा के और भी अनेक भेद माने हैं, पर उनमें कोई विशेष विलक्षणता नहीं है।

उपमा अलंकार ही कविता का प्राण और कवियों का पुष्ट आधार है। आगे के अनेक अलंकारों में भी 'उपमा' ही प्राणवत् अंतर्हित रहैगी। इसलिये उनमें उपमेय और उपमान के लिये जो शब्द लिखे जायेंगे वे केवल पर्याय मात्र होंगे। उन्हें यहीं समझ लेना चाहिये।

उपमेय = { वर्य्य } , उपमान = { अवर्य्य }

(६) ललितोपमा

दो०—जहँ समता को दुहुन की लीलादिकपद होत

ताहि कहत ललितोपमा सकल कविन के गोत॥ (भूषण)

बिबरण—जहाँ उपमेय और उपमान की समता जताने के लिये सम. समान, लौं. इव, तुल्य इत्यादि पद न लाकर ऐसे पद लाये जाते हैं जिनसे उपमेय और उपमान में बराबरी, मुकाबला, मित्रता, इर्षा इत्यादि सूचक भाव प्रगट होता है उसे 'ललितोपमा' कहते हैं।

दो०—बहसत, निदरत, हंसत, अरु छवि अनुहरत, वखानि ।

शत्रु, मित्र, अरु होड़ कर, नीलादिक पद जानि ॥

बिबरण—जहाँ बहसत, हंसत, निदरत, छवि अनुहरत, शत्रु है, मित्र है, होड़ लगी है इत्यादि या इसी अर्थ के अन्य शब्द उपमेय और उपमान की बराबरी प्रगट करने के लिये आते हैं, वहाँ ललितोपमा समझना चाहिये। जैसे:—

कबिस—साहि तनै सरजा शिवा की सभा जामधि है मेरुवारी
सुर की सभा को निदरति है। भूषण भनत जाके एक
एक शिखर ते केते धौं नदी नद की रेल उतरति है ॥
जोन्ह को हंसति जोति हीरा मनि मंदिरन कंदरन में
छवि कुहू की उछरति है। ऐसो ऊँचो दुरग महावली
को जामें नखतावली सों बहस दिपावली करति है ॥

सूचिका—उत स्याम घटा इत हैं अलकैं बकपांति उतै इत
मोती लरी। उत दामिनि दंत चमक इतै उत चांप इतै भुवचंक
धरी ॥ उत चातक तो पिउ पीउ रतै बिसरै न इतै पिउ एक घरी।
उत बूंद अखंड इतै असुवा बरसा घिरहोनि तें होड़ परी ॥

सूचना—इसी को केशवदास ने 'लवणोपमा' कहा है और उदाहरणों दिया है—विषु कैसो बन्धु, किधौ चोर हरस्य रसको कि कुंदन को बादी किधौ मातिन को मोती है ॥.....किधौ केशवदाम रामचन्द्र जूको गीत है।

यहाँ रामजी के यश की 'स्वेतता' दर्साने के लिये विषुको बन्धु, हास्यरसका चोर, कुन्दन का बादा (मुद्दई) और मोती

का मित्र कहा है। इसी प्रकार का कथन 'ललितोपमा' कहा जाता है क्योंकि ऐसे कथनों से एक प्रकार की समता ही प्रगट होती है।

(७) प्रतीप *

सूचना- प्रतीप शब्द का अर्थ है 'उलटा'। अलंकार शास्त्र में इसका अर्थ लिया जाता है " उपमा के अंगों का उलटकर " उपमा अलंकार में जिस तरह उपमेय को उपमान के समान कहते हैं, ठीक उसके प्रतिकूल इस अलंकार में उपमान को उपमेय के समान कहते हैं। ऐसा करने से उपमेय की उत्कृष्टता, उपमा अलंकार की अपेक्षा कुछ और अधिक बढ़ जाता है। यही इस अलंकार का तात्पर्य है। प्राचीनों ने इस अलंकार के पाँच प्रकार माने हैं। यथा:-

(पहला प्रतीप)

दो०-जहाँ प्रसिद्ध उपमान को पलटि करिय उपमेय ।

तासों प्रथम प्रतीप कवि वर्णत बुद्धि अजेय ॥

सवैया-पायन से गुललाला जपादल पुंज वैधूक प्रभा विथरै हैं। हाथ से पल्लव नौल रसाल के लाल प्रभाव प्रकाश करै हैं ॥ लोचन की महिमा सी त्रिवेनी लखे लछिराम त्रितापहरै हैं। मैथिली आनन से अरविद कलाधर आरसी जानिपरै हैं ॥

सो०-तो पद से अनुमानि, अरुण अमल कोरे कमल ।

याही ते सनमानि, अवतंसित मोहन करे ॥

दो०-बिदा किये बटु विनय करि फिरे पाय मन काम ।

उतरि नहाये जमुनजल जो शरीर सम श्याम ॥

* इस अलंकार की फारसी, अरबी, तथा उर्दू में 'तशबीह' माकूल कह सकते हैं।

इन उदाहरणों पर विचार करने से प्रत्यक्ष जान पड़ता है कि पैर, हाथ, लोचन मुख और शरीर (वा शरीर का रंग) जो उपमा अलंकार में उपमेय माने जाते, वे यहां उपमान हो गये हैं और गुललाला, जपादल, बंधूक, रसालपल्लव, त्रिवेणी कमल और जमुनाजल जो उपमा में उपमान ठहराये जाते, यहां उपमेय हो गये हैं। यही 'उपमा के अंगों का उलट फेर' है।

(दूसरा प्रतीप)

दो०—जहां होय उपमान सों उपमेय को अमान ।

तहँ दूसरो प्रतीप है नव प्राचीन प्रमान ।

विवरण—उपमेय से उपमान को कुछ बढ़कर जताना ।

(इस अलंकार में सूरदास का यह पद बहुत अच्छा है)

पद—नंदनंदन के बिछुरे आँखियाँ उपमा योग्य नहीं ।

कंज खंज मृग मीन नहोहीं कविजन वृथा कहीं ॥

कंज होति मुँदि जाति पलक में जामिनि होत जहीं ।

खंज होत उड़िजात छिनक में प्रीतम जित तितहीं ॥

मृग होती रहती निसिवासर चन्दबदन द्विग ही ।

रूप सरोवर ते बिछुरे कहु जीवन मीन कहीं ।

बरवा—गरबु करी रघुनन्दन जिन मन माहँ ।

देखो आँखिन मूरति सिय कै छाँहँ ॥

दो०—महाभाज रघराज जू कीजत कहा गुमान ।

दण्ड कोष दलके धनी सरसिज तुमहिं समान ।

वरवे—का घू घुट मुख मूँदौ अबला नारि ।

चंद सरग प सोहत यदि अनुहारि ॥

(तीसरा प्रतीप)

दो०—जहँ वरनत उपमेय ने कुछ हीनो उपमान ।

तहँ तीसरो प्रतीप है कबिजन करो प्रमान ॥

बिबरण—जहां उपमेय की अपेक्षा उपमान में कुछ लघुता वर्णन की जाय ।

श्री रघुबीर सिया छबि सामुहैं स्याम घटा बिजुरी परै फीकी ।

करत गर्व तू कल्पतरु बड़ी सो तेरी भूल ।

या प्रभु की नीकी नजर तक तेरेही तूल ॥

कुलिशहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि ।

चित खगेश रघुनाथ कर समुझि परै कहु काहि ॥

मान महीपति के मन आगे लगे लघुकाँकरसा कनकाचल ।

(चौथा प्रतीप)

दो०—सरवरि में उपमेय की जब न तुलै उमपान ।

चौथो भेद प्रतीप को तहँ बरनै मतिमान ॥

उ०—बहुनि विचार कीन मनमाहीं ! स्वीयबदन सम हिमकरनालीं

दो०—तो मुख ऐसो पंकसुत अरु मयंक यह बात ।

बरनै सदा असंक कवि बुद्धि रंक विख्यात ॥

तुव मुख के सम है सकत कहा विचारो चन्द ।

पुनः—कोटि काम उपमा लघु सोऊ ।

(पाँचवां प्रतीप)

दो०—उपमेय के मुकाबिले व्यर्थ होय उपमान ।

पंचम भेद प्रतीप को ताहि कहत गुनवान ॥

दो०—या भूषण के जानिये वाचक ' कितक ' निकाम ।

मंद, वृथा कुछ नहि, कहा, मिथ्या, निफल, गुलाम ॥

(उदाहरण)

दो०-अमिय भरत चहुँ ओर सों नयनताप हरि लेत ।

राधा जू को वदन अस, चन्द उदय केहि हेत ॥

दो०-प्रभा करन तमगुनहरन, धरन सहसकर राज ।

तव प्रताप ही जगत में कहा भानु सों काजु ॥

दो०-जहँ राधा आनन उदित निसिवासर आनंद ।

तहाँ कहा अरविंद है कहा बापुरो चंद ॥

(ब० तिलका) याको प्रताप यश लाक प्रकाश है ही ।

हैं ये वृथा करत चित्त जबै जबै ही ।

धाता प्रभाकर निशाकर के तबै ही ।

रेखा करे चहुँघ मडल व्याज तै ही ।

दो०-जब जब जसवंत तेज जस, बिधना लेत जु देख ।

व्यर्थ समुभिरवि शशि करत, कुंडालि मिस पग्विख ॥

पुनः-कल्पवृक्ष केहि काम को जब हैं नृप जसवंत ।

(८) रूपक *

दो०-उपमान रु उपमंय तें बाचक धर्म मिटाय ।

एकै कै आंगणिये सो रूपक कविराय ॥

दो०-जो काहु के रूप इव रूप बनवै और ।

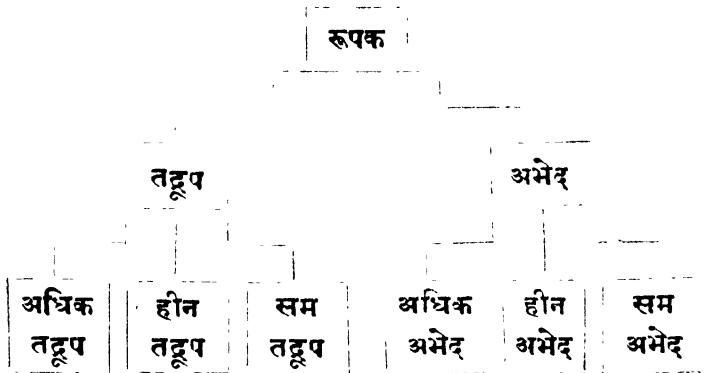
रूपक ताहीसों कहैं सबै सुकवि सिरमौर (मुरारिदान) ।

कहुँ कहिये यह दूसरो कहुँ राखिये न भेद ।

* नोट—अंगरेजी में इस अलंकार को मेटैफर (Metaphor) और फारसी तथा उर्दू में तलानमा कहते हैं ।

अधिक, हीन, सम त्रिविध पुनि ते तद्रूप अभेद ।

विवरण-पूर्णपमालंकार में से वाचक और धर्म को मिलाकर उपमेय पर ही उपमान का आरोप करै अर्थात् उपमेय और उपमान को एक ही मानले, यही रूपक अलंकार होगा । इस अलंकार के पहले दो भेद-(१) तद्रूप और (२) अभेद । फिर प्रत्येक के तीन तीन प्रकार (१) अधिक (२) हीन और (३) सम होते हैं । इस तरह पर इसके ६ प्रकार होजाते हैं ।



१-(तद्रूप रूपक)

जहां उपमान को उपमेय रूप करके वर्णन करै, वहां तद्रूप रूपक है । इसमें बहुधा अपर, दूसरा, अन्य इत्यादि शब्द वाचक होकर आते हैं ।

(अधिक तद्रूप रूपक)

जहां उपमेय में उपमान से कुछ गुण बढ़कर हो, तोभी तद्रूप ही कहें ।

दो०-जस धुज वा धुजते अधिक तीन लोक फहरात ।

धर्ममित्र बड़ मित्र ते मरत जियत सँग जात ॥

यहां यश को ध्वजा ही करके वर्णन किया है, और धर्म को मित्र ही करके, परन्तु यश रूपी ध्वजा में यह अधिक गुण कहा कि वह तीनों लोकों में फहराता है (साधारण ध्वजा में यह गुण नहीं) और धर्ममित्र में यह अधिकता है कि वह मरने के अनन्तर भी साथ देता है (जो साधारण मित्र नहीं करसकता)

पुनः—मुख्य शशि वा शशिते अधिक उद्दिनज्योतिर्दिनराति ।

(हीन तद्रूप रूपक)

उपमेय में उपमान से कुछ गुण कम होने पर भी दोनों को एक रूप ठहरावें ।

(उदाहरण)

दो०—अपर धनेश जनेश यह नहिं पुष्पक आसीन ।

द्वितीय गणेश सुवेश शुचि सोहत शृङ्ग विहीन ॥

विष्णु के मन्दिरन तन्नि कथत आँच सब ठार ।

भाउ सिंह भूपाल को तेज तरणि यह और ॥

बरदा—दुई भुज के हारि रघुवर सुन्दर भेस ।

एक जीभ के लल्लिमन दूसर सेस ॥

दो०—भिरत फिरत जहँ तहँ कहो मानत नहिं बदफौल ।

यह अजान है दूसरो निन बिषाण को बैल ॥

दो०—हौ समदृष्टी शंभु तुम जग जाहर जसवंत ।

हौ ब्रह्मा मुख चारि निन मरुपति विश्व वदंत ।

दो०—तुव अरि नारिन के लिये सुनु जसवंत महीप ।

बन ओषधियां होति हैं निन कज्जल के दीप ॥

(कवित्त)

साहि तनै सिवराज भूषण सुजस तब बिगिर कलंक चंद
उर आनियतु है। पंचानन एकही बदन गनि तोहि गजबदन
गजानन बिना बखानियतु है। एक सीसही सहस सीस कला
करिबे को दोई दूग सों सहसदूग मानियतु है। दोई कर सों
सहसकर मानियत तोहि दोई बाहु सों सहसबाहु जानियतु है।

(सम तद्रूप रूपक)

नैन कमल ये ऐन है और कमल केहि काम।

सवैया—छाँह करें छिति मंडल को सब ऊपरयों मतिराम भये हैं।
पानिप को सरसावत हैं सिगरे जग के मिटि ताप गये हैं।
भूमि पुरन्दर भाऊ के हाथ पयोदन ही के सुकाज ठये हैं।
पंथिन के पथ रोकिये को नभ वारिद्वन्द्व वृथा उनये हैं।

दो०—रच्यौ बिधाता दुहुन लै सिगरी शोभा साज।

तु सुन्दरि शनि दूसरी यह दूजो सुरराज ॥

पुनः—अपर रमा ही मानियत तोहि साध्वी गुणवन्ति।

(अभेद रूपक)

उपमेय और उपमान की अभेदता सूचक रूपक का 'अभेद रूपक' कहते हैं। (तद्रूप रूपक में अपर, दूसरी, और, अन्य अथवा भिन्नता सूचक कोई शब्द कहकर केवल तद्रूपता प्रगट की जाती है, जैसा कि उदाहरणों से स्पष्ट है। इस अभेद रूपक में ऐसा नहीं किया जाता, वरन् उपमान को ठीक उपमेय का रूपही मानकर वर्णन करते हैं।

(अधिक अभेद रूपक)

जहां उपमेय में उपमान से कुछ अधिक गुण दिखलाकर एक-

रूपता स्थापित की जाय, वहां यह अलंकार होता है। यथा-
सवैया-जंगमें अंग कठोर महा मदनीर भरै भरना सरसे हैं।

भूलन रंग घने 'मतिराम' महीरुह फूलि प्रभान फँसे हैं।

सुन्दर सिंदुर मंडित कुम्भन गैरिक शृंग उतंग लसे हैं।

भाउ दिवान उदार अपार सजीव पहार करी बकसे हैं ॥

यहां हाथी को पहाड़ माना है, पर इतना अधिक कहा है कि ये हाथी 'सजीव' पहाड़ हैं। (पहाड़ निर्जीव वस्तु है)।

पुनः-दो०-तव मुख में अरु चंद में कछू भेद न लखाय।

एक वगैर कलंक के, तुव मुख जानो जाय ॥

पुनः-नव विधु विमल तात यश तोरा ॥ रघुवर किंकर कुमुद चकोरा
उदित सदा अथइहि कबहूँ ना। घटहि न जगनभ दिनदिनदूना ॥

पुनः-रन वन घूमे तुव भुज लतिको पै चढ़ी कढ़ी म्यान
बांबी ते विषम विष भरी है। जा अरि को डसे सो तो तजे
प्राण ताही छिन गारडू अनेक हारे भारे ते न भरी है ॥ भनत
'कविदराउ' बुद्ध अनिरुद्ध तनै जुद्ध वीरतासों एक तैं ही
बस करी है। तरल तिहारी तरवार पन्नगी को कहूँ तंत्र है
न मंत्र है न जंत्र है न जरी है।

(हीन अभेद रूपक)

जहां उपमेय में उपमान से कुछ कमी दिखला कर भी
रूपक बांधा जाय। यथा ॥

दो०-महा दानि याचकन को भाऊ देत तुरंग।

पच्छन बिगर विहंग हैं सुण्डन बिगर मतंग ॥

कलयुग सतयुग सो कियो खलदल सकल सँहारि।

भुवन भरण पोषण करन द्वैभुजधर दनुजारि ॥

सबके देखत व्योम पथ गयो सिन्धु के पार।

पक्षिराज बिन पत्न को बीर समीरकुमार ॥

पुनः- है राधे तू उरवसी, धरे मानुषी देह ।

(सम अभेद रूपक)

जहां उपमेय और उपमान की पूर्ण रूप से एकरूपता वर्णन की जाय । यथा—

राम-कथा सुन्दर करतारो । संसय बिहँग उड़ावनहारो ॥

कामना आठहु जाम फलै कलपद्रुम राम नरेश हमारे ।

दो०-नारि कुमुदिनी अवध सर, रघुवर विरह दिनेश ।

अस्त भये विकसित भई, निरखि राम राकेश ॥

सम्पति चकई भरत चक्र, मुनि आयसु खेलवार ।

तेहि निसि आश्रम पीजरा, राखे भा भिनसार ॥

सूचना-वास्तव में सच्चा और शुद्ध रूपक यही है ।

(विवरण)

अर्थ निर्णय, न्यायशास्त्र और व्याकरण के अनुसार तो रूपक के यही छः भेद हैं जो ऊपर कहे गये । परंतु वर्णन प्रणाली के अनुसार इन्हीं सब रूपकों के केवल तीन प्रकार कहे जा सकते हैं, अर्थात् (१) सांग (२) निरंग और (३) परंपरित ।

(१) 'सांग' रूपक वह कहलाता है, जिसमें कवि उपमान के समस्त अंगों का आरोप उपमेय में करता है । जैसे—

पद-देखो माई सुन्दरता को सागर ।

बुधि बिबेक बल पार न पावत मगन होत मन नागर ॥ १ ॥

तनु अतिश्याम अगाध अंबु निधि कटि पट पीत तरंग ।

चितवतचलत अधिकछबि उपजत भँवर परत सब अंग ॥ २ ॥

नैन मीन मकराकृत कुंडल, भुजबल सुभग भुजंग ।

मुकुतमाल मिलि मानो सुरसरि द्वै सरिता लिये संग ॥३॥

मोर मुकुट मणिगण आभूषण कटि किंकिणि नख चंद ।

मनु अडोल बारिधि में बिबिन राका उड्गण वृन्द ॥ ४ ॥

बदन चंद्र मंडल की सोभा अवलोकत सुख देत ।

जनु जलनिधि मथि प्रगट कियो शशि श्री अरु सुधा समेत ५

देखि सरूप सकल गोपी जन रहीं विचारि बिचारि ।

तदपि 'सूर' तारि सकीं न शोभा रही प्रेम पत्रि हारि ॥६॥

यहां सूरदास ने श्री कृष्ण का छवि में समुद्र का रूपक सांगोपांग बांधा है। इसी प्रकार तुलसीदास ने 'विनयपत्रिका' में काशीपुरी के लिये कामधेनु का सांगरूपक बाँधा है, जिसका आरंभ यों है:- 'सेइय सहित सनेह देह भरि कामधेनु कलिकास' । तुलसीदास ने अपने 'रामचरितमानस' (रामायण) में बालकाण्ड में मानसरोवर का रूपक, लंकाकांड में 'विजयरथ' का रूपा और उत्तर कांड में 'ज्ञानदीपक' और 'मानसरोग' का सांग रूपक बहुत ही अच्छा कहा है। पाठकों को समझ लेना चाहिये ।

(सूरसागर से)

मंदनंदन वृन्दावनचंद ।

यदुकुल नभ तिथि द्वितिय देवकी प्रगटे त्रिभुवन बंद ॥ १ ॥

जठर कुहते बहिर बारिनिधि दिशि मधुपुरी स्वछंद ।

बसुदेव शंभु शीश-धरि आने गोकुल मानंद कंद ॥ २ ॥

ब्रज प्राची राका तिथि जसुमति सरस सरद ऋतु नंद ।

उड्गण सकल सखा संकर्षण तम दनुकुल जो निकंद ॥ ३ ॥

गोपी जन तहँ धरि चकोर गति निरख मेटि पल वंद ।

सूर, सुदेश कला बोझस परिपूरन परमानंद ॥ ४ ॥

सूचना-इस 'सांगरूपक' को अंगरेजी में सस्टेन्ड मेटैफर (Sustained metaphor) कहते हैं।

सांग रूपक के पुनः दो प्रकार हैं:-

(१) समस्तवस्तुविषयक (२) एकदेश-विवर्तित।

१-समस्तवस्तुविषयक सांगरूपक के उदाहरण कई एक ऊपर लिख आये हैं। कुछ और लिखते हैं-यथा:-

१-उदित उदयगिरि मंच पर रघुवर बाँध पतंग।

विकसे सत सरोज सब हरये लोचन भृग ॥

नयन केरि आशा निसि मासो। बचन नखन अव जो न प्रकासो ॥

भानी महिष कुमुद सकुचाने। कपटी भूप उलूक लुकाने ॥

भये बिशोक कोक मुनि देवा। बरपहि सुमन जनाबहि सेवा ॥

१-रामनाम नरकेसरी कमककशिषु कलिकाल।

जापक जन प्रह्लाद जिमि पालहि दलि सुरसाल ॥

३-वर्षा ऋतु रघुपति भगति तुलसी शालि सुदास।

रामनाम वर बरण युग सावन भादों मास ॥

२-'एकदेशविवर्तित रूपक' वह कहलाता है जिसमें कुछ अंगों का रूपण किया जाता है और कुछ का नहीं-जैसे:-

नाम पहरुवा दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।

लोचन निजपद जंत्रित प्राण जाहि केहि बाट ॥

यहाँ नाम, ध्यान और लोचन का रूपक पहरु, कपाट और यंत्र (ताला) से किया गया है, किन्तु ' प्राण ' का रूपक जो कैदी (बंदी) से होना चाहिये था नहीं किया गया-अर्थ-कर्ता अपनी बुद्धि से लगा लेता है।

(२) निरंग रूपक वह कहलाता है जिसमें केवल उपमान के प्रधान गुण का आरोप उपमेय पर किया जाता है। जैसे-

दो०-अवासि चालिय बन राम पहुँ भरत मंत्र भल कीन्ह।

शोक सिन्धु बूड़त सबहि तुम अवलम्बन दीन्ह ॥

यहां शोक को समुद्र रूप से मान लिया है, उसके और अंग नहीं कहे गये। इसी प्रकार और भी जानो। यथा:—

(१) तुलसिदासयइ विपति-बांगुरो तुमहिंसो बनै निवेरे।
यहां 'विपत्ति' पर बांगुर (जाल) का आरोप है।

(२) महामोह मृगजल-सरिता महँ बोखो हौं बारहिबार।
यहां 'मोह' पर मृगजल-सरिता का आरोप है।

३—(परंपरित रूपक)

बह कहलाता है जहां मुख्य रूपक का हेतु एक और ही रूपक होता है अर्थात् मुख्य रूपक एक और (अंतर्गत) रूपक पर निर्भर होता है। जैसे:—

सुनिय तासु गुण ग्राम जासु नाम अघखग-बधिक।

यहां श्री राम ' नाम ' पर 'बधिक' होने का आरोप किया गया, परन्तु ऐसा क्यों किया गया? इसलिये कि पहले "अघ" पर 'खग' होने का आरोप कर चुके हैं—अर्थात् 'रामनाम' के बधिक होने की सिद्धि के लिये पहले ही अघ को खग कह डाला है, नहीं तो रामनाम पर बधिक का आरोप न हो सकता। इसी प्रकार और भी जानो। यथा —

१—सुनु गिरिराजकुमारि भ्रम तम रबिकर बचन मम।

२—बन्दीं रघुपति करुणा निधान। जातं छूटे भवभेद ज्ञान।

(क) रघुवंस मुकुद-सुखप्रद-निशेश। सेवित पद पंकज अज महेश।

(ख) निज मक्त हृदय पाथोज-भृंग। लाचन्य बपुष अगनित अनंग।

(ग) अति प्रबल मोह-तम-मारतंड। अज्ञान-गहन-पावक-प्रचंड।

(घ) अभिमान-सिन्धु-कुम्भज उदार। सुररंजन मंजन भूमिभार।

(ङ) रागादि सर्पगण पन्नगारि। कंदर्प-नाग-मृगपति मुरारि।

(च) भवजलधि-पोत चरणार विन्द। जानकी रमण आनंद कंद ।
 (छ) हनुमंत-प्रेम वापी-मराल । निष्काम-कामधुकगो दयाल ।
 (ज) त्रैलोक्य तिलक गुणगहनराम । कह तुलसिदासविश्रामधाम
 इस पद में क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, सब में परं-
 परित रूपक है ।

(पुनः)

(क) मोह महा घन-पटल-प्रभंज । संशय-विपिन-अनल सुररंजन ।
 अगुण सगुण गुणमंदिर सुंदर । भ्रमतम प्रबल प्रताप दिवाकर
 (ख) काम क्रोध-मद-गज पंचानन । बसहु निरंतरजनमनकानन ।
 बिषय मनोरथ पुंज कंज-वन । प्रबल तुषार उदार पार मन ।

यह परंपरित-रूपक-कभी कभी श्लेष से भी कहा जाता है । जैसे:—

(१) शंकर मानस राजमराला ।

यहां जब तक 'मानस' शब्द में श्लेष न मानें, ओर उसके दो अर्थ (१) मन (२) मानसरोवर न लें, तब तक रूपक का चमत्कार नहीं भासैगा ।

(२) अंगद तुही बालिकर बालक । उपजेउ वंश अनलकुल ।
 बालक । इसमें जबतक 'वंश' शब्द के, श्लेष से दो अर्थ, (१)
 बांस (२) कुल, न लिये जायें, तब तक कोई चमत्कार नहीं भासता ।

मूचना-कभी कभी कवि लोग निरंग रूपक को मानाकार भी वर्णन करते हैं ।

यथा-बिधि के कमंडलु की सिद्धि है प्रसिद्ध यही हरिपद-
 पंकज प्रताप की लहर है । कहै 'पदमाकर' गिरीश शीशमंडल
 की मुंडन की माल ततकाल अघहर है । भूपति भगीरथ के रथ
 की सुपुन्यपथ जन्हुजपयोगफल फैल का फहर है । छेम की

छहर गंगा ! रावरी लहर कलिकोल को कहर जमजाल को जहर है ॥

यहां गंगाजीकी 'लहर' पर अनेकभारोप हैं और वे सब निरंग हैं ।

(६)-परिणाम

दो०-करै क्रिया उपमान राचि उपमेय को स्वरूप ।

अलंकार परिणाम तेहँ बरणै कविकुलभूष ॥

बिवरण-उपमेय द्वारा की जानेवाली क्रिया का उपमान द्वारा किया जाना कहा जाय । इसी को परिणाम अलंकार कहते हैं ।

(परिणाम का अर्थ यहां पर 'स्वभाव का बदलना' है)-जैसे-

“ करकमलन धनु शायक फेरत ”

यहाँ 'कर' के उपमान 'कमल' द्वारा 'धनुशायकफेरना' जो वास्तव में कर द्वारा होता चाहिये, वर्णित है ।

पुनः दो०-सोन जुही कहूँ कहूँ जुही कहूँ जाति के जाल ।

हरे हरे कर कमल सों फूलन बीनति बाल ॥

पुनः-अपने कर-कंज लिखी यह पाती ।

दो०-पदपंकज ते चलत वर करपंकज लै कंजु ।

मुख पंकज तें कहत हरि बचन रचन मुद मंजु ॥

पुनः-सागरश्री रघुनंदन के कर-कंज सों मानिकमोतिभ्रूसौ करै

पुनः-मुखशशि हरत अंधार ।

(१०)-उल्लेख *

परिभाषा-किसी निमित्त से एक व्यक्ति का बहुविधि वर्णन 'उल्लेख' कहलाता है । इसके दो भेद हैं ।

(१) एकहिं बहु बहु विधि लखैं,

(२) एकहिं बरणि बहु रीति ॥

* इस अलंकार को फारसी तथा उर्दू में "तन्सीकुलसिफात" कहते हैं ।

बिवरण—(१) एक ही व्यक्ति को बहुत से भिन्न भिन्न व्यक्ति भिन्न भिन्न विधि से लखें, कहें वा मानें वहां प्रथम उल्लेख । यथा:—

सवैया—दुजन भानु प्रचंड लखैं नृप सेवकते ससि पूरन जानैं ।
मूरतिवंत मनोज कहैं बनिता बसिहांत रुरीभैं सुजानैं ॥
मानैं कबीन्द्र सुरद्रुम सो रू गिरापति कै सब पंडित मानैं ।
आवत देखि कै रामनरिंदकोभांतिन भांति निरूप बखानैं ॥

पुनः

जिनके रही भावना जैसी । प्रभुमूरति देखी तिन तेसी ।
देखहि भूप महा रणधीरा । मनहु बीर रस धरे शरीरा ।
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी । मनहु भयानक मूरति भारी ।
रहे असुर छल छोनिष बेपा । तिनप्रभु प्रगट काल सम देखा ॥
पुर बासिन देखे दोउ भाई । नर भूषण लोचन सुखदाई ॥
विदुषन प्रभु विराट मय दीसा । बहु मुख कर पग लोचन सीसा ॥
जनक जाति अवलोकहि कैसे । सजन सगे प्रिय लागहि जैसे ॥
सहित विदेह विलोकहि रानी । शिशुसम प्रीति न जाय वखानी ॥
योगिन परम तत्व मय भासा । शांत शुद्ध मन सहज प्रकासा ॥
हरिभगतन देखे दोउ भ्राता । इष्टदेव सम सब सुख दाता ॥
रामहि चितव भाव जेहि सीया । सो सनेह सुख नहि कथनीया ॥
इहि विधि रहा जाहि जसभाऊ । तेहि तस देख्यो कोसलराऊ ।

(२) एकही व्यक्ति को एकही व्यक्ति बहु बिधि वर्णन करें । यथा—

दो०—साधुन को सुख दानि है दुर्जन गन दुखदानि ।

बैरिन विक्रम हानि प्रद राम तिहारे पानि ॥

सवैया—सत्य की बेर युधिष्ठिर हैं बल भीम हैं युद्धधरा महंगाजै ।

बाण धिलास में जानो बिजै नकुलै इव बाजिनकी गतिसार्जै ॥

आगम जानिबे को सहदेव लखे सबके मनभावते छाजै ।
पोषकता जगकी हरि है लखि 'कूरमराम' नरिंद्रबिराजै ॥

कवित्त

सारमाला सत्य की बिचार माला वेदन की भारी भाग-
माला है भगीरथ नरेश की । तपमाला जान्हू की सु जपमाला
जोगिन की आछी आपमाला है अनादि ब्रह्म वेश की । कहै
पदमाकर प्रमाणमाला पुन्यन की गंगाजू की धारा मानमाला
है धनेश की । ज्ञानमाला गुरु की गुमान माला ज्ञानिन की
ध्यानमाला ध्रुव मौलि माला है महेश की ॥

पुनः—सब गुन भरा ठकुरवा मोर । अपनै पहरु अपनै चोर ॥

(११) स्मरण

दो०—कछु लखि, कछु सुनि, सोचि कछु, सुधि आवै कछु खास ।

सुमिरन ताको भाषिये बुधवर सहित हुलास ॥

बिबरण—यद्यपि प्राचीन आचार्यों ने इस अलंकार की
परिभाषा ऐसी लिखी है किः—

“सदृश वस्तु लखि सदृश की सुधि आवै जेहि ठौर ।

सुमिरन भूषन तेहि कहै सकल सुकवि सिरमौर ” ॥

परन्तु हिन्दी साहित्य में हमें ऐसे उदाहरण मिलते हैं
जिनसे जान पड़ता है कि प्राचीनों का यह लक्षण पर्याप्त नहीं
है । इसी से हमने इस अलंकार की नवीन परिभाषा गढ़ी है ।
कारण यह है कि या तो इसको अलंकार ही न मानना चाहिये,
या अगर अलंकार मानना ही है तो केवल सदृश वस्तु को
देखकर सदृश वस्तु की सुधि आने ही में क्यों माना जाय ?
सब दशाओं में क्यों न माना जाय ? पहले देखी हुई वस्तु को
स्मरण कई भांति से हो सकता है । जैसे—

१-कछु लखि-(समानगुणवाली वस्तु को देखकर स्मरण)
 उ०-प्राचीदिसिशशिउग्योसोहावासियमुखसरिसदेखिसुख पावा
 पुनः-लखि शशि मुख की होत सुधि तन सुधि घन को जांहि ।
 पुनः-बीच बासकरियमुनहिआये । निरखिनीरलोचनजलछाये ।

दो०-रघुवर बरण बिलोकि बर बारि समेत समाज ।
 होत विरह बारिध मगन चढ़े विवेक जमाज ॥

(संवंधी वस्तु को देखकर स्मरण)

दो०-सघन कुंज छाया सुखद सीतल मंद समीर ।
 मन है जात अजौं बहै वा जमुना के तीर । (बिहारी)
 शूल होत नवनीत निहारी । मोहन के मुख जोग बिचागी ॥
 (यशोदा बचन ऊधव प्रति)

(स्वप्न देखकर स्मरण)

उ०-जागि परी तो न कान्ह कहूँ, न कदंबकी छाँह नहीं जमुनातट ।
 दो०-देखों जागि तबै सखी सांकर लगी कपाट ।
 कित है आवत जात धौं को जाने केहि वाट ॥

(कभी कभी बौध्दार्थ दर्शन से भी स्मरण होता है) यथा:—
 ज्यों ज्यों इत देखियत मूरख विमुख लाग त्यों त्यों ब्रज-
 वासी सुखरासी मन भावै है ! खारे जल छीलर दुखारे अंध-
 कूप देखि कालिन्दी के कूल काज मन ललचावै है । जैसी अब
 बीतत सो कहतै ना बनै बँन ' नागर ' ना चैन परै प्राण अकु
 लावै है । थूहर पलास देखि देखि कै बँबूर बुरे हाय हरे हरे
 वे तमाल सुधि आवै है ।

(नागरीदास)

२-कलु सुनि—

उ०—सुनि कोकिल ध्वनि बचन की आवत है सुधि मोहि ।

पुनः—कहा कहिये 'पिय' बोलि पपीहा व्यथा जिय की
पुनि देत जगाय ।

(चर्चा वा कथा सुनकर स्मरण)

एक समय कृष्ण को सोलाते समय यशोदा ने कथा कहना आरंभ किया। विधिबशात् रामावतार की कथा कहने लगी। कथा कहते कहते जब 'सीताहरण' का प्रसंग कहा तब बाल-रूप कृष्ण को पूर्वावतार का स्मरण आया और अबानक चौंककर बोले " लक्ष्मण ! लाना तो मेरा धनुष बाण " । इस बात को कवियों ने अच्छी अलंकारिक भाषा में वर्णन किया है। यथा—

इकदिन महरि श्याम को लैकै । परी पलंगपर तकिया दैकै ॥
लागी कहन कथा सुखदाई । जिमि अश्रुतार लीन रघुराई ॥
बाल बिनोद विवाह उछाह । बिपिन गवन भूपतिकर दाह ॥
भगत समझ लखन सेवकाई । कहि खरदूषण केरि लड़ाई ॥
कह्यो जानकी केर हरण जब । "कहँ धनुशर" कहिकृष्ण उठेतब ॥

३-सोचि कलु—(कुछ सोच समझ कर, कुछ चिंतन करके स्मरण)

उ० नृप उदार चिन्तन करत, आयै जसवंत याद ।

(मुरारिदान)

यहाँ उदार राजाओं का चिंतन करने से जसवंतसिंह का स्मरण आया। कविराज भूषण ने जो उदाहरण अपने " शिवराज भूषण " में लिखा है, वह, इस चिन्तन का बहुत अच्छा प्रमाण है।

(भूषण लिखते हैं)

तुम शिवराज ब्रजराज अवतार आज तुमही जगत काज पोषत भरत हो। तुम्हें झोड़ि याते काहि बिनती सुनाऊँ मैं तुम्हारे गुण गाऊँ तुम ढोले क्यों परत हो। भूषण भनत वहि कुल में नयो गुनाह नाहक समुझि यह चित्त में भरत हो। और बाझनन देखि करत सुदामा सुधि मोहि देखि काहे सुधि भृगु की करत हा।

भूषण कहते हैं कि मुझे ब्राह्मण कुल में पैदा होने का नया गुनाह (पाप) आप लगाते हैं, और विष्णु का अवतार होने के कारण मुझपर आप नाराज होते हैं, क्योंकि भृगुजी ने विष्णुजी की छाती पर लात मारी थी।

कृष्ण का अवतार होने के कारण सुदामा की मित्रता का चितवन करके अन्य ब्राह्मणों को मानना और विष्णु का अवतार होने के कारण भूषण को भृगुवंशी जानकर उस समय की अकस्म निकालना क्या यह सब बातें बिना चितवन के हो सकती हैं। इस कारण चितवन (सोचि कछु) से भी स्मरणालंकार हो सकता है।

पाठकों को याद रखना च हिये कि 'स्मृति' नामक एक 'संचारी' भाव भी होता है। उसमें भी गत वा विस्मृत वस्तुओं के स्मरण ही का वर्णन होता है। उस भाव और इस अलंकार में भेद यह होता है कि जब वर्णन में 'रस' को पुष्टि हो तब तो वह स्मृति संचारी भाव होगी, जब अर्थ में चमत्कार आवे तब अलंकार माना जायगा।

(१२) भ्रांति (भ्रम)

दो०—भ्रांति और की और में निश्चित जब अनुमान।

भ्रांति, भ्रमालंकार तेहि कहैं सुकावि मतिमान॥

शिवरत्न—भ्रम से किसी और वस्तु को कोई और वस्तु मान बैठना भ्रांति है। जैसे— “जो जेहि मन भावै सो लेहीं। मणि मुख मेलि डारि कपि देहीं” ।

यहां नाना वर्ण की मणियों को देखकर नानावर्ण के फलों का भ्रम होता है। फल समझ कर मुख में डाल लेते हैं पर जब वह फूटती नहीं तब उगल देते हैं।

पुनः—सो०—कपि कर हृदय विचार दीन मुद्रिका डारि तब ।

जानि अशोक अंगार सीय हरषि उठि कर गहो ॥

यहाँ जानकी जी श्री रामचन्द्रकी स्वर्णमुद्रिका को अशोक प्रदत्त अंगारा समझती हैं।

पुनः—=हुँघा तेरे सुयश की रुरी राशि निहारि ।

फिरि फिरि टोषत जटान हर गिनि गंगा की भार ॥

दो०—पाँय महावरदेन को नाइन बैठी ।

फिरि फिरि जानि महावरी ऐँडी मीड़त जाय ॥

(शकुन्तला कहती है)

सो०—री सखी मोहिं बचाय, या मतवारे भ्रमर सों ।

डसो चहत मुख आय, भ्रम भरो बारिज गुने ॥

पुनः—जानि श्यामघन घन तुम्हैं, नाचि उठैं बन मोर ।

चितैरहत मुख ओर निशि, निश्चल चखन चकोर ॥

परत भ्रमर शुकतुंडपर, भ्रम धरि कुसुम पलास ।

शुक ताको पकरन चहत, जंबू फल की आस ॥

(१३) सन्देह

दो०—बहु बिधिवर्णत वर्ण्य को नियत न तत्थ्य अतत्थ्य ।

अलंकार सन्देह तहँ बरनत हैं मातिपत्थ्य ॥

बिबरण-जहाँ किसी वस्तु को देखकर संशय बना ही रहै, निश्चय न हो। 'भ्रान्ति' में एक वस्तुपर निश्चय जमजाता है, संदेह में किसी पर नहीं जमता। धौं, किधौं, कीधौं, कि, कौ, या, अथवा इत्यादि संदेह-सूचक शब्द इस अलंकार के बान्धक हैं। जैसे:—

की तुम तौन देव महँ कोऊ । नर नारायण की तुम दोऊ ॥
पुनः—की तुम हरिदासन महँ कोई । मोरे हृदय प्रीति अति होई ॥
की तुम राम दीन अनुरागो । आये मोहि करन बड़भागी ॥

(कवित्त)

पाय अनुसासन दुसासन कै कोप धायो दुपदसुता को चीर गहे भार भारी है । भीषम करण द्रोण बैठे ब्रतधारी तहां कामिनी की ओर काहू नेक नां निहारी है । सुनि कै पुकार धायो द्वारका ते यदुराई बाढ़त दुकूल खँचे भुजबल हारी है । सारी बीच मारी है कि नारी बीच सारी है कि सारी ही की नारी है कि नारी ही की सारी है ।

पद-ये कौन कहाँ ते आये । मुनि सुत किधौं भूप बालक किधौं ब्रह्म जीव जग जाये । रूप जलधि के रतन, सुछबितिय लोचन ललित लला ये । किधौं रविसुवन, मदन ऋतुपति किधौं, हरिहरवेष बनाये । किधौं आपने सुकृत सुरतव के सुफल रावरे पाये । (गीतावली)

यह अलंकार फारसी अरबी तथा उर्दू के, तजाहुल आरिफ, नामक अलंकार से मिलता जुलता है ।

(१४) अपन्हुति

दो०—मिथ्या कीजै सत्य का सत्य जु मिथ्या होत ।

आपन्हुति षट् भेद को बरतन हैं कवि गोत ।

शुद्ध, हेतु, परजैस्त, भ्रम, छेकों, कैतव देखि ।

‘ना’ बाचक है पांच को कैतव को ‘मिस’ लेखि ॥

विवरण— ‘अपन्हति’ शब्द का अर्थ है ‘छिपाना’ । इस लिये इस अलंकार में किसी बात का छिपाना और कोई अन्य बात कहके दूसरे का संतोष कर देना यही वर्णन रहता है । इसके ६ भेद हैं जिनमें से प्रथम पांच में निषेधवाची ‘न’ ‘नहीं’ का प्रयोग अनिवार्य है और अंतिम ‘कैतवापन्हति’ में ‘मिस’ शब्द का प्रयोग अवश्य ही होता है । वस इन्हीं बाचक शब्दों से इस अलंकार की ठीक पहचान हो जाती है ।

१—(शुद्धापन्हति)

दो०—दुर्गै सत्य उपमेय को प्रगट कर उपमान

शुद्धापन्हति कहैं तेहि जे कविंद मतिमान ॥

विवरण—उपमेय को असत्य ठहराकर उपमान का स्थापन किया जाय, वही शुद्धापन्हति अलंकार है । जैसे:—

मैं जु कहा रघुबीर कृपाला । बंधु न होय मोर यह काला ।
यहां सत्य बंधुत्व को असत्य ठहराकर उपमानरूपी असत्य कालत्व का स्थापन किया है ।

पुनः—पहिरे श्याम न पीतपट घनमें बिज्जु बिलास ।

पुनः—सारद ससि नहि सुंदरीं उदयी जस जसवंत ।

अंक न संग रही जु लगि भिच्छुक जन की पंत ।

पुनः—नहि सुधांशु यह है सखी नभगंगा को कंज ।

(सवैया)—ये न घने घन कुंजरमाल हैं, या चपला न दिपैं तरवारी । गर्जनि नाहि नगारे बजैं, बकपांति नहीं गजदंत निशारी । ये न मयूर जो बोलत हैं विरदावलि बंदि बदैँ जस भारी । या नहि पावसकालअलीयहतोसति है अमरेशसवारी ।

सूचना-याद रखना चाहिये कि यह अपन्हुति अलंकार कई एक अन्य अलंकारों से मिलकर भी आता है । उदाहरणार्थ देखो ' सापन्हु-वोन्मेक्षा ' और ' सापन्हुवादिशयोक्ति ' ।

२-(हेत्वापन्हुति)

दो०-शुद्धापन्हुति में जहाँ कहिये हेतु बनाय ।

हेतु अपन्हुति कहत हैं ताहि सकल कविराय ॥

विवरण-शुद्धापन्हुति में जब कोई कारण भी बतलादिया जाय, तब वही हेत्वापन्हुति हो जायगी । जैसे:-

दो०-रात मांझ रावि होत नहिं, सासि नहिं तीव्र सु लाग ।

उठी लखन अवलोकिये, बारिधि सों बड़वाग ।

यहां चन्द्रमा को देखकर रामचंद्र कहते हैं, हे लक्ष्मण देखो तो यह चंद्रमा नहीं है क्योंकि इसकी किरण तीव्र जान पड़ती है, और रात्रि में सूर्य का होना असंभव है इससे यह सूर्य भी नहीं है-अतः यह समुद्र से निकलती हुई बड़वाग्नि ही है ।

यदि केवल इतना ही कहा जाता कि " यह चंद्रमा नहीं है बड़वाग्नि है " तो शुद्धापन्हुति होती । चंद्रमा के निषेध का कारण " तीव्र लगता है " भी कहा गया है, अतः हेत्वापन्हुति है । इसी प्रकार 'सूर्य नहीं है' इसका कारण भी कि 'रात्रि है' बतलाया गया है । इसी प्रकार और भी समझना । यथा-

सवैया-सेत सरोर हिये विष श्याम कला फन री मनि जानु जुन्हाई । जोभ मरीची दसौदिसि फैलती काटत जाहि वियोगन ताई । सीस ते पूछि लीं गात गखो पै डसे बिन ताहि परे न कलाई । सेस के गोत के ऐसहि होत हैं चंद नहीं या फनिद है माई ।

दो०—गिव सरजा के कर लमे सो न होय किरवान ।

भुज भुजंगेश भुजंगिनी भखति पौन अरि पान ॥

३—पर्यस्तापन्हुति

दो०—धर्म और में राखिये धर्मी सांच छिपाय ।

पर्यस्तापन्हुति कहैं ताहि सकल कविराय ॥

विवरण—(पर्यस्त = फेंका हुआ) किसी वस्तु में उसके सब धर्म का निषेध इसलिये किया जाय कि वह धर्म किसी दूसरी वस्तु में आरोपित करना है । यथा:—

है न सुधा यह, है सुधा, संगति साधु समाज ।

यहाँ 'सुधा' में सुधात्व (अमरत्वगुण) का निषेध इसलिये किया गया कि उसका धर्म साधुसमाज की संगति में स्थापित करना मंजूर है ।

पुनः—नहीं शक सुत्पति अहैं, सुरपति नंदकुमार ।

रतनाकर सागर न है, मथुरा नगर बजार ॥

पुनः—यह न चांदनी चांदनी मृदु बिहसनि नैदलाल ।

पुनः—प्रीति में नहि प्रांति सजनी जात कहि नहि प्रेम ।

एक मति गति एक व्रत यह भरत ही में नेम ॥

सो०—कालकूट विष नाहि, विष है केवल इंदिरा ।

हर जागत छाकि वाहि, यहि संग हरि नीद न नजत ॥

मूचना—प्रायः देखा जाता है कि इस अलंकार के उदाहरणों में जिस वस्तु के सन्ने धर्म को छिपाना होता है उसे दो बार लाया पड़ता है । उदाहरणों में देखो—सुधा, सुरपति, चांदनी और विष शब्द दो दो बार आये हैं ।

४—भ्रांत्यापन्हुति

दो०—भ्रम संका मन और के कलु कारण ते होय ।

दूरि करै कहि सत्य सो, भ्रांत्यापन्हुति सोय ॥

यथा—कहप्रभुहँसिजनिहृदय डराहू । लूकन अशनि न केतु मराहू
ये किरौट दशकंधार करे । आवत वालि तनय के प्रेरे ॥

दो०—बेसर मोती दुति झलक, परी अधर पर आय ।

चूनो होय न चतुर तिय, क्यों पट पोंछो जाय ॥

दो०—आली लाली लखि डरपि, जानि डेरहु नँदलाल ॥

फूले सघन पलाम ये, नहिँ दावानल ज्वाल ॥

५—छेकापन्हुति

दो०—शंका नासै और की सांची बात दुराय ।

छेकापन्हुति कहत हैं ताहि कविन के राय ॥

बिबरण—(छेक = चतुराई) यह अलंकार भ्रान्त्यापन्हुति का ठीक विरोधी है । उसमें सत्य कहकर भ्रम दूर किया जाता है और इसमें सत्य को छिपाकर असत्य बातें कहकर शंका दूर करने की चेष्टा की जाती है (चाहे वह शंका दूर हो वा न हो) । जैसे—

सांवरो सलोनोगातपीत पट सोहन सो अंबुज से आनन पै परै छबि ढरकी । मंत्र ऐसी जंत्र ऐसी तंत्र सी तरकि परै हँसनि झलनि धितवनि त्यों सुघरकी । गोकुल कहत वन कुंजन को बासी लखे हाँसी सी करतु है री काम कलाधर की । एतने में बोली और, मिले हरि सुखदानी ? नाहीं में कहानी कही रामरघुबर की ।

यहाँ कोई गोपी कृष्ण की छबि का वर्णन कर रही थी, एक अन्य स्त्री ने आकर पूछा कि क्या तुझे कृष्ण मिले थे, जब वह सत्य बात (कृष्णदर्शन) को छिपाकर कहती है कि नहीं मैं तो राम की कथा कह रही थी ।

पुनः—कछु न परीक्षा लीन्हगुसाई । कीन्ह प्रणाम तुम्ह रिहि नाई ।

सूचना—'मुकरा' इसी अलंकार में कही जाती है । जैसे—

१-अर्द्धनिशा वह आयो भौन । सुन्दता धनै कहि कौन ।
निरखत ही मन भयो अनन्द । क्यों सखि साजन? नहिसखि चंद ॥
२-शोभा सदा बढ़ावन हारा । आँखिन ते खिन करुं न न्यारो
आठ पहर मेरो मनरंजन । क्यों सखि साजन? नहिसखिअंजन ॥

६-कैतवापन्हुति

दो०-मिस व्याजादिक शब्द दै, कहै आन का आन ।

ताहि कैतवापन्हुती, भूषण कहैं सुजान ॥

(यथा)

पठै मोहमिसखगपति ताहीं । रघुपति दीन बडाई मोहीं ॥
लखी नरेश बात यह सांची । तियमिस मीचु शीश पर नाची ॥
सवैया-लालिमाश्री नरवानिके तेजमेशारदालों सुखमाकी निसेनी ।
नूपुर नीलमनीन जड़े जमुना जगै जौहर में सुखदेनी ।
यौ लछिराम छटा नख नौल तरंगिनीगंग प्रभा फल पैनी ।
मैथिली के चरणांभुज व्याज लसै मिथिला मग मंजु त्रिवेनी ॥
छन परभा के छल रही चमाके मार करवार ।
वीरवधू के व्याज री दहकत आजु अँगार ॥

सूचना-इस अलंकार में मित, छल, व्याज बहाना इत्यादि शब्दों का लाना आवश्यक है । जिस वस्तु के बहाने जो वस्तु कथन की जाती है, इन दोनों में कारण और कार्यकासा अथवा उपमेय उपमान कासा सम्बन्ध भी होना जरूरी है । पर्यायोक्ति से इसका अन्तर समझ लेना चाहिये । पर्यायोक्ति अलंकार की सूचना पेज ११२ में देखिये ।

(१५)--उत्प्रेक्षा

सूचना-उत्प्रेक्षा (वद् + प्र + ईक्ष्ण) शब्द का अर्थ है “ बलपूर्वक प्रधानता से देखना ” । इस अलंकार का मुख्य तात्पर्य “ किसी उपमेय का कोई उपमान कल्पना शक्तिद्वारा कल्पित कर लेना है ” कल्पना प्रतिभा

के बल से ही हो सकती है। जितनी ही शक्तिवती प्रतिभा होगी उतनी ही उत्तम कल्पना ही सकेंगी, इसलिये इस श्लकार को उत्प्रेक्षा कहते हैं। अतः उत्प्रेक्षा की परिभाषा हुई:—

दो०—बल सों जहाँ प्रधानता करि देखिय उममान ।

उत्प्रेक्षा भूषण तहाँ कहत सुकवि मतिमान ॥

(बाचक)—मनु, जनु, मानो, जानो, निश्चय, प्रायः, बहुधा, इव, खलु इत्यादि शब्द इस अलंकार के बाचक होते हैं।

उत्प्रेक्षालंकार तीन प्रकार का होता है (१) वस्तुत्प्रेक्षा, (२) हेतुत्प्रेक्षा और (३) फलोत्प्रेक्षा ।

१—वस्तुत्प्रेक्षा

किसी वस्तु के अनुरूप बलपूर्वक कोई उपमान कल्पित किया जाय वहाँ वस्तुत्प्रेक्षा अलंकार कहा जायगा। इसके दो प्रकार हैं (क) उक्तविषया—जहाँ उत्प्रेक्षा का विषय पहले कहाजाय, और तब उसके अनुरूप कल्पना की जाय।

(ख) अनुक्तविषया—जहाँ विषय न कहा जाय, केवल कल्पना की जाय।

(उक्तविषया वस्तुत्प्रेक्षा)—यथा:—

दो०—सोहत ओढ़े पीत पट, स्याम सलोने गात ।

मनो नीलमणि शैल पर आप पच्यो प्रभात ॥

यहाँ “पीताम्बर ओढ़े कृष्ण का श्यामतनु ” उत्प्रेक्षा का विषय है, सो पहिले कह दिया गया है, तब उत्प्रेक्षा की गई कि वह तनु कैसा है मानो नीलमणि का पर्वत है जिसपर प्रातः—काल के सूर्य की किरणें पड़ रही हों।

यहाँ मुख्य पाठ्यार्थ तो कृष्ण के तनु के वर्णन से है, परंतु कवि

अपनी कलनासे पाठकका ध्यान बलपूर्वक खींचकर एक नील मणि के पर्वतपर प्रातःकाल की सूर्य किरणों के पड़नेके दृश्यकी ओर लिये जाता है। इस दृश्य के दिखलाने से कवि का तात्पर्य यह है कि पाठक (दर्शक) कृष्ण के तनु की उत्कृष्ट शोभा का अनुमान कर सकेगा। इसी प्रकार और भी समझ लेना चाहिये। कुछ और उदाहरण देखिये।

दो०—जताभवन ने प्रगट भे तेहि औसर दोउ भाइ ।

निकसे जनु युग विमल विधु, जलदपटल विलगाइ ॥

सवैया—शंभु सरासनतोसोमृणालसोभालविशालप्रताप सोहावे
त्यौं लछिराम स्वयंवर में मिथिलेश अनंद अमात न छावे ॥
रामगरे जयमाल के देत सु मैथिली यौं समता सरसावे ॥
मानो रमा रतनाकर में रतनावली श्री हरिको पहिरावै ॥

दोहा—सखि सोहति गोपाल के, उर गुंजन की माल ।

बाहर लसत मनो पिये, दावानल की ज्वाल ॥

सूचना—गोस्वामी तुलसीदासजी तथा कविशिरोमणि सुरदास जी ने राम जी तथा कृष्ण जी की बालछवि वर्णन में इस अलंकार का बहुत अधिक और बहुत उत्तम प्रयोग किया है। जैते:—

१—लोचन नील सरोज से भूपर मसिबिंदु विराज ।

जनु विधुमुख छवि अमीको रक्षक राखे रसराज ॥

२—शिशु सुभाव सोहत जब कर गहि बदन निकटपद पलव लाये ।
मनहु सुभग युग भुजंग जलज भरि लेत सुधा शशि सों ससु पाये ।

३—बंधुक सुमन अरुण पदपंकज अंकुश प्रमुख चिन्ह बनि आये ।
नूपुर जनु मुनिवर कलहंसन गन्धे नोड़ दै बाँह बसाये ।

४—भाल विशाल ललित लटकन वर बालदशा के चिकुर

सुहाये । मनु दोउ गुरु शनि कुज आगे करि शशिहि मिलन
तमके गण आये ।

५-गजमणिमाल बीज भ्राजत कहि जात न पदिक निकाई ।

जनु उड़गण बारिद मंडल पर नवग्रह रची अढ़ाई ॥

६-मंजु मेचक मृदुल तनु अनुहरत भूषण भरति ।

जनु सुभग शृङ्गार शिशुनरु फसो अद्भुत फरनि ॥

७-दो०-‘पूरन’ जमुना नीर पर यों आनण छवि होति ।

मानहु कृष्ण शरीर पर पीतपट्टि की जोति ॥

इन सब उदाहरणों में उत्प्रेक्षा के विषय पहले कह दिये
गये हैं तब उत्प्रेक्षाएं की गई हैं, इसलिये ये उदाहरण उक्त-
विषया के हैं ।

(अनुक्तविषया वस्तुत्प्रेक्षा)

जहाँ उत्प्रेक्षा का विषय कथन न करके उत्प्रेक्षा कीजाया जैसे:-

१-अंजन बरसत गगन यह मानो अथये भानु ।

यहाँ सूर्यास्त के अनन्तर “ अंधकार का फैलना ” जो
उत्प्रेक्षा का विषय है वह पहले कहा नहीं गया परन्तु उत्प्रेक्षा
की गई है कि मानो सूर्यास्त के अनन्तर यह आकाश काजल
बरसाता है । ऐसे ही कथन को अनुक्तविषया जानो ।

२-उदित सुधाधर करत जनु सुधामयी बसुधाहि ।

यहाँ चंद्रोदय के अनन्तर जो “ चांदनी फैलती है ” वही
इसका विषय है, सो कवि ने कहा नहीं । उत्प्रेक्षा यह को कि
बम्ब्रमा उदय हांकर मानो समस्त धरातल को सुधामय कर
देता है (सुधा का रंग सफेद माना गया है) ।

३-सरद ससी बरसत मनो घन घनसार अमंद ।

यहां भी ‘ चांदनी का प्रकाश ’ जो उत्प्रेक्षा का विषय है,

वह नहीं कहा गया, उत्प्रेक्षा यह की गई कि मानो शरद ऋतु का चंद्रमा बहुत सा सफेद कपूर बरसाता है। चांदनी की तरह कपूर का रंग भी स्वेत ही होता है।

४-मोर लौं मंजु नचैं धरती पर मंडित केन लगाम उमाहैं।
कान के बीच लसैं कलंगी फिरी तयौर तिरीछी अतूल अदा हैं।
काम कवूतर लौं लछिराम छलैं यों अटेरन की परमा हैं।
बाजि बली रघुवंक्षिन के मनौ सूरज के रथ चूमन चाहैं।

इसमें श्री राम जी को बरात के घोड़ों का वर्णन है। उनके तन की छवि वर्णन करके कवि कहता है कि 'वे घोड़े मानो सूर्य का रथ चूमना चाहते हैं, ' अर्थात् उछलने में बहुत ऊँचे तक उछलते हैं, परंतु उनकी 'उछाल' जो इस उत्प्रेक्षा का मुख्य 'विषय' है कवि ने कही ही नहीं। इससे अनुक्त-विषया जानो। इसी प्रकार और भी समझ लो।

बरसै जनु काजल गगन, तम लिपटत सब गात।

दोढि नीच सेवा सरिस, विफल भई सी जात ॥

सूचना-उपमा में दो वस्तुओं की समता वस्तुतः दिखलाई जाती है। उत्प्रेक्षा में केवल उस समानता का संभव संशय रूप से कहा जाता है।

(२)-हेतूत्प्रेक्षा

अहेतु को हेतु मानकर उत्प्रेक्षा की जाय, वहाँ हेतूत्प्रेक्षा समझो। इसके भी दो प्रकार हैं:-

(१) 'सिद्धास्पद'-अर्थात् उत्प्रेक्षा का आधार सिद्ध हो (संभव हो)।

(२) 'असिद्धास्पद'-अर्थात् उत्प्रेक्षा का आधार सिद्ध न हो (असंभव हो)।

(सिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा)

१-मनो कठिन आँगन चली ताते राते पायँ ।

सुकुमार स्त्रियों के चरणों में ललाई स्वाभाविक की होती है, परन्तु कवि उसका हेतु कल्पित करता है कि मानो कठिन आंगन में चलने से वह ललाई आ गई है।

स्त्रियां आंगन में चलती हो हैं। यह तो सिद्ध आधार है। अहेतु में हेतु की कल्पना की गई है, यही अलंकारता है।

२-रवि अभाव लखि रैनि में दिन लखि चंद बिहीन।

सतत उदित यहि हेतु जनु, यश प्रताप भुवि कीन ॥

यहां भी रात में सूर्य का अभाव और दिन में चंद्रमा का अभाव सिद्ध आधार है, पर इन्हीं कारणों से कोई राजा पृथ्वी भर में अपना यश और प्रताप नहीं फैलाता (उसका कारण कुछ और ही होता है)

(कवित्त)

घोर निरधनता सुदामा घर बास कान्हो दारुन कलेश दै
दीन को सतायो है। सम्प्रति लै बाम की सिन्धियां द्विज श्याम
पास भेट करि तंदुल अखंड धन पायो है। 'पूरन' जू मानो भई
द्वारका गया की पुरी जाय विप्र जामें मन मानो फल पायो है।
दारिद्र्य पिशाच मानि आखन निमन्त्रन को संग जाय तरि गो
न फेरि भौन आयो है।

गया' में तर जाना सिद्धास्पद हेतु है। दरिद्ररूपी पिशाच को लौट कर न आने का वही हेतु कहा गया है।

(असिद्धास्पद हेतुत्प्रेक्षा)

जहां उत्प्रेक्षा का कथित हेतु असंभव हो। जैसे:—

१-मुख सम नहि याते मनो चंदहि छाया छाया।

राधिका के मुख के समान नहीं है, इससे मानों चंद्रमा में

ढाया (काला दाग) छायी हुई है । यहां अहेतु को हेतु ठहराया है अतएव असिद्ध आधार है ।

२-पूस दिनन में है रहो, अग्नि कोन में भानु ।

मैं जानो जाड़ो बली, ते वह डरै निदानु ॥

सूर्य का जाड़े से डरना असिद्ध आधार है । और डर के कारण सूर्य पूस में अग्नि कोण में (जाड़े से डरकर अश्लेषाघने के लिये) चला जाता है, यह कारण ठीक नहीं ।

३-तुव चख निराखि लजाय मनु किय बनवास मृगीन ।

कुवलय रहत मलीन दिन रहे पैठि जल मीन ॥

नेत्रों से मृगियों, कुमुद पुष्पों तथा मीनों का लजाना, असिद्ध आधार है, और इसी लज्जा के कारण मृगी बन में रहने लगीं, कुवलय (कुई के फूल) दिन में मलीन रहते हैं, और मछलियां पानी में डूबी रहती हैं, ये बातें भी ठीक नहीं ।

४-मोर मुकुट की चंद्रकनि, यौं राजत नंदनंद ।

मनु शशिशेखर के अकस, किय शेखर सत चंद ॥

५-दो०-भाल लाल बेदी ललन आखत रहे विराजि ।

इंदु कला कुज में बसी, मनहु राहु भय भाजि ॥

६-भुजन भुजंग सरोज नैनन वदन विधु जीत्यो लरानि ।

बसे कुहरन सलिल नभ उपमा अपर दुरी डरनि ॥

यहां "राम के भुजों से हारकर सर्प बिलों में रहने लगे" नेत्रों से हारकर कमल पानी में जा डूबे, और मुख से हारकर चंद्रमा आकाश में जा बसा और अन्य उपमा भी डरकर छिप रहीं " ऐसा कहा गया है ।

इन उपमानों का हार जाना वा डर जाना 'असिद्ध आधार' है और उपमानों के वहां २ रहने का कारण जो कल्पित किया

गया है वह ठीक नहीं है, इसीसे 'असिद्धास्पद हेतुत्प्रेक्षा' है ।

(सूरसागर से)

उपमा हरि तन देख लज्जाने ।

कोउ जल में कोउ बनहि रहे दुरि कोऊ गगन उडाने ॥

मुख देखत शशि गयो अंबर को तड़ित दसत छबि हेरो ।

मीन कमल फर चरन नयन डर जळ मों कियो बसेरो ।

भुजा देखि अहिराज लज्जाने बिबरानि पैठे धाय ।

कटि निरखन केहरि डरि मानो बन बिच रह्यो दुराय ॥

३-फलोत्प्रेक्षा

अफल को फल मानने की उत्प्रेक्षा करना, फलोत्प्रेक्षा है ।

इसके भी दो भेद हैं:—

१-सिद्धास्पद-जिसकी उत्प्रेक्षा का आधार सिद्ध हो (संभव हो)।

२-असिद्धास्पद-जिसकी उत्प्रेक्षा का आधार असिद्ध हो (असंभव हो) ।

(सिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा)

१-दोहा-मधुसूय निकारन के लिये, मानो रुके निहारि ।

दिनकर निजकर देत है, सतदल दलनि उधारि ॥

सूर्योदय से कमलों का खिलना सिद्ध आधार है, परन्तु कवि कल्पना करता है कि मानो रात भर बन्द रहे हुए भौंरों को बन्द से छुड़ाने के लिये सूर्य कमलों को अपने करों (किरणों) से खोल देता है । सूर्य का कमलों को खिलाना इसलिये नहीं होता कि उसमें बन्द रहे हुए भौंरे बन्द से छूट जावें, बरन वह स्वयं सिद्ध विषय है । भौंरोंका बन्द से छूटना यह अफल है, उसे ही फल कल्पित किया है, अतः फलोत्प्रेक्षा है ।

२-दुवन सदन सब के बदन, शिव शिव आठो जाम ।

निज बचिवे को जपत जनु, तुरकौ हर को नाम॥ (भूषण)

शिव शिव कहने से मनुष्य संकटों से बच सकता है, यह (हिन्दूधर्मानुसार) सिद्ध आधार है । परन्तु मुसलमान लोग इस फलप्राप्ति के लिये शिव शिव (शिवाजी का नाम) नहीं कहते थे, वरन् डर से बहुधा उनकी चर्चा कियो करते थे, उस खरचा में उनका नाम बार बार लेना पड़ता था ।

सवैया-मौज भयो मिथिलापुर में चतुरंग चमू सजिआईबरात है
त्यो उछले तें जवाहिर की लरैं दूटैं तुरंगन केलहरात है
लखनरामको यौंदसरतथलिये निजगोदन मोदअमात है
ताप मिटाइबेकेहितमानों पपीहरा स्वातीकेबुन्दनहात है

(असिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा)

१-तो पद समता को कमल जल सेवत इक पायँ ।

कमल स्वतः जल में रहता है राधिका के चरणों की समता रूपी फल की प्राप्ति के लिये नहीं । जड कमल में समता की इच्छा का होना असिद्ध आधार है । इसलिये यहां असिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा है ।

२-दमयंती कचभार प्रभा से पिच्छभार हतप्रभा निहार ।

कार्तिकेय की सेवा करता है मयूर खलु संयम धार ॥

यहां मयूर में दमयंती के बालों की शोभा की समता प्राप्ति रूपी फलकी इच्छा का होना अविद्ध आधार है (सर्वथा असंभव है) और यह कहना कि उसी फल की प्राप्ति के लिये मयूर कार्तिकेय की सेवा करता है अफल को फलकल्पित करना है । यही असिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा है । इसमें खलु (निश्चय) उत्प्रेक्षा का वाचक है ।

३-सवैया-थारि में बूड़िजपै रविकोसरि पंकजपायनकी गहिवेको।
बास उपास करै बन में कटि की सरि सिंहिनियो चहिवेको।

... ..

रोज अन्हात है छीरधिमें ससितो मुखकी समता लहिवेको ।

ऊपर जितने उदाहरण दिये गए हैं उन सब में उत्प्रेक्षा वाचक शब्द मनो, जनो, खलु, मनु, जनु, इव, ध्रुव, इत्यादि मौजूद हैं। परन्तु कहीं कहीं बिना वाचक शब्द के भी उत्प्रेक्षा की जाती है। ऐसी उत्प्रेक्षा गम्योत्प्रेक्षा, गुमोत्प्रेक्षा वा ललि तोत्प्रेक्षा कही जाती है।

सूचना-फलोत्प्रेक्षा और हेतूत्प्रेक्षा की पहचान करना विद्यार्थियों के लिये तनिक कठिन बात है। इसकी जाँच के लिये सर्व प्रथम 'क्रिया' की जाँचो। यदि क्रिया किसी हेतु से कही गई जान पड़े तो हेतूत्प्रेक्षा समझो, और यदि उस क्रिया से किसी फल की इच्छा प्रगट होती हो तो फलोत्प्रेक्षा समझो। नीचे लिखे उदाहरणों पर विचार करो--

१-राधिका जी के अधर ओर नासिका की छवि अनूप है, मानो विशाकल को देखकर लालच वश आकर शुक बैठा हो। (सिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा)

२-राधिका जी के अधर और नासिका की छवि अनूप है मानो विवाकल का स्वाद लेने के लिये शुक चौंच मारना चाहता है। (सिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा)

३-श्रम से पसीने की बूंदें लटों द्वारा मुख हरगिररही है, मानो चंद्र को राहु का सताया हुआ समझकर नागबृंद उस पर अमृत बरसा रहे हैं। (असिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा)

४-मानो राहु-युद्ध-जनित पीड़ा दूर करने के लिये नाग-वृन्द चंद्रपर अमृत बरसा रहे हैं। (असिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा)

(गम्योत्प्रेक्षा)

दो०—तोरि तारतरु के सुमन बर सुगन्ध के भान ।

जमुना तो पूजन करत वृन्दावन को पौन ।

पुनः—इनहि देखि विधिमन अनुरागा । पटतर योग बनावनलागा ।

कीन्ह बहुत श्रम एकन आये । तेहि इरपा बन आनि दुराये ॥

कह प्रभु गरल बंधु शशि केरा । अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा ।

इसी प्रकार और भी समझ लेना चाहिये ।

सूचना—जानना चाहिये कि जब प्रकार की उत्प्रेक्षायें गम्योत्प्रेक्षा हो सकती हैं

(सापन्हवोत्प्रेक्षा)

कभी कभी अपन्हुति सहित उत्प्रेक्षा की जाती है, उसे 'सापन्हवोत्प्रेक्षा' कहते हैं । सब प्रकार को अपन्हुतियों से मिलाकर सब प्रकार की उत्प्रेक्षाओं के उदाहरण लिखें तो बड़ा बिस्तार होगा, इसलिये केवल एक उदाहरण लिखते हैं ।

दोहा—कमलन कहँ तेहि मित्र गुनि, मानहु हतिवे काज ।

प्रविशति सर नहि न्दान दित, रबितापित गजराज ॥

यहां सूर्यताप से तापित गज का सरोवर में प्रवेश स्नानार्थ निषेध करके, तदनंतर सूर्य के मित्र जानकर कमलों का नाश करने के लिये उत्प्रेक्षा की गई है, अतः यह 'सापन्हवोत्प्रेक्षा' है । इसी प्रकार सब उत्प्रेक्षाएँ सापन्हव हो सकती हैं ।

(१६) अतिशयोक्ति *

दो०—जहँ अत्यन्त सराहिबो अतिशयोक्ति सु कहन्त ।

भेदक, संबंधा, चपल, अक्रम, रूप, अत्यन्त ॥

* इस अलंकार को अँगरेजी में 'हाइपरबोली' (Hyperbole) और फारसी तथा उर्दू में मुबालगा कहते हैं ।

विवरण—जहाँ किसी की अतिशय सराहना करना मंजूर हो उस उक्ति के कथन में अतिशयोक्ति होती है। इसके छः भेद हैं—(१) भेदकातिशयोक्ति (२) संबन्धातिशयोक्ति (३) अपलातिशयोक्ति (४) अक्रमातिशयोक्ति (५) रूपकातिशयोक्ति और (६) अत्यन्तातिशयोक्ति।

१—भेदकातिशयोक्ति

दो०—औरै शब्दन की जहाँ उत्कर्षता सुवस।

भेदक अतिशय उक्ति तहँ मानत सुकवि नरेस ॥

‘औरै औरै’ शब्द इस अलंकार का वाचक है। जैसे—

दो०—औरै कछु बोलनि चलनि औरै कछु मुसुकानि।

औरै कछु सुख देत हैं सकैं न बैन दखानि ॥

दो०—अनियारे दीरघ दृगनि किती न तरुणि समान।

वह चितवनि औरै कछू जेहि बस होत सुजान ॥

(कभी कभी ‘न्यायी रीति है, और ही बात है, ‘अनोखी बात है’ इत्यादि, या इसी अर्थ के और भी शब्द इस अलंकार के वाचक होते हैं)—जैसे:—

जगत को जैतवार जीत्यो अवरंग तेब न्यायी रीति भूतल
निहारो शिवराज को। (भूषण)

दो०—आवलोकनि बोलनि हँसनि डोलनि औरै और।

आवनि मृदु गावनि सबै औरै वाके तौर ॥

मंगलीक बदन बिलास लल्लिराम औरै कलंगी मरोर मौर
भाल सजवारे में। औरै आनि औरै बानि औरै चढ़ी सान भुज
औरै धनुषान राम कर गजरारे में ॥

दो०—औरै हँसनि विलोकियो, औरै बचन उदार।

तुलसी ग्राम वधून के देखे रह न सँभार ॥

२-सम्बन्धातिशयोक्ति

दो०-जहँ अयोग्य है योग्य में, जहँ अयोग्य में योग्य ।

विवरण-सम्बन्धातिशयोक्ति के दो भेद हैं- (१) योग्य में अयोग्यता प्रकट करके प्रस्तुत की अतिशय बड़ाई करना (२) अयोग्य में किसी के सम्बन्ध से ऐसी योग्यता दिखलाना कि अतिशय बड़ाई प्रगट हो ।

(१) योग्य में अयोग्यता । जैसे:-

सान भरे भुज दण्ड अखण्ड तिहुँ पुर मंडन मान भरै का ?
आँगुरी वे अलकेश घनी सनी जीजन में अनुमान अरै को ?
यौं नखभा लछिराम लखे नखतावली क परमानै भरै को ?
श्री रघुनाथ के हाथन नाँमुहे कलपलता सनमान करै को ?

कलपलता सम्मान करने योग्य वस्तु है, पर उसे अयोग्य ठहराकर उसके सम्बन्ध से रामजी के हाथों की अतिशय उदारता प्रगट की गई है ।

पुनः-अति सुन्दर लखि मुख सिय नेरी । आदर हम न करत शशि केरो ।

यहां शशि सम्मान योग्य होने पर भी मुख की अतिशय सुन्दरता वर्णन करने के हेतु अनादर पात्र ठहराया गया है ।
कानन कुञ्ज प्रमोद बितान भरे फल फूल सुगन्ध विधानै ।
बावली के अरविदन पै मकरन्द मलिन्द सने शुभ गानै ॥
त्यौं लछिराम तरंगन ते सरजू के कढ़े सुर साजि बिमानै ।
औधपुरी महिमा यौं चितै अमरावती को हम क्यों सनमानै ?

(२) अयोग्य में योग्यता । जैसे:-

फबि फहरै अति उख निसाना । जिनमहँ अटकत बिबुध-बिमाना ।

बिबुध-बिमान अवश्यही बहुत ऊँचे पर होंगे। उनसे संबंध प्रगट करने से 'ध्वजा' में यह योग्यता हो गई कि उसकी ऊँचाई की अतिशयोक्ति होगई। बिबुधबिमान के सम्बन्ध से अत्यन्त उँचाई लक्षित हुई।

पुनः बासन बांस कठौती हुती औ फटी दुपटी जेहि बीतत सीवत। गोकुल छानी सरी गरी भीति रहे जित चूड़न के गन जीवत। धाम सुदामें लह्यौ हरि सों जेहि देखिये देखि दिग-मपति भीवन। बैठि जिते गन चातक के घन ते बन चाँच चलाय कै पीवन।

इसमें चातक और घन के सम्बन्ध द्वारा यह प्रगट किया है कि सुदामा का मन्दिर बहुत ऊँचा था। कोई घर इतना ऊँचा नहीं होता, परन्तु यहाँ घन चातक के सम्बन्ध से अयोग्य घर में भी अतिशय उँचाई की योग्यता कथन की गई है।

सचना—'संवातिशयोक्ति' का कविता में बहुत अधिक काम पड़ता है। इत अलंकार के बहुत प्रचलित उदाहरण यो कहे जाते हैं कि 'इनका वर्णन शेष, शारदा भी नहीं कर सकते, वेद भी नेति नेति बहता है। यथा—

जेहि बर बाजि रामअसवारा। तेहि शारदा न बरनै पारा।
शारद श्रुति शेषा ऋषय अशेषा जाकहँ कोउ नहि जाना ॥

दो०—जो सुख भा सिय मातु मन देखि राम वर भेष।

सो न सकाहिँ कहि कल्प शत सहस शारदा शेष ॥

कोटिहु बदन नहिँ बनै बरनत जगजननि शोभा महा।
सकुचहिँ कहत श्रुति शेष शारद मन्दमति तुलसी कहा ?

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि शेष, शारदा श्रुति इत्यादि का कथन के अयोग्य ठहरा कर उनके सम्बन्ध से प्रस्तुत वस्तु में अतिशयोक्ति की स्थापना की जाती है।

३-चपलातिशयोक्ति

दो०-कारण के लखतहि सुनत कारज आसुहिं होय ।

चपला अतिशय उक्ति यह अलंकार है सोय ॥

सवैया-पंचवटी के विहंग उमंग में बोलत बानी सुधारसघूटे ।
 त्यों लछिराम अदेव ललाट ते' आयु की रेख के अंक वे छूटे ।
 आसुरी हाथन ते' पल एक में भाग सोहाग के भाजन फूटे ।
 आगम श्री रघुनाथ सुनै मुनि मंडली के मन-बंधन छूटे ।
 तब शिव तीसर नैन उधारा । चितवत काम भयो जरि छारा ।
 विषमल कथा कर कीन्ह अरंभा । सुनत नसाहिं काम मद दभा ।

दो०-आयो आया सुनत ही शिव सजा तुव नावै ।

बैरि नारिदगजलन सों बूड़ि जात अरि गावै ॥

भूपन भनत साहि तनै शिवराज एते मान तव धाक आगे
 ब्रिसा उबलति है । तेरो प्रभू चल्लिबे को चरचा चले ते चक्र-
 वर्तिन की चतुरंग चम बिचलति है ।

४-अक्रमातिशयोक्ति

दो०-कारण अरु कारज जहाँ होत एकही संग ।

अक्रमातिशयउक्ति सो वग्नत सुकवि सुदंग ॥

संधान्यौ प्रभु विशिष कराला । उठी उदधि उर अनर ज्वाला ।

पायन श्री जमुना उमहीं जल बाढ़ो जबै वसुदेव गरे लौं
 हंकत ही यदुनन्दन के जमुना जी बहीं तरवा के तरे लौं ।

दो०-बाणासन ते रावै बाण विषम रघुनाथ ।

दससिर सिर धर ते छुटे दोऊ एकहि साथ ॥

उठयो संग गजकर कमल चक्र चक्रधर हाथ ।

कर ते चक्र सु नक्रसिर धरते विलग्यो साथ ॥

उद्धत अपार तुव दुंदुभी धुंकार साथ लंघै पारावार बाल-
वृन्दरिपुगन के । तेरे अतुरंग के तुरंगन के रंगे रज साथ हा
उड़ात रजपुंज हैं परन के । दक्खिन के नाथ शिवराज तेरे हाथ चढ़ें
धनुष के साथ गढ़ कोट दुरजन के । भूषन असीसैं तोहि करन
कसीसैं पुनि बाजन के साथ छूटै प्राण तुरकन के ।

सूचना-संग ही, साथ ही, एकै साथ, साथ अथवा इमो अर्थ का कोई
शब्द इस अलंकार का वाचक जान पड़ता है ।

५-रूपकातिशयोक्ति

दो०-जहँ केवल उपमान कहि प्रगट करै उपमेय ।

रूपकातिशय उक्ति तहँ वरनत सुकवि अजेय ।

विवरण-केवल उपमान कहके उपमेयों का अर्थ समझा
जाता है, वहाँ यह अलंकार होता है । जैसे:-

“ कनकलता पर चन्द्रमा धरे धनुष द्वै बाण ” ।

यहाँ कनकलता = काँई खी । चन्द्रमा = मुख । धनुष =
भी हैं । बाण = कटाक्ष ।

* इसको फारसी में “ मनअन तअज्जुब ” कह सकते हैं ।

व्याह समय रामचन्द्रजी सीताजी के
सिर में सिन्दुर देते हैं ।

राम स्त्रीय सिर सिंदुर देहीं । उपमा कहि न जात कबि केहीं ।
अरुणपराग जलज भरि नीके । शशिहि भूष अहि लोभ अमी के ।

यहाँ अरुणपराग = सिंदुर । जलज = शंख, वा कमल ।
शशि = सीताजी का मुख । अहि = रामजी का हाथ ।

सूचना-सूरदास ने इस अलंकार में अनेक पद बहे हैं । वरमे से एक
यह है । इसमें शशिकाजी के समस्त अंगों का वर्णन है ।

पद-(राग सारंग)-अद्भुत एक अनूपम बाग । युगल कमल पर गज क्रीडत है तापर सिंह करत अनुराग । हरि पर सरवर सर पर गिरिवर गिरि पर फूले कंज पराग । रुचिर कपोत वसै ता ऊपर ता ऊपर अमृत फल लाग । फल पर पुहुप पुहुप पर पल्लव तापर शुक पिक मृगमद काग । खंजन धनुष चन्द्रमा ऊपर ता ऊपर इक मणिधर नाग ।

युगल कमल=दोनों चरण। गज=मंद चाल। सिंह=कटि। सरवर=नाभी। गिरिवर=कुच। कंज=मुख। कपोत=कंठ। अमृतफल=चिबुक। पुहुप=गोदना बिंदु। पल्लव=होंठ। शुक=नासिका। पिक=बाणी। मृगमद=कस्तूरीबिन्दु। काग=काकपक्ष, पाटी। खंजन=नेत्र। धनुष=भौंहें। चन्द्रमा=ललाट। मणिधरनाग=सीस फूल सहित गुंथी हुई वेणी।

(इसी प्रकार और भी समझना चाहिये)

पुनः-भूषण भनत देस देस बैरि नारिन में होत अचरज घर घर दुख हृद के। कनकलतानि इन्दु, इन्दु माहि अरविन्द, भदैं अरविन्द ते बुन्द मकरन्द के।

यहां कनकलता=स्त्रियां। इन्दु=मुख। अरविन्द=नेत्र। मकरन्द बुन्द=आंसू।

रामायण में तुलसीदासजी ने रामचन्द्रजी के मुखसे सीता जी के लिये कहलाया है:-

खंजन शुक कपोत मृग मोना । मधुप निकर कोकिला प्रवीना ॥
कुंदकली दाड़िम वामिनी । शरद कमल शशि अहि-भामिनी ॥
वरुणपाश मनोज धनु हंसा । गज केहरि निज सुनत प्रशंसा ॥
श्रीफल कमल कदलि हरपाहीं । नेकु न शंक सकुच मनमाहीं ॥
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू । हरषे सकल पाय जनु राजू ॥

इसमें भी उपमानों द्वारा जानकी जी के अंगों को (उपमेयों को) सूचित किया है। जैसे:-

खंजन = नेत्र । शुक = नाक । कपोत = ग्रीवा । मृग, मीन = नेत्र । मधुप = बाल । कोकिला = बाणी । कुन्दकली = दंत । दाडिम = दंत । दामिनी = मुसकानि । शरदकमल, शशि = मुख । अहिभामिनी = वेणी । वरुण पाश = बाल (छूटे हुए) । मनोज भनु = भौंहें । गज = बाल । केहरि = कटि । श्रीफल = कुच । कमल = हाथ । कदलि = जंघा ।

कहने का तात्पर्य यह है कि जब तुम मेरे संग थीं तब ये सष उपमान तुम्हें देख कर लज्जित रहते थे । अब तुम्हारा हरण होने से ये सब प्रसन्न हुए हैं ।

(सापन्हवातिशयोक्ति)

जहां अपन्हुति सहित रूपकातिशयोक्ति हा । जैसे:—

अहि शशि मंडल प लसै, जिय पताल जिन जानु ।

यहां मुखरूपी चंद्रमा पर बेणीरूपी सर्प का वर्णन है ।

उसे पताल में मत जानो कहकर अपन्हुति प्रगट की गई है ।

सूचनो-इस जगह हम सूदाग कृत दो तीन पद ऐसे लिखे देते हैं जिन को समझ लेने से इस अलंकार की सामग्री अच्छी तरह से समझ में आजा यगी । ये पद दानलीला के समय के हैं ।

पद-लेहौं दान इनन्ह का तासों । मत्त गमंद हंस तुम पै हैं
कहा दुरावति मो सों ॥ १ ॥ केहरि कनक कलस अमृत के
कैसे दुरै दुरावति । बिद्रुम अहैं वज्र के किनका नाहिन हमें
दिखावति ॥ २ ॥ खग कपोत कोकिला कार खंजन चंचल मृग
जामति । मणि कंचन कं चक्र जरे हैं एते परनहि मानति ॥ ३ ॥
सायक चांप तुरै बनिजति हो नितप्रति आवहु जाहु । दान दिये
बिनु जान न पैहौ दिये ते होय निषाहु ॥ ४ ॥ यह बनिजति
वृषभानुसुता तुम हम सो वैर बढावत । सुनहु सूर एतै पै कहति
है हम धां कहा लदावत ॥ ५ ॥

पद-यह सुनि चकृत भई ब्रजबाला । नरुणी सबै परसपर
बूझै कहा कहत गोपाला ॥ कहँ तुरंग कहँ गज केहरि कहँ हंस
सरोवर सुनिये । कंचन कलस गढ़ाये कब हम देखे धौ यह
गुनिये ॥२॥ कोकिल कीर कपात बनहि में मृग खंजन एक संग ।
तिनके दान लेत हैं हम पै देखहु इनके ढंग ॥ ३ ॥ चंदन और
सुगंध बतावत कहाँ हमारे पास । सूर श्याम जो ऐसे दानी
देखि लेहु हम पास ॥ ४ ॥

पद-भूलि गहे तुम कहा कन्हाई । तिनका नाम लेत तुम
आगे जे सपनेहु दृष्टि न आई ॥ १ ॥ हयबर गयबर सिंह हंस
खग मृग कहँ हैं हम लीन्हें । सायक साध तुमी सुनि चकृत चमर
न देखे चीन्हे ॥ २ ॥ चंदन और सुगन्ध कहत हौ कंचन कलस
बतावहु । सूर श्याम ये सब जौ हे हैं न कहि दान तुम पावहु ॥ ३ ॥

पद-प्रगट करौ अब तुमहि बताऊं । चिकुर चौर, घूँघट
हयबर बर, भ्रू सारंग दिखाऊं ॥ १ ॥ बान कटाक्ष, नेन खंजन मृग,
नासा सुक उपमाऊं । तरवन चक्र अधर विद्रुम बर, दसन
वज्रकन ठाऊं ॥ २ ॥ ग्रीव कपात, कोकिला वानी, कुच घट
कनक समाऊं । यौवन मद रस अमृत भरे हैं रूपरंग भलकाऊं
॥ ३ ॥ अंग सुगंध बास पट अंबर गति गति तुमहि सुनाऊं ।
कटि केहरि, गयंद गति शोभा हंस सहित इक ठाऊं ॥ ४ ॥ फेर
किये कैसे निबहागी घरहि गये कहँ पाऊं । सुनहु सूर यह
बनिज तुम्हारे फिरि फिरि तुमहि सुनाऊं ॥ ५ ॥

६-अत्यन्तातिशयोक्ति

दो०-जहां हेतु ते प्रथम ही प्रगट होत है काज ।

अत्यन्तातिशयोक्ति तेहि कहैं मकल कविराज ॥

(यथा)

दोहा—हनुमान की पूंछ में लगन न पाई आग ।

लंका सिगरी जरि गई गये निशाचर भाग ॥

राजन ! राउर नाम यश सब अभिषत दातार ॥

फल अनुगामी महिषमणि मन अभिलाष तुम्हार ॥

इसमें पहले 'फल' तदनन्तर मनोभिलाष वर्णन किया गया है।

कवित्त

मंगल मनोरथ के प्रथमहि दाता तोहि कामधेनु कामतरुसो
गनाइयतु है । याते तेरे गुन सब गाय को सशत कवि, बुद्धि
अनुसार कछु तऊ गाइयतु है । भूपन भन्न साहितनै सिवराज
निज, बखत बढ़ाय करि तोहि ध्याइयत है । दानता को डारि
औ अधीनता बिडारि दीह दारिद को मारि तेरे द्वार आइयतु है ।

दो०—कवि तरुवर सिव सुजस रस सींचे अचरज मूल ।

सुफल होत है प्रथम ही पीछे प्रदत्त फूल ॥

ग्राह ग्राहीत गयंद मुख कढ़न न पाई 'जाहि' ।

पहले ही हरि आय कै निज कर उधरयो ताहि ॥

धूमधाम ऐसी रामचन्द्र बीरता की मची, लल्लिराम रावन
सरोष सरकस तें । बैरी मिले गरद मरोरत कमान गोसे, पांछे
कढ़े बान तेजमान तरकस तें ।

कह कपि मुनि गुरुदछिना लेहु । पीछे हमहि मंत्र तुम देहु ।

दोहा—पद परवारि जलपान करि आपु सहित परिवार ।

पितर पार करि प्रभहिं पुनि मुदित गयो लै पार ॥

(१७) तुल्ययोगिता

दोहा-क्रिया और गुण करि जहाँ धर्म एकता होय ।

चतुर चतुर विधि कहत हैं तुल्ययोगिता सोय ॥

विवरण-क्रिया द्वारा अथवा गुण द्वारा जहां कई एक व्यक्तियों का एकही धर्म कथन किया जावै, वह तुल्ययोगिता है। यह चार प्रकार की होती है:—

(१)-पहली

वर्णन का जहाँ धर्म एक प्रथम कहत कवि लोग ।

बि०-जहाँ अनेक उपमेयों का एक धर्म कथन किया जाय, वहां प्रथम तुल्ययोगिता जानो। यथा:—

१-गुरुरघुपतिसब मुनि मन माहीं। मुदित भये पुनि पुनि पुलकाहीं

२-श्रीदशरत्न सों मांगिवे हेत गुनी निगुनी दोउ द्वार पै ठाढ़े ।

३-सब कर संसय अरु अज्ञानू। मंद महोपन कर अभिमानू ॥

भृगुपति केरि गर्व-गरुवाई। सुर मुनि वरन केरि कदवाई ॥

सिय कर सोच जनक परितापा। रानिन कर दाहन दुख दापा ॥

संभु चाप बड़ बोहित पाई। चढ़े जाय सब संग बनाई ॥

४-मुख ससि निरखि चकोर अरु, तन पानिप लाखे मीन

पद पंकज देखत भँवर, होत नयनरस लीन ॥

सू०-इन उदाहरणों में केवल वर्णनों का धर्मैकता कही गई है।

(२)-दूसरी

दोहा-धर्म अवर्णन को जहां एकै विधि ठहराय ।

तुल्ययोगिता दूसरी ताहिं कहैं कविराय ॥

बि०-जहां अनेक उपमानों का एकही धर्म कहा जाय। जैसे-

दो०—लखि तेरी सुकुमारता ए री या जग माहिं ।
 कमल गुलाब कठोर से केहि को भासत नाहिं ॥
 एक बेर जिन जिन लखे तेरे लोचन चाहि ।
 नीके लागत मीन मृग खंजन कंज न ताहि ॥
 सिव सरजा भारी भुजन भुव भरु धरयो सभाग ।
 भूपन अब निहांचित हैं सेसनाग दिगनाग ॥

सवैया—चंदन चंद पियूष मयूष रु सुद्ध पयोनिधि छोभ सों
 पागे । पूनो की राति में कैरव के बन सेत सरोरुह छवि जागे ॥
 पारद हार तुषार पहार कपूर के भार रु दूध के भागे । मैले
 लगे सबही के बिलास सु राम महीपति के जस आगे ।

सू०—इन उदाहरणों में अवयवों (अवयवों) की धर्मकता कही गई है ।

३—(तीसरी)

दो०—मम करिये उत्कृष्ट गुण बहु के इक महँ लाय ।
 तुल्ययोगिता तीसरी ताहि कहैं कविराय ॥
 जाय जोहारै कोन को कहा कहूं है काम ।
 मित्र मातु पितु बंधु गुरु साहेब मेरे राम ॥
 तुम विधि, बुध, विधु, विबुधपति विधुधर बुद्धिनिधान
 तुमहि भूप हौ कल्यतरु गुणनिधि चतुर सुजान ॥
 कामधेनु अरु कामतरु चिंतामणि मन मानि ।
 अरु चौथो तेरो सुजस ये मनसा के दानि ॥

सूचना—(तीसरी तुल्ययोगिता और दूसरे उल्लेख का भेद) तीसरी
 तुल्ययोगिता में एक को बहुतों की समता दी जाती है । दूसरे उल्लेख में
 एक को बहुत भाति से वर्णन किया जाता है । तुल्ययोगिता में बहुतों के
 उत्कृष्ट गुणों को एक में समता दी जाती है ।

उल्लेख में बहुतों के गुण पृथक पृथक वर्णन करने का तात्पर्य होता है। नीचे लिखे उदाहरण समझो।

तुल्ययोगिता—यह राजा इन्द्र, करण और युधिष्ठिर के समान है।

उल्लेख—यह राजा तेज में इन्द्र, दान में करण और धर्म में युधिष्ठिर है।

(भेद)—तुल्ययोग्यता में समता कथन का भाव रहता है, उल्लेख में केवल गुण वर्णन का भाव रहता है।

४—(चौथी)

दो०—हितु में अनहितु में जहाँ करिये एकै धर्म।

(यथा)

दो०—जो सींचै सर्पिष सिता अरु जो हनै कुठाल।

कुटु लागै तिन दुहुन को यहै नीब की चाल ॥

कोऊ फाटो क्रोध करि वा सींचो करि नेह।

बेधत वृत्त बबूल को तऊ दुहुन की देह।

जो सींचत काटत जु है जो पेरत जन कोइ।

जो रक्षत तिन सबन को ऊख मीठियै होइ ॥

बंदौ संत समान चित हित अनहित नहिं कोउ।

अंजलि गत शुभ सुमन जिमि सम संगंध कर दोउ ॥

‘दास जूपापी सुरापी तपी धरु जापी हिनू अहिनू समभाई।

गग तिहारी तरंगन सौं सब पावैं पुरंदर की प्रभुताई।

श्री रघुनाथ पुरी की प्रभा सरयू के तरंग ते संग गली में।

सिद्ध सुरापी असंत भौ संत विमान चढ़े लसैं व्योमगली में।

१८—(दीपक)

दो०—वर्ण्य चवर्ण्यन को जहां एकै धर्म कहाय ।

दीपक तासौं कहत हैं सिंगरे कवि समुदाय ॥

विचरण—जहां उपमेय और उपमान दोनों का एक धर्म कथन किया जाय, वहां दीपक होता है । जैसे—

१-दो०—सोहत भूपति दान सों फल फूलन आराम ।

२ गोकुल दोऊ सगहिबे योग्य जगै जग में जस मोद महानें ।
गावरे नैन कटाक्षन ते बलि खंजन राजा चंचलता तें ।

३—थाह न पैये गंभीर बड़ो है सदाही रहै परिपूरण पानो ।
राकै विलोकि कै आयुन दासजू होत उमाहिल में अनुमानी ॥
आदि वही मरजाद लिये रहै है जिन को महिमा जग जानी ।
काहु के केहूं पटाये घटै नहि सागर ओ गुण आगर प्राणी ॥

सूचना—पहले उदाहरण में 'भूपति' वर्ण्य है 'आगम' अवर्ण्य है, दोनों का धर्म 'सोहत' एकही कहा गया है, परन्तु सोहने के कारण भिन्न २ कहे गये हैं । इसी प्रकार दूसरे उदाहरण में नैन वर्ण्य, खंजन अवर्ण्य हैं, दोनों का धर्म 'राजत' एकही कहा गया है, परन्तु राजने का कारण कटाक्ष और चंचलता भिन्न २ हैं । तीसरे उदाहरण में 'गुण आगर प्राणी' वर्ण्य है और 'सागर' अवर्ण्य । 'पटाये घटै नहीं' धर्म एक है । श्रेष्ठ से दोनों के कारण की भी एकता दिखल ई है, या वास्तव में कारण यही भी भिन्न २ हैं ।

४—संगते जती कुमंत्र ते राजा । मानते ज्ञान पान ते लाजा ।

प्रीति प्रणय विनु मद ते गुनीनाशहि वेगिनीति अस सुनी ।

इसमें 'राजा' वर्ण्य है और शेष सब अवर्ण्य हैं । कारण भिन्न २ हैं । 'नाशहि' सब का धर्म एक कहा गया है । (इसी प्रकार और भी समझना)

५-दो०-सुरसारिता सों सिंधु अरु चंद्रिकाहि सों चंद ।
कीरति सों जसवंत नृप महिमा धरत अमंद ॥

सूचना-१-तुल्ययोगिता में केवल उपमेयों का या केवल उपमानों का एक धर्म कथन किया जाता है ।

२-दीपक में उपमेय और उपमान के धर्म का एक ही साथ कथन किया जाता है ।

(१९) आवृत्ति दीपक

क्रियापदन को होत जहँ आवर्त्तन को जोग ।
दीपक आवृत्ति कहत हैं ताहि सकल कबिलोग ॥
दीपक आवृत्ति तनि विधि, पदावृत्ति एक जानु ।
अर्थावृत्ति दृजी, तृतीय पद-अर्थावृत्ति मानु ॥

(१)-पदावृत्ति

अर्थ दोय पद एक की आवृत्ति करिये जान ।
पदावृत्ति दीपक तहाँ कहिये मति के भौन ॥

(यथा)

दो०-बहै रुधिर सरिता बहै किरवानैं काढ़ि कोस ।
बीरन बरहिं बगंगना बरहिं सुभट रण रोस ॥
दो०-नंद सुवन व्याखू करत वाढ़ी प्रीति अथोर ।
परसति सुन्दरि सरस तिय परसति दृग की कोर ॥
रघुनाथ जहां तक गोधन है संग ते चरिवो परित्यागत हैं ।
सुर साँवरे सारंग रागत हैं बन के सब सारंग रागत हैं ।

२-(अर्थावृत्ति)

दो०-शब्द पृथक एकै अरथ जहां सु आवृत लेत ।

अर्थावृत्ति दीपक तहां कहैं सुकवि करि हेत ॥

(यथा)

पयपयोधि तजि अवध बिहाई । जहँ सियराम लखन रहे आई ।

दो०-दौराहिं संगर मत्त गज धावाहिं हय समुदाय ।

नटाहिं रंग महुँ बहु नटी नाचाहिं नट हरखाय ॥

पुनः-दिस दिस बिकसे कुंज बन फूले रुचिर रसाल ।

(सबैया)

छिन होत हरीरी मही को लखै निरखै छिनही घन जोति छटा ।

अवलोकति इंद्रवधूनकी पांति बिलोकाति हैं छिन कारी घटा ।

तकि डार तदंगन की तरसै दरसै तउ नाचत मोर अटा ।

अध ऊरध आवत जात भयो नित नागरि को नट कैसो बटा ।

पुनः-कूजहिं कोकिल गूँजहिं भृङ्गा ।

काहे तं आए नहीं 'रघुनाथ' ये आइकै औधि के बासर पूजे ।

देखु मधुव्रत गूँजे चहुँ दिसि कोयल बोली कपोतहु कूजे ।

३-(पदार्थावृत्ति)

दो०-पद अरु अर्थ दुहून की आवृत्ति फिरि फिरि होय ।

कहत पदार्थावृत्ति तेहिं दीपक सब कवि लोय ॥

(यथा)

दो०-गजरत हैं रण राम जू गरजत है दससीस ।

धावत रिस भरि रजनिचर चहुँ दिसि धावत कीस ॥

बोलत चातक चाय सों बोलत मत्त मयूर ।
पुनः—तोच्यो नृपगण को गरब तोरच्यो हरकोदंड ।

राम जानकी जीव को तोरच्यो दुःख अंखड ॥

‘ग्वाल कवि’ आन भरे सान भरे स्यान भरे कल्लू अलस्यान
भरे भरे मान माल के । लाज भरे लाग भरे लाभ भरे लोभ
भरे लाली भरे लाड भरे लोचन हैं लाल के ।

भले भलाई पै लहैं लहैं निचाई नीच ।

सुधा सराहिय अमरता गरल सराहिय मीच ॥

सूचना—स्मरण रखना चाहिये कि लाटानुप्रास तथा यमक नामक शब्दालंकारों में भी शब्दों का आवर्तन होता है । भेद यह है कि उन शब्दालंकारों में सब प्रकार के शब्दों का आवर्तन होता है और इस अलंकार में केवल क्रियापद का आवर्तन है । ये आवर्तन केवल ‘कान’ को सुलभकर हैं । यह अर्थालंकार है और इसके क्रियापदों का आवर्तन अर्थ में बिलक्षणता जाना है ।

(२०) कारकदीपक

दो०—क्रम तें क्रिया अनेक को कर्ता एक होय ।

कारक दीपक ताहि को बरनत हैं सब कोय ॥

बिबरण—क्रियायें कई एक हों, पर उनका कर्ता एक हो, वह कारक दीपक अलंकार कहलाता है ।

सूचना—स्मरण रखना होगा कि ‘समुच्चय’ अलंकार में भी कई क्रियाओं का कर्ता एक होता है, पर दोनों में भेद यह है कि ‘कारकदीपक’ की क्रियाओं से प्रगट किये कारणों का क्रम से (पहले एक, फिर दूसरा, फिर तीसरा इत्यादि) होना समझा जाता है, और ‘समुच्चय’ वाली क्रियाओं से प्रगट किये हुए कार्य एक तो केवल भाव बाचक होते हैं दूसरे उनका होना एक साथ पाया जाता है अर्थात् उनमें क्रम नहीं प्रगट होता । इसी लिये इस

अलंकार को परिभाषा में “क्रम” पद दिया गया है । जैसे:-

१-लेत चढ़ावत खँचत गाढ़े ।

२-दरस दियो तो मित्र बर आओ बैठो पास ।

कुशल कहो निज भवन की बाढ़े हिये हुलास ॥

३-ऋषिहि देखि हरषै हियो, राम देखि कुम्हिलाय ।

धनुष देखि डरपै महा, चिंता चित्त डोलाय ॥

(२२) मालादीपक

दो०-दीपक अरु एकावली मिलैं जहाँ ये दोय ।

बरनत कवि कोविद सकल मालादीपक सोय ।

सो०-जगकी रुचि ब्रजवास, ब्रजकी रुचि ब्रजचंद हरि ।

हरि रुचि बंसी ‘ दास ’ बंसी रुचि मन बाँधिबो ॥

रस सों काव्यरु काव्य सों सोहत बचन महान ।

बाणी ही सों रसिक जन तिन सों सभा सुजान ॥

भरत सरिस को रामसनेही । जग जपु राम राम जपु जेही ।

मन कवि भूषण को सिवकी भगति जीत्यो सिवकी भगति
जीत्यो साधुजन सेवा ने । साधुजन जीते या कठिन कलिकाल
कलिकाल महावीर महाराज माहिमेवाने ॥ जगत में जीते महा-
वीर महाराजन ते महाराज बावन हू पातसाह लेवा ने । पात-
साह बावनो दिलीके पातसाहि दिलीपति पातसाहै जीत्यो
हिंदूपति सेवा ने ।

(२२) देहरीदीपक

दो०-परै एक पद बीच में दुहुँ दिसि लागै सोइ ।

सो है दीपक देहरी जानत हैं सब कोइ ॥

सवैया-हैं नरसिंह महामनुजाद हन्यौ प्रहलाद को संकट भारी ।

दास विभीषनै लङ्क दई निजरंक सुदामाको संपति भारी ॥

द्रोपदी चीर बढ़ायो जहान में पांडव के जसकी उजियारी ।

गर्बिन के खनि गव बहावत दीनन के दुख श्री गिरधारी ॥

सूचना-यहां रेखांकित शब्द दोनों ओर लगते हैं। शब्द का ऐसाही प्रयोग बेहरीदीपक है।

पुनःदो०-लहि जसवंत नरेश पद कविन निहाल सु 'कीन' ।

अभय प्रजा मरुदेश अरु सभय ज अखिल अरीन ॥

यहां 'कीन' शब्द दोहे के उत्तरार्द्ध में भी लगता है।

(२३) प्रतिवस्तूपमा

दो०-युग वाक्यन को होत जहँ एकै धर्म बखान ।

भूषण प्रतिवस्तूपमा नाहि कहैं मनिमान ॥

विवरण-इस अलंकार में तीन बातें जरूरी हैं-(१) उपमेय और उपमान स्वरूप दो वाक्य (२) दोनों वाक्यों का एकही धर्म (३) उस धर्म का समानार्थवाची शब्दों द्वारा अलग अलग कथन। जैसे:-

“सोहत भानु प्रताप सों लसत सूर धनु बान ”

१- { लसत सूर धनु बान = उपमेय वाक्य है ।
सोहत भानु प्रतापसों = उपमान वाक्य है ।

२- 'शोभित होना, दोनों वाक्यों का एक धर्म है ।

३- { उपमेय में वही धर्म 'लसत' से कहा गया है ।
उपमान में वही धर्म 'सोहत' से कहा गया है ।

दो०-चटक न छाड़त घटत हू, सज्जन नेह गँभीर ।

फीको परै न बरु फटै, रँग्यो चाल रँग चार ॥

इस दोहे में सज्जन की प्रीति को दृढ़ता का वर्णन है। पूर्वार्द्ध

उपमेय वाक्य, और उत्तरार्द्ध उपमान वाक्य है। 'कम न होना' दोनों का एक धर्म है जो 'चटक न छाड़त' और 'फोको परै न' दो एकार्थ बाची शब्दों द्वारा प्रगट किया गया है। केवल शब्द अलग २ हैं अर्थ एक ही है।

पुनः-तिनहि सोहातन अवध बधावा। चोरहि चाँदनिरातिन भावा॥

इसमें पूर्वार्द्ध वाक्य उपमेयरूप और उत्तरार्द्ध वाक्य उपमान रूप है। दोनों का एक धर्म "सोहान न" और "न भावा" पृथक् पृथक् शब्दों द्वारा कथन किया गया है। पुनः—

दो०—साधु संग पायहु नहीं, खलको खलपन जाय।

सुधा पियायहु अहि नहीं, तजत गरल दुखदाय ॥

पिशुन बचन सज्जन चितै, सकै न फोरि न फारि।

कहा करै लगि तोय में, तुपक तीर तरवारि।

यहां 'सकै न फोरि न फारि' और 'कहा करै' भिन्न शब्दों द्वारा 'अशक्तता' रूपी एक धर्म प्रगट किया गया है।

(पुनः)

रग सों बागिज छाजैं भरे छबि राधे के नैन कटाक्ष सों राजैं।

पुनः-राजै सुधा सों सुधा निधियाँ मुसकानि सों सोहत तो मुख जै से।

सूचना-कभी कभी काकु से और 'एकार्थ बाची' शब्दों के बदले 'बिरोध-वाची' शब्दों द्वारा भी इसका 'एक धर्म' कहा जाता है जैसे:-

(काकु से)-सो मैं वरणि सखीं विधि केहीं।

डायर कमठ कि मंदर लेहीं ?

यहां उपमेय रूपी पूर्वार्द्ध वाक्य में वर्णन की 'अशक्तता' कहा गई है और उपमान रूपी उत्तरार्द्ध वाक्य में 'काकु' से 'अशक्तता' प्रगट है।

(विरोधवाची शब्दोंसे)-प्रगट होत गुण आपही, कहे औरकेनाँय
लहसुन की दुर्गंध नहिँ सौगँद किये छिपाय ॥

यहां उपमेय वाक्य में 'गुण' और उपमेय वाक्य में 'दुर्गंध' (अवगुण) कहा गया है, और उपमेय वाक्य में 'आपही प्रकट होत'-'विधिवाक्य'-से और उपमान वाक्य में 'नहिँ सौगँधकिये छिपाय'-निषेध वाक्य-से दोनों की 'एकधर्मता' गुण का प्रगट होजाना-कहा गया है।

सूचमा-इस अलंकार की मात्रा भी देसी जाती है। जैसे:—

दो०-बहत जु सर्पन को मलय, धरत जु काजर दीप ।

चंदहु भजत कलंक को, राखहिँ खलन महीप ॥

इस में चार वाक्य हैं। चारों में अंतिम वाक्य उपमेय रूप है, और शेष तीन उपमान रूप हैं। चारों की एकधर्मता 'बहत', 'धरत' भजत, और राखहिँ एकार्थवाची शब्दों से कही गई है।

पुनः-मदजलधरनद्विरदवल रोजत, बहुजलधरनजलदछबिसाजै ।

पुहुमि धरन फनिनाथलसत अतितेजधरन प्रीयमरविछाजै ॥

खरग धरन सोभा तहँ राजन रुचिभूषन गुण धरन समाजै ।

दिल्लिदलन दक्षिण दिसि थंभन ऐङ्गधरन शिवराज विराजै ॥

(२४) दृष्टान्त

दो०--लाखि बिंबा प्रतिबिंब गति उपमेयो उपमान ।

वाचक पदके लोप तें है दृष्टान्त सुजान ॥

विवरण-दृष्टान्त में दो वाक्य होते हैं, एक उपमेय वाक्य दूसरा उपमान वाक्य। दोनों वाक्यों के पृथक् पृथक् धर्म होते हैं। दोनोंमें बिंबप्रतिबिंब भावसा जान पड़ता है अर्थात् एक प्रकार की समतासी जान पड़ती है। परन्तु यह समता बिना 'वाचक' शब्दों के दिखलाई जाती है।

(यथा)

दो०-पगीं प्रेम नंदलाल के, हमें न भावत जोग ।

मधुप राजपद पाय कै, भीख न मांगत लोग ॥

इसमें पूर्वार्द्ध उपमेय वाक्य है इसका धर्म है जोग न भाना, और उत्तरार्द्ध उपमान वाक्य है जिसका धर्म है 'भीख न मांगना' परन्तु बिना वाचक शब्द के ही इन दोनों की समता का बिंब प्रतिबिंब झलकता है । अर्थात् कृष्ण के प्रेमियों का जोगमें लिप्त होना वैसाही है जैसे किसी राजाका भीख मांगना।

पुनः-१-रामकलाधरकीसुषमा लखिआंखिनकोरुखऔरनभावै

छांड़ि तरंग सुधा सरिकी कोउ पाखरि को जलपीवन भावै

२-शिव औरंगाहि जिति सकै और न राजा राव ।

हाथिमथ पै सिंह बिनु आन न घालै घाव ॥

३-निरखि रूप नंदलाल को दृगन रुचै नहि आन ।

ताजि पियूष कोऊ करत कटु औषधि को पान ॥

सूचना-दृष्टान्त से मिलता हुआ प्राचीनों ने 'उदाहरण' नामक एक अलंकार माना है जिसकी हिन्दी काव्य में बड़ी भरमार है, परन्तु हाल की आचार्यों ने इसे न जाने क्यों छोड़ दिया है। यह उदाहरण अलंकार, रसम दृष्टान्त, और अर्थान्तरन्यास में से किसी में भी अन्तर्भूत नहीं हो सकता।

ज्यों, यों जैसे कहि करिय युग घटना समतूल ।

उदाहरण भूषण कहैं ताहि सुकवि बुधिमूल ॥

कोई साधारण बात कहकर 'त्यों जैसे' इत्यादि वाचक शब्दों द्वारा किसी विशेष बात से समता दिखलाई जाती है वहां 'उदाहरण' अलंकार होता है। दृष्टान्त और अर्थान्तरन्यासमें वाचक शब्द नहीं आता। उदाहरण अलंकार के उदाहरण ये हैं।

(यथा)

दो०-एक दोष गुण पुंज में होत निमग्न 'मुरार' ।

जैसे चंदमयूख में अंक कलंक निहार ॥

अनरसहू रस पाइये रसिक रसीली पास ।

जैसे सांठे की कठिन गांठों भरी मिठास ॥

जगत जनायो जेहि सकल सो हरि जान्यो नाहिं ।

ज्यों आँखिन सब देखिये आँखि न देखी जाहिं ॥

इन उदाहरणों में 'ज्यों', जैसे वाचक शब्द आये हैं, अतः ये दृष्टान्त नहीं हैं (परिभाषा देखो)

दृष्टान्त अलंकार में कवि का मुख्य लक्ष्य उपमान वाक्य (उत्तरार्द्ध भाग) पर होता है। उदाहरण अलंकार में कवि का मुख्य लक्ष्य उपमेय वाक्य (पूर्वार्ध भाग) पर होता है, उत्तरार्ध केवल बानगी के तौर पर होता है।

(उदाहरणालंकार के और उदाहरण)

बुरो बुराई जो तजै तो चित खरो सकात ।

ज्यों निकलंक मयंक लखि गनें लोग उतपात ॥

यों दल काढ़े बलख ते तैं जयसाह भुवाल ।

उदर अघासुर के परे ज्यों हरि गाय गुवाल ॥

(दृष्टान्त अलंकार की माला भी देखी जाती है)

(यथा)

अरविद प्रभु लिलत देखि के भीर अचानक जाय अरैं पे अरैं ।
बनमाल थली लखि कै मृगशावक दौरि बिहार करें पे करें ॥

सरसी ढिग पाय कै व्याकुल मीन बिलास सों कूदि परैं पै परैं ।
अवलोकि गोपालको 'दासजू' ये अँखियां तजिलाज ढरैं पै ढरैं॥

सूचना-स्मरण रखना चाहिये कि इसी से मिलता जुलता हुआ "अर्था-
न्तरन्यास" अलंकार भी होता है। दोनों में भेद यह है कि:—

दृष्टान्त में दो सम वाक्यों की एकता दिखाने का भाव होता है।

अर्थान्तरन्यास में एक वाक्य का समर्थन दूसरे वाक्य से किया जाता है।

(जैसे)

काटे पै कदली फलै कोटि जतन करि सींच ।

विनय न मान खगेश सुनु डाटेदि पै नव नीच ॥

यहां कदली वृक्ष और नीच पुरुष की एकता दिखलाने का भाव है इसलिये यह दृष्टान्त अलंकार है और—

टेढ़ जानि शंका सब काहू । बक चन्द्रमहि ग्रसे न राहू ।

यहां एक वाक्य का दूसरे वाक्य से समर्थन करने का भाव है, इसलिये यह अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

अर्थान्तरन्यास में साधारण का समर्थन विशेष से और विशेष का समर्थन साधारण से होता है। और दृष्टान्त में साधारण की समता साधारण से और विशेष की समता विशेष से की जाती है।

बहुधा विद्यार्थी इन दोनों के उदाहरणों में भेद नहीं कर सकते ऐसा हमारा अनुभव है इसलिये इन दोनों के भेद को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये।

१-‘सूचना’-प्रतिवस्तुपमा में दोनों वाक्यों का एक ही धर्म होता है और वह दोनों वाक्यों के साथ अलग अलग एकार्थ वाची शब्दों में कहा जाता है २-दृष्टान्त में दोनों वाक्यों के धर्म भिन्न भिन्न होते हैं, अर्थात् केवल

उपमेय वाक्य और उपमान वाक्य में बिबिधप्रतिबिम्बभाव होता है, धर्म में बिबिध प्रतिबिम्ब भाव नहीं होता, परन्तु कवि उपमा कथन ऐसी युक्ति से करता है, कि उस युक्ति के कारण दोनों वाक्यों में एक प्रकार की एकता सी भासने लगती है। इसी बिलक्षणता का नाम अलंकार है।

(२५) निदर्शना

दो०-सरिस वाक्य युग के अर्थ करिये एक आरोप ।

भूषण ताहि निदर्शना कहत बुद्धि दै ओप ॥

बिवरण-जहाँ दो वाक्यों के अर्थ में (विभिन्नता रहते हुए भी) समता भाव सूचक ऐसा आरोप किया जाय कि दोनों एक से जान पड़ें, वहाँ निदर्शना अलंकार होता है। प्राचीन आचार्यों ने इसके दो भेद कहे हैं, परन्तु नबोन आचार्य इसके पांच भेद मानते हैं।

१-(प्रथम निदर्शना)

दो०-जो, सो, जे, ते पदन करि असम वाक्य सम कीन ।

ता कहँ प्रथम निदर्शना बरनै कवि परवीन ।

(यथा)

१-जो अति सुभट सराह्यो रावन । सो सुग्रीव केर लघुधावन ।

२-सुनु खगेश हरिभक्ति बिहाई । जे सुख चाहहि आनउपाई ।

तेसठ महा सिंधु बिनु तरनी । पैरि पार चाहत जड़ करनी ।

दो०-जंग जीत जे चहत हैं तोसों वैर बढ़ाय ।

जीवे की इच्छा करत कालकूट ते खाय ॥

(सवैया)- जो शुभ बानी बसै बिधि संग सदा शिव अंग
लसै सु भवानी । जो कमला कमलापति के संग 'देव' सचीश

सची सुखदानी । दीपशिखाब्रज मंदिर सुंदर जागति जोति सबै
जग जानी । साधु की साधिका सिद्धि समाधिका सो ब्रजराज
की राधिका रानी ।

सूचना-दो०-वाचक शब्द कहूं कहूं लोप करें कविराय ।

अर्थ गौर करि कीजिये निदर्शना दरसाय ॥

यथा-दो०-साहन सों रन मांड़िवो कीबो सुकवि निहाल ।

सिव सरजा को ख्याल है औरन को जंजाल ॥

अर्थात् जो शिवाजी के लिये एक खेल के समान है, वही
औरों के लिये महा कठिन काम है ।

पुनः-मीठे बचन उदार के सोने माहि सुगंध ।

अर्थात् उदार में मधुर भाषण गुण का होना ही सोने में
सुगंध का होना है ।

सवैया-अति खीन मृणाल के तारहु ते तेहि ऊपर पाँवें दें
आवनो है । सुई बेइ को बेधि सकै न तहाँ परतीत को टाँड़ो
लदावनो है । कविबोधा अनी घनी नेत्रहु की चढ़ि तापैन चिस
डगावनो है । यह प्रेम को पथ करार है री तरवार की धार
को धावनो है ।

२-(दूसरी निदर्शना)

दो०-थापिय गुण उपमान को उपमेयहि के अंग ।

ताकहँ द्वितिय निदर्शना कहिये सुमति उतंग ॥

(यथा)

दो०-जब कर गहत कमान सर देत अरिन को भीति ।

भाउसिंह में पाइये सब अरजुन की रीति ।

लीन्हों तेरे करन नृप करन-करन की रीति ।

पायन अंगद की वह लई रीति करि प्रीति ।

अस कहि फिरि चितये तेहि ओरा । सिय मुखससिभयेनैनचक्रोरा

३-(तीसरी निदर्शना)

दो०-थापिय गुण उपमेय को उपमानहि के अंग ।

ताकहँ त्रितय निदर्शना कहिये सुमति उत्तंग ॥

सचैया-आनन ओज अमंद प्रमान कलाधर में वही छाँह परी है ।

बंक बिलोचन की लछिराम प्रकाशक लालिमा कंज करी है ।

मौज महातम की महिमा किल कल्पलता परतीति धरी है ।

गौर गँभीरता श्रीरघुनाथ की छीर समुद्र के बीच भरी है ।

पुनः-नैकुहँसी सो भई नखतावली मालती कुंदजुहीन पै दाया ।

वैन कहैते भये वे सुधागति सों भई हंसन की सुचिकाया ।

जोति के भूषणपोतसे लागत यों 'गुरुदत्त' करी बिधिमाया ।

चंद भयो मुखको प्रतिबिंब उदैभई चांदनी अंगकी छाया ।

पुनः-(कावत्त)

कीरति सहित जो प्रताप सरजा में बर मारतंड मध्य तेज
चांदनी सो जानी मैं । सोहत उदारता औ सीलता खुमान में
सो कंचन में मृदुता सुगंधता बखानी मैं । भूषण भनत सब
हिन्दुन के भाग फिरे चढ़े ते कुमनि चकता ह्व की पेसानी में ।
सोहत सुबेस दान कीरति सिवा में सोई निरखी अनूप रुचि
मोतिन के पानी में । पुनः—

दो०-तुव बचन की मधुरता रही सुधा मँहँ छाया ।

चारु चमक चल नैन की मीनन लई छिनाय ॥

४-(चौथी निदर्शना)

दो०-अपने सद ब्यौहार तें औरहिं सिखवै ज्ञान ।

सो सद अर्थ निदर्शना मानैं सब बुधिमान ॥

(यथा)

दो०-गुरुपादोदक सिर धरिय सदा जतावत एहु ।

सिर धारत हैं गंग को महादेव करि नेहु ॥

उदय होत ही जगत को हरत तपनि दुख दंद ।

सब ही को सुख दीजिये वढ़े बतावत चंद ॥

पत्र करहिय मुख चख समताई । पायकमल अहमिति नहि लाई ।

कीच बीच बसि अस सिखलावै । नमि जो चले ऊँच पद पावै ।

दौ सु फूल फल दल सुद्रुम यह उपदेशत ज्ञान ।

लहि सुख संपीत कीजिये आये को सनमान ॥

५-(पाचवीं निदर्शना)

दो०-असत क्रिया निज सों असत अर्थ जनावै कोय ।

पंचम असद निदर्शना तेहि भाषत सब कोय ॥

(यथा)

दो०-खोवत प्रान अजान जे करत कूर को संग ।

यहै सिखावत छोड़ि तन दीपक शिखा पतंग ॥

सो०-कच घुँघुरारे जोय, यहै जनावत दुरजनहिं ।

नितहू बंधन होय, तऊ न तजिये कुटिलता ॥

दो०-राजबिरोधी नसत है यौं जगको दरसात ।

चंद उदय तें तमानकर छिन छिन छीजत जात ॥

पदकंदुक सिखवत सर्वाहिं सहि सहि लात अघात ।

सार हीन संसार में लातन मार जात ।

सवैया—धूर धुरंटे चपेटे परे महि संग न कोऊ सहायक गांत है ।

भैया सगो भयो बैरी समै लहि बूडि गयो बलबाँह उदोत है ।

और कहा कहिये लछिरामजू सोई मिलैं कोउ बीजजोबोत है ।

तारा कहैं मुसल बालि निहारिकै रामन जाने कोया फल होत है ।

(सूचना)

१-प्रतिवस्तुपमा में दोनों वाक्य स्वतंत्र होते हैं ।

२-दृष्टान्त और निदर्शना के दोनों वाक्य परस्पर अपेक्षित होने हैं, स्वतंत्र नहीं ।

३-दृष्टान्त में वाचक नहीं होता ।

४-निदर्शना में वाचक होता है ।

(२६)—व्यतिरेक

दो०—उपमा ते उपमेय में अधिक कछू गुण होय ।

व्यतिरेकालंकार तेहि कहैं सयाने लाय ॥

विवरण—जहां उपमान की अपेक्षा उपमेय में कुछ उत्कृष्टता कही जाय वहां यह अलंकार होता है । यह उत्कृष्टता दो प्रकार से प्रगट की जाती है:—

१-उपमेय में उपमान से कोई गुण अधिक कहा जाय ।

२-उपमान में कोई हानता दिखाई जाय ।

(पहले ढंग के उदाहरण)

१-मुख है अम्बुज सो सही मीठी बात विशेष ।

२-संत हृदय नवनीत समाना । कहा कविन पै कहत न जाना ।

निज परिताप द्रवै नवनीता । परदुख द्रवै सुसंत पुनीता ।

- ३-सखि वामें जगै छनजोति छटा इत पातपटा दिनरैन मड़ो ।
 वह नर कहूं बरसै सरसै यह तो रसजाल सदाहीं अड़ो ।
 वह स्वेत है जात अपानिप है यह रंग अलौकिक रूप गड़ो ।
 कह 'दास' बरोबरी कौन करै घन औ घनश्यामसौ बीनबड़ो ।
- ४-सिवराज साहिसुव सत्थ नित हय गय लखन संचरइ ।
 यक्य गयंद यक्य तुरंग किमि सुरपति सरवरि करइ ॥

(दूसरे ढंग के उदाहरण)

- १-जिनके यश प्रताप के आगे । ससि मलीन रवि सीतल लागे ।
 २-जन्म सिधु पुनि बंधु विष दिन मलीन सकलंक ।
 सिय मुख समता पाव किमि चंद बापुरो रंक ॥
- ३-घट्टै बढ़ै सकलंक लखि सब जग कहै ससंक ।
 सीय बदन सम है नहीं रंक मयंक एकंक ॥

(२७)-सहोक्ति

दो०--जहें मनरंजन वरनिये एक संग बहु बात ।
 सां सहोक्ति आभरण है ग्रन्थन में विख्यात ॥

(यथा)

जस प्रताप बीरता बढ़ाई । नाक पिनाकहि संग सिध्दाई ।
 पुनः--गहिकरतलमुनि पुलक सहित कौतुकहि उठायलियो ।
 नृपगण मुखन समेत नमित करि सजि सुख सबहि दियो ।
 आकरष्यो सिय मन समेत हर हरष्यो जनक हियो । भंज्यो
 भृगुपति गर्व सहित तिहुँ लोक विमोह कियो ।
 त्रिभुवन जय समेत वैदेही । बिनहि बिचार बरै हठि तेही ।

पुनः—(कवित्त)

जनक निराशा, दुष्ट नृपन की आशा, दुरजन की उदासी,
शोक रनिवास मनु के । बीरन के गरब गरूर भरपूर सब, भ्रम
मोह आदि मुनि कौशिक के तनु के । ' हरिचंद ' भय देव मन
के, पुहुमि भार, विकल विचार सबै पुरनारी जनु के । शंका
मिथिलेश की, सिया के उग्रशूल सबै तोरि डारे रामचन्द्र साथै
हरधनु के ।

सूचना—संग, सहित समेत, साथ, एकै साथ इत्यादि या इसी अर्थ के
अन्य शब्द इस अलंकार के बाचक हैं ।

(२८)—विनोक्ति

दो०—द्वे विधि कहैं विनोक्ति को सुकवि वृद्धि के ऐन ।

प्रस्तुत कछु विन न्यून अरु कछु विन शोभा दैन ॥

(प्रथम विनोक्ति)

कछु वस्तु विन बरनिये वर्णनीय जहँ हीन ।

(यथा)

राम सुरूप निधान को रूप प्रकाशक पंचवटी न अमान है ।
लखनमैथिली साथ जऊ रिपुदौत भरतथ बिना न सोहात है ।

दो०—कवि विन नहिँ सौहै सभा निशि विनु सुधानिवास ।

फबत न गिरिधरदास विनु गिरिधर 'गिरिधर-दास' ।
जिय विन देह नदी विनु बारी । तैसइ नाथ पुरुष विनु, नारी ।

पुनः—जिमि भानु विनु दिन, प्राण विनु तनु, चन्द्र विनु
जिमि जाहिनी । तिमि अवध तुलसीदास प्रभु विनु समुझिरी
जिय भामिनी ।

अस जिय जानि भजहि जे आना । ते नर पशु बिनु पूंछविषाना ।

(द्वितीय विनोक्ति)

वर्णनीय वर्णत जहां कछू बस्तु बिनु रम्य ।

(यथा)

भली प्रीति बिन कपट की देत सबहिं चित चैन ।

पुनः—कैसे नीके लगत ये बिनु सकोच के बैन ॥

सो०—बिनु कठोरता अम्ब, लसन रावरे के चरण ।

सब जगके अवलंब, वसत साधु जन के हिये ॥

(मिश्रित)

(द्वितीय)—त्रास बिना सोहत सुभट, जैसे मणि गणमान ।

(प्रथम)—दान बिना सोहत नहीं नृप जिमि द्विरद विशाल ॥

(१) = (५) दक्षिण (४) गजमद ।

(ध्वनि से)

(प्रथम)—बड़े दृगन को फल कहा जो न लख्यो हरिरूप ।

थिक श्रवणन जो नहिं सुने प्रभुके चरित अनूप ।

अर्थात् बिना हृदिदर्शन नेत्र और बिना हरिकथा सुने कान शोभा नहीं पाते ।

(२६)—समासोक्ति

दो०—जहँ प्रस्तुत में होत है अप्रस्तुत को भान ।

समासोक्ति तेहि कहत हैं कवि जन परम सुजान ॥

* इस श्लोकार को अंगरेजी में ' माडेल्मेटेकर ' Model Metaphor कहते हैं ।

कवि इच्छा जेहि कथन की 'प्रस्तुत' ताको जानु ।

अनचाहे हूं फुरि परै 'अप्रस्तुत' सो मानु ॥

बिबरण—जब किसी कथन में कविइच्छित अर्थ के अलावा (शब्दों की गंभीर गठन के कारण) कोई दूसरा अर्थ भी भासमान होता है तब उस कथन में समासोक्ति अलंकार माना जाता है । ऐसे कथन में बहुधा ऐसे श्लिष्ट शब्द अनायास आ जाते हैं, जिससे दूसरे अर्थ का भान होने लगता है । परन्तु यह ज़रूरी नहीं है कि श्लिष्ट शब्दों ही द्वारा यह अलंकार सिद्ध होसकै । अश्लिष्ट शब्दों से भी काम चल सकता है ।

(अश्लिष्ट शब्दों द्वारा)

१—लोचन मगु रामहि उर आनी । दीन्हें पलक कपाटसयानी
इसमें कवि इच्छित अर्थ के अलावा यह भी भासित होता है कि किसी चंचल व्यक्ति को बाँधुवा : बनाने के व्यवहार में क़िवाड़ो को बंद कर देना होता है ।

२—"कुमुदिन हूँ प्रमुदिन भई साँझ कलानिधि जोय" ।

इसमें कविइच्छित अर्थ तो यह है कि ' संध्या समय में चंद्रमा को देखकर कुमोदिनी फूली । परंतु इससे किसी नायिका की दशा की भी सूचना मिलती है ।

(श्लिष्ट शब्दों द्वारा)

१—बड़ोडील लाखि पील को सबन तज्यो बन थान ।

धनि सरजा तू जगत में ताको हय्यो गुमान ॥

इस में 'सरजा' शब्द श्लिष्ट है । इसका अर्थ है (१) सिंह और (२) शिवाजी का एक खिताब होने के कारण स्वयं शिवाजी ।

कवि की इच्छा सिंह वर्णन की है। परन्तु 'सरजा' शब्द श्लिष्ट होने के कारण इसमें शिवाजी और औरंगजेब के व्यौहार का भी भान होता है।

२-तुही सांच द्विजराज है तेरी कला प्रमान ।

तो पै शिव किरपा करी जानत सकल जहान ॥

इसमें कवि का इच्छित तात्पर्य तो चंद्रमा की प्रशंसा है, परन्तु 'द्विजराज' और 'शिव' शब्द श्लिष्ट होने से भूषण कवि और शिवाजी के व्यवहार का भान होता है।

३- 'भूषण' जो करत न जाने विनु घोर शोर भूलि गये आपनी उँचाई लखे कद की। खोइहौ प्रबल मदगल गजराज एक सरजा सों बैर कै बड़ाई निज मद की ॥

यहां भी कवि इच्छा हाथी के वर्णन की है, परन्तु पहले उदाहरण की तरह इसमें भी शिवाजी और औरंगजेब के व्यौहार का भान होता है।

४- लता नवल तनु अंग, जाति जरी जीवन बिना ।

कहा सिरियो यह ढंग तरुण अरुण निरदै निरखु ॥

इस सारठा में दोपहर के प्रचंड तापयुक्त सूर्य के तेज से किसी नाजुक लता के सूख जाने का वर्णन है, परन्तु गौर करने से किसी बिरहिनी नायिका की दशा का भी भान होता है।

५-जीवन के दानि हो सुजान हो सरस अति जगत के जीवन को आनंद उमाहे हो। सुजस को पाओ पर स्वारथ को धाओ धरा तपनि मिटाइवे की मति अवगाहे हो ॥ 'गोकुल' कहत इन्हें भास रावरे की है जू प्यास इनकी न मेदि देत कहो काहे हो। गरजि घुमरि घनश्याम क्यों बरावत हो कछु घातकीन हू को अपराध चाहे हो।

इस में कवि की इच्छा बादल और छातकियों के वर्णन की है, परंतु तनक ही गौर करने से इसमें कृष्ण और गोपियों के व्योहार का भान मिलता है ।

(इसी प्रकार और भी समझ लेना चाहिये)

मृचना—(श्लेष और समासोक्ति का भेद)

१ श्लेष में सबही अर्थ प्रस्तुत समझे जाते हैं ।

२ समासोक्ति में प्रस्तुत में अप्रस्तुत का भान सा होता है ।

(३०)—परिकर *

दो०—अभिप्राय जहाँ क्रिया को सुविशेषण में होय ।

अलंकार परिकर तहाँ बगनत हैं कवि लाय ॥

बिबरण—जहाँ कोई ऐसा विशेषण लाया जाय जो उस पद की क्रिया से संबंध रखता हो ।

(यथा)

१—जामो न नेकु व्यथा परकी बलिहारी तऊ पे सुजान कहाव ।

२—भाल में जाके सुधाधर हैं वहै साहेबताप हमारो हरैगो ।
अंग है जाको बिभूति भरो वहै भौन में संपति भूरि भरैगो ।
घोतक है जो मनोभव को जग पातक वाही के जोर जरैगो ॥
'दास'जू सीस पे गंग लिये रहै ताको कृपा कहो को न तरैगो ॥

३—चक्रपाणि हरि को निरखि असुर जात भाजि दुरि ।

रस वरसत घनश्याम तुम ताप हरत मुद पूरि ॥

४—शीतल करैंगे मेटि ताप त्रिभुवन राम श्याम घन बरन
बरसि दान धारा को ।

* इस अलंकार को फागसी तथा उर्दू में 'मनअत इश्तकाक' कह सकते हैं ।

(३१)—परिकरांकुर *

दो०—अभिप्राय जहँ किया को है विशेष्य पद माहिं ।

सुकवि सकल बरनन करैं परिकर अंकुर ताहिं ॥

(यथा)

१—रतनाकर बासी रमा प्रानन को आधार ।

हरि कुवेरपति रावरो हरैं रोग विकरार ॥

२—बदन मयंक ताप त्रय मोचन ।

३—सुनहु बिनय मम बिटप अशोका । सत्यनाम करुहरुममशोका ।

४—धरनिसुता धीरज धरेउ समय सुधर्म विचारि ।

५—हे हरि कस न हरहु भ्रम भारी ॥

६—जम करि मुँह तरहहि पन्यौ यह धरहरि चित लाय ।

विषय तृषा परिहरि अजौ नरहरि के गुण गाय ॥

यहां ' नरहरि ' शब्द साभिप्राय है । जमराज को हाथी (करि) माना तो हाथी को नारने के लिये नरहरि (नृसिंह) समर्थ है ।

७—हृषीकेश सुनि नाउँ जाउँ बालि अति भरोस जिय मोरे ।

तुलसिदास इन्द्रियसंभव दुख हरे बनिहि प्रभु तोरे ॥

८—तुलसिदास भवब्याल प्रसित तवशरणउरगरिपुगामी ।

' हृषीकेश ' और ' उरगरिपुगामी ' संज्ञायें साभिप्राय हैं, क्योंकि हृषीकेश (हृषीक + ईश = इन्द्रियों का मालिक) ही इन्द्रियसंभव दुख दूर कर सकता है, और उरगरिपुगामी (गरुड़ पर सवार होनेवाला) ही ' भव व्याल ' से रक्षा कर सकता है ।

* इस कलकार को भी फारसी तथा उर्दू में "अनसूत इश्तकाक" कह सकते हैं ।

(३२)—श्लेष *

दो०—दोय तीन अरु भाँति बहु आनत जामें अर्थ ।

श्लेष नाम ताको कहत जिनकी बुद्धि समर्थ ॥

सूचना—इस अलंकार के कुछ उदाहरण और विविध शब्दालंकार आले वर्णन में देखो ।

(कुछ उदाहरण)

१—द्विजतिय तारक पूतनामारण में अति धीर ।

काकोदर को दरपहर जय यदुपति रघुवीरें ॥

२—सगुन सभूषण सुभ सगस सुबरन सुपद सराग ।

इमि कवि आ अरु कामिनी लहे जु सो बड़ भाग ॥

३—सुंदर सोहै सुगंधित अंग अभंग अनंग कला ललिता है ।

तैसी 'किसोर' सोहात सुयोगिन भोगिन हूं को मनोहरता है ॥

संग अली अवली रव राजत अंग रसीलो बसी करता है ।

कोमलता युत बीर बसंत की बैहर की बनिता कि लता है ॥

४—ढरै मधुमाधुरी पराग सुबर बसनी सरस सलोनी पाप
तापन के अन्त की । कामना जुगति की उकुति सरसावत सी
छावै मधुराई कल कोकिल के भन्त की ॥ गोकुल कहत भरी
गुनन गँभीर सीरी कानन लौ आवति पियूष ऐसे बन्त की ।
ऐसी सुखदानी है न जानी जगत में और कविन की बानी बर
बैहर बसन्त की ॥

५—पानिप के आगर सराहैं सब नागर कहत 'दास' कोश में
लख्यो प्रकाशमान में । रज के संयोगतें अमल होत जब तब हरि
हितकारी बास जाहिर जहान में ॥ श्री को भाय सइजै करत

* सूचना—इस अलंकार को फारसी और उर्दू में 'इहाम' कहते हैं ।

मनकाम थकै बरनत बानी जा दलन के बिधान में । एतो गुण देखो राम साहिब सुजान में कि बारिज बिहान में कि कीमत रुपान में ॥

सूचना-स्मरण रखना चाहिये कि अर्थ श्लेष अलंकार में बहुधा संदेशा-लंकार वा विकल्पालंकार से सहायता ली जाती है, परन्तु मुख्यता श्लेषकी होती है इसलिये वही माना जाता है। उदाहरण नं० ३, ४, ५ में देखो और समझो।

सूचना-वाच हरिश्चन्द्रजी ने अपने 'सत्यहरिश्चन्द्र' नाटक में एक दोहा कहा है जो शिव, राजा, कवि, कृष्ण और चन्द्रमा इन पाँचों पर घटित हो सकता है, और सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र पर भी लगता है। दोहा यह है।

दोहा-सत्यासक्त दयाल द्विज प्रिय अघट्टर सुख कंद ।

जनहित कमला तजन जय शिव, नृप, कवि, हरि, चंद्र ॥

(३३) अप्रस्तुत प्रशंसा *

दो०-अप्रस्तुत वर्णन विषे प्रस्तुत वरणो जाय ।

अप्रस्तुत परसंस तेहि कहैं कविन के राय ॥

बिवरण-जिस विषय को कहना हो, उसे स्पष्ट शब्दों में न कहकर इस ढंग से कहैं कि वह असली बात लक्षित होजाय, वहाँ यह अलंकार कहा जायगा। ऐसा कथन पांच प्रकार से हो सकता है।

दो०-कारज मिस कारण कथन, कारण के मिस कांज ।

कहुं सामान्य विशेष है होत ऐसही साज ॥

कहुं सरिसै सिर डारि कै कहै सरिसों बात ।

* इस अलंकार को अंगरेजी में 'मेटानोमी' (Metonymy) कह सकते हैं ।

अप्रस्तुत परसंस के पंच भेद अवदात ।

(१)—कारज मिस कारण कथन—कारज निबंधना—अर्थात् इष्ट तो है कारण का कथन, पर उसे सीधे शब्दों में न कह कर उसके कार्य का कथन करके वह कारण जनाया जाय ।

यथा:—

दो०—मातु पितहिं जानि शोच बसि करसि महीप किशोर ।

यहां परशुरामजी का असल मतलब तो यह कहने का है कि “मैं तुम्हीं मार डालूंगा” पर ऐसा न कहकर कहते हैं कि हे राज-कुमार ! “तू अपने माता पिता को चोशवश मत कर” । ‘किसी का मारा जाना’ यह कारण है, और उसके ‘माता पिता का शोच वश होना’ यह कार्य है । सो कार्य कहकर कारण जताते हैं ।

पुनः—

राधिका के अँसुवान को सागर बाढ़त जात मनो नभ छै है ।
बात कहा कहिये ब्रज की अब बूड़ोई छै है कि बूड़त छै है ॥

इसमें अध्रसागर का बढ़ना और ब्रज का बूड़ना जो कार्य रूप है सो कहा, पर असल कारण ‘विरह की अधिकता’ साफ शब्दों में न कही । इससे यहां भी कारज मिस कारण का कथन है ।

दो०—गोपिन के अँसुवन भरी सदा असोष अपार ।

डगर डगर नै है रही बगर बगर के बार ॥

पुनः—“ राधे को बनाय विधि धोये हाथ ताका रंग जमि भयो चंद हाथ भारे भये तारे हैं ” ।

यहां भी धोवन से चंद और तारों का होना जो कारुरूप है कहकर राधिका जी की ‘अत्यन्त सुन्दरता’ जो कारण है जताई गई है ।

पुनः—दो०—तव पदनखकी दुति कछुक धोय गई जल साथ ।

तेहि कारण मिलि दधि मथत चंद्र भयो है नाथ ।

यहां भी धोवन से चंद्रमा का होना जो कारजरूप है वर्णन करके श्रीकृष्ण के पदनख की 'महान छटा' जो 'कारणरूप' है सूचित की गई है ।

(२)—कारण के मिस काज—कारण निबंधना—अर्थात् जहां कार्य तो कहना हो, पर कहा जाय कारण । जैसे:—

कोउकहजबविधिरतिमुखकीन्हा । सारभाग शशिकरहरलीन्हा ।
छिद्र सो प्रगट इंदु उर माहीं । तेहि मग देखिय नभ परछाहीं ।

यहां रतिमुख की अत्यंत सुन्दरता—जो कार्यरूप है—न कहकर उसका कारण—(चन्द्रमा का सारभाग) कथन किया गया है । यही कारण मिस कार्य का कथन है । पुनः—

दो०—लीन्हों राधा मुख रचन बिधि ने सार तमाम ।

तेहि मग होय अकाश यह शशि में दीखत श्याम ॥

सवैया—जोतिके गंज में आधो बराय बिरंचि रची बृषभानु दुलारी । आधो रह्यौ फिर ताहू में आधो लै सूरज चंद्र प्रभान में डारी । 'दास' द्वै भाग किये उबरे के तरैयन में छबि एक की सारी । एक ही भाग ते तीनहुं लोक की रूपवती युवतीन सँवारी ।

राधे के अंग गोराई सी और गोराई बिरंचि बनावन लीनी । कै सत बुद्धि विवेक सों एक अनेक विचारन में मति दीनी ।
बानिक तैसी बनी न बनावत 'केशव' प्रस्तुत है गई हीनी ।
लै तब केसरि, केतकि, कंचन, चंपक, केदलि, दामिनि कीनी ।

इन सब कथनों से, जो कारणरूप हैं, 'राधा के मुख की अत्यन्त छबि' जो कार्य रूप है प्रगट होती है । इसलिये ये सब कारण मिस कार्य का कथन है ।

'गर्भन के अर्भक दलन परशु मोर अति घोर' । यहां भी

परशुराम ने कारणरूप परशु का वर्णन करके मारणरूप कार्य को सूचित किया है। ऐसा ही यह भी।

तदपि कठिन दशकंठ सुनु छत्रिजात कर रोष ।

(३)-सामान्य मिस विशेष का कथन-सामान्यनिबंधना-जहां कोई सामान्य सी बात कहके विशेष का तात्पर्य जताया जाता है। यथा:—

सूपनखा की गति तुम देखी। तदपि हृदय नहिं लाज विशंपी ।

इस कथन में 'सूपनखा की दशा' सामान्य रीति से कह कर यह प्रस्तुत जताया गया कि तुम्हें रामचंद्र के समान सबल पुरुष से बैर न करना चाहिये।

दो०—धरै न मन में शोच जे, बैर प्रबल सों ठनि ।

मोहत आगि लगाय ते सदन माँझ पट तानि ॥

पुनः बड़े प्रबल सों बैर करि करत न सोच विचार ।

ते मोहत बारूद पर पट में बाँधि अँगार ।

ऊपर के इन दोनों दाहों में कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति का किसी विशेष सबल पुरुष से बैर करने की मनाही करना चाहता है, पर उस विशेष पुरुष का नाम न लेकर सामान्य भाव से एक साधारण बात कहता है।

(४)-विशेष मिस सामान्य का कथन-विशेष निबंधना ।

(यथा)

सवैया—'दास'परस्परप्रेम लखोगुणछोरकोनीर मिलेसरसातु है।

नीरै बेचावत आपने मोल जहांजहांजायकैछोरबिकातु है ।

पावक जारन छोरै लगै तब नीर जरावत आपनो गासु है ।

नीर की पीरनिवारन कारन छोर घरीही घरी उफनातु है ।

यहां जो छोर और नीरकी प्रीति का वर्णन किया गया है सो

अप्रस्तुत है अर्थात् कवि का प्रयोजन छीर नीर की प्रीतिकेवर्णन से नहीं है, वरन यह विशेष उदाहरण देकर प्रस्तुत बात यह सूचित करता है कि सब लोगोंको प्रीति ऐसी ही चाहिए।

पुनः—दो०—धन्य शेष सिर जगत हित धारत भुवि को भार ।

बुरो बाघ अपराध बिन मृग को डारत मार ॥

इसमें शेष और बाघकेअप्रस्तुत वर्णनसे यह प्रस्तुत जताया गया कि, बड़े होकर सबका भार अपने सिर लेना अच्छा काम है और सशक्त होकर निरपराधों को सताना बुरा काम है ॥

पुनः—दो०—निज मंडल मधि राखि मृग मृगलाछन भो चंद ।

मृगपति भो मृग मारि कै सिंह सु सदा स्वच्छंद ॥

इस दोहे में चन्द्रमा और सिंह के विशेष उदाहरणोंसे यह सूचित किया गया कि अयोग्य को साथ रखने से कलंक लगना है और उसको विनष्ट कर देने से प्रशंसा होती है ।

दो०—काटि लेत तरु वाड़ई सूधे सूधे जोय ।

वन में बाँके वृक्ष को काटत है नहिं जोय ॥

इस दोहा के विशेष उदाहरण से सामान्यतया यह प्रस्तुत निकलता है कि सीधेपन से दुख होता है और कुटिल लोगोंको सताने की कोई इच्छा ही नहीं करता ।

(५)—सरिस के सिर डारि कै सरिस से बात कहना । *

(इसी को सारूप्य निबंधना और अन्योक्ति भी कहते हैं)

दो०—भयो सरितपति सलिलपति अरु रतनन की खानि ।

कहा बड़ाई समुंद की जु पै न पीजत पानि ॥

यहां समुद्र पर डार कर यह बात किसी ऐसे धनी के

* दो०—औरो एक पिछान है मानि लेहु परतीत ।

समासोक्ति भूषण जू है ताको यह विपरीत ॥

लिये कही गई है, जो धनी तो बहुत बड़ा है, परंतु उससे किसी को कुछ सुख नहीं प्राप्त होता है। कवि की इच्छा (प्रस्तुत) यही है, समुद्र का वृत्तांत अप्रस्तुत है।

पुनः—“काल कराल परै कितनो पै मराल न ताकत तुच्छ तलैया” ।

यहां हंस पर ढार कर यह बात कही गई है कि बिबेकी पुरुष दुःख पाने पर भी अनुरक्त कार्य करने की ओर नहीं झुकते।

पुनः—मानससलिलसुधाप्रतिपाली। जियै किल वणपयोधि मराली नव गसाल बन बिहरन शीला। सोह कि कोलिल विपिन करोला

यहां हंसिनी और कोयल पर ढार कर यह जताया गया है कि सुकुमार और सुखभोगिनी स्त्रियां बनवास का कष्ट सहन नहीं कर सकतीं।

पुनः—

सुनु दशमुख खद्योत प्रकासा। कबहुं कि नलिनी करहिविकासा

यहां सीता जी कमलिनी पर ढार कर रावण से अपना वृत्त कहती हैं।

कवित्त

हारे बाटवारे जे बिचारे मंजलिन मारे दुखित महा रे तिन को न सुख तैं दियो। बनके जे पंछी तिनहूँ के काम को न कछू सांभ समै आय बिसराम उन ना लियो। आपनेहूँ तनकी न छाया करि सक्यौ मूढ़ ‘दयानिधि’ कहै जग जन्म ही वृथा गयो। घाम को न आड़ भयो फूल फल को न लाड़ परे ताड़ वृक्ष एतो बढ़िकै कहा कियो।

यहां भी अप्रस्तुत ताड़वृक्ष के वर्णन से किसी ऐसे बड़े मनुष्य का वर्णन प्रस्तुत है जिससे किसी को कुछ लाभ नहीं पहुँचता।

इसी अलंकार को लेकर गोसाईं 'दीनदयालगिरि' ने 'अभ्योक्तिकल्पद्रुम' नाम का एक छोटा सा ग्रंथ ही रच डाला है।

दो०—नहिं पावस ऋतुराज यह सुनु तरुवर मति भूल ।

अपत भये बिन पाइहै क्यों नव दल फल फूल ॥

स्वारथ सुकृत न श्रम वृथा देखु बिहंग विचारि ।

बाज पराये पानि पर तूं पंछीन न मारि ॥

(सूचना)

(अप्रस्तुतप्रशंसा, समाप्तोक्ति और पर्यायोक्ति का भेद)

१—अप्रस्तुतप्रशंसा में अप्रस्तुत से प्रस्तुत का ज्ञान होता है ।

२—समाप्तोक्ति में प्रस्तुत वर्णन से किसी अप्रस्तुत का भी भान होता है।

३—पर्यायोक्ति में प्रस्तुत का कथन कुछ घुमाफिरा कर किया जाता है, सीधे सीधे नहीं, उसमें अप्रस्तुत का कोई आभास नहीं होता ।

(३४) प्रस्तुतांकुर

दो०—प्रस्तुत में प्रस्तुत जहां प्रगटत अंकुर न्याय ।

प्रस्तुत अंकुर कहैं तेहि बुद्धिमान कविराय ॥

बिवरण—जब कोई बात इस प्रकार कही जाती है कि जिस से कही जाय और एक दूसरा व्यक्ति जिसको सुनाकर कही जाय दोनों को लाभ पहुँचै, तब यह अलंकार होता है । कहने वाले का तात्पर्य (प्रस्तुत) दोनों से कथन करने का होता है । एक से तो प्रत्यक्ष कहता है, और दूसरे को सुनाने का तात्पर्य होता है । इसप्रकार मानो प्रस्तुत में से एक अंकुर निकलता है । प्रस्तुत बात एक के लिये होती है और वह अंकुरवत् निकली हुई (प्रस्तुत) बात दूसरे के लिये । दूसरे को सुनाकर दूसरे प्रांत जो उपालंभ या उपदेश दिया जाता है उस कथन में यह अलंकार अवश्य होता है । यथा—

दो०—सीत बात आतप सही राखि तेरिये आस ।

तऊ पपीहा की जलद तैं न बुझाई प्यास ॥

यहां 'जलद' से तो प्रत्यक्ष ही कथन है, परन्तु कहनेवाले का तात्पर्य एक अन्य जनको सुनाने का भी है जिससे वह कुछ आशा रखता था ।

दो०—अलि कदंब तरु पाय, सुमन भरो मकरंद मय ।

तजि करील पै जाय निरस अपत परसे कहा ॥

यहां प्रत्यक्ष कथन भौरे से और सुनाना एक ऐसे व्यक्तिको है जो सर्वांगसुन्दर वस्तु पाकर भी एक निरस वस्तु पर प्रेम रखता है ।

मूचना—यह अलंकार गूढ़ोक्ति से मिलता जुड़ता है । दोनों का भेद 'गूढ़ोक्ति' की मूचना में दिखलाया गया है । (देखा पृष्ठ २१०)

(सवैया)

दल देखो नहीं अस जाड़ो बड़। अब घाम घनो जल क्यों हरिहै ।
कहि 'केशव' वान बहै, दिन दाव दहै, धर धीरज क्यों धरिहै ॥
फछिहै फुलि नाहि कि तौलों तुही कहि तो पहं भूख सही परिहै ।
कछु छांह नहीं सुख सोभ नहीं रहि कीर करीर कहा करिहै ॥

यहां कीर प्रति तो प्रगट कथन है, पर सुनाना है एक ऐसे व्यक्तिको जो एक धनधान्यसम्पन्न पुरुष को छोड़कर (करील वृक्ष समान पत्ररहित) एक निर्धन मनुष्य का आश्रय लेना चाहता है ।

पुनः—निपट कठोर घोर कंटकन पूखो तन मूढ़ मन महा
कहा गूढ़ गुन गावैगो । कहै रघुनाथ ताते आपनो बगारो चेत
हेत मत करै जानिही में सोख छावैगो । गंध को न लोस मकरंद
की न बूंद यामें छाया हू न सुखद संताप तम तावैगो । साहेब

सुजान अलि मेरी कही मान पर अपत करील सेये नू न
सुख पावैगो ॥

(३५)—पर्यायोक्ति *

दो०—परयायोक्ति प्रकार द्वै कुछ रचना सों बात ।

मिस करि कारज साधिये जो हित चितहि सोहात ॥

(१)—“कुछ रचनासों बात”—जो बात कहना हो उसे सीधे शब्दों में न कहकर कुछ घुमा फिरा कर कहना । (कोई- इस अलंकार में व्यंग मुख्य मानते हैं, परन्तु हम ऐसा नहीं मानते) जैसे:—कहना हो कि ‘अमुक व्यक्ति मर गया’ । इस बात को इन्हीं शब्दों में न कहकर यों कहें कि “अमुक व्यक्ति को सुरराज ने अपने पास बोला लिया” यह पर्यायोक्ति है ।

सांघे यह न कहकर कि “भार्जसह हरिभक्त है” मति-
रामजी कहते हैं:—

दो०—जाके लोचन करत हैं कुवलय कंज प्रकास ।

सो भाऊ भूपाल के करत हिये में वास ॥

पुनः—कत भटकत गावत न क्यों वाही के गुणगाथ ।

जाके लोचन ही किये बिन बलयनि रति हाथ ॥

यहां स्पष्ट शब्दों में यह न कहकर कि ‘शङ्कर का भजन कर, यों कहा कि क्यों भटकता फिरता है, उसी के गुणगाथ क्यों नहीं गाता, जिसके नेत्रों ने रति के हाथों को बिना कंकण के कर दिया (अर्थात् काम को जलाकर रति को विधवा कर दिया था ।

* इस अलंकार को अङ्गरेजी में ‘पेरिफ्रेसिस’ (Periphrasis) कहते हैं ।

पुनः-दो०-सीता हरन तात जनि कहेउ पिता सन जाय ।

जो मैं राम तो कुल सहित कहहि दशानन आय ॥

इस में राम जी ने सीधे शब्दों में यह न कहकर कि “ मैं रावण को मारूंगा ” इसप्रकार कहा जैसा कि दोहे के उत्तरार्द्ध से प्रगट है ।

(२) “मिस करि कारज साधिये” जहां किसी बहाने से इच्छित कार्य के साधन का वर्णन हो, यह दूसरी पर्यायोक्ति होगी । यथानाथ लखन पुर देखन चहहीं । प्रभु सकोच डर प्रगट न कहहीं ॥ जो राउर अनुसासन पाऊं । नगर दिखाय तुरत लै आऊं ॥

यहां स्वयं राम जी को जनकपुर देखने की इच्छा थी, पर लक्ष्मण की इच्छा का बहाना करके आज्ञा मांगते हैं । पुनः—
दो०—देखन मिस मृग बिहंग तरु फिरै बहोरि बहोरि ।

निरखि निरखि रघुबीर छबि बाढ़ै प्रीति न थोरि ॥
पुर बालक कहि कहि मृदु बचना । सादर प्रभुहि दिखावहिरचना ।
दो०—सब शिशु यहि मिस प्रेम बश परसि मनोहर गात ।

तनु पुलकहिं अति हर्ष हिय देखि देखि दोउ भ्रात ॥
पुनः—पूसमास मुनि सखिन सन साई चलत सवार ।

लै कर वीण प्रवीण तिय गायो राग मलार ॥

यहां मलार राग गाकर पानी बरसा देने से स्वामी का बिदेस-गमन रोक दिया । इस गाने के बहाने से इच्छित कार्य साधन किया ।

सूचना—इस अलंकार में मिस, व्यानादि शब्दों का कथन अनिवार्य नहीं है । चाहे कथन करे चाहे और प्रकार से करे । कैतवापन्हुति में एक वस्तु के छिगने के हेतु से मिस वा व्यान से दूसरी वस्तु प्रगट की जाती है, और इस अलंकार में किसी विशेष इच्छित कार्य साधन के लिये कोई युक्तियुक्त क्रिया की जाती है जिसे केवल मिस वा व्यान कहा जा सकता है ।

(३६)-व्याजस्तुति (द्विधा)

(प्रथम)

दो०-देखत तो निंदा लगे समुझे अस्तुति होय ।

व्याजस्तुति भूषण सवै ताहि कहैं कवि लोय ॥

दो०-कहा कहौ कहत न बनत सुरसरि तेरी रीति ।

ताके तू मूँड़े चढ़ै जो आवै करि प्रीति ॥

इससे देखने में तां गंगा की निंदा सो जान पड़ता है, पर समुझने से यों स्तुति होनी है कि जो प्रेम सहित तेरे पास आता है उसे तू महादेव बना देती हैं और फिर उसकी जटा में बैठ जाती है ।

पुनः-भसम जटा विष अहि सहित गंग किया ते मोहि ।

भोगी तें जोगी कियो कहा कहौ अब तोहि ॥

दोहा०-जमुना तुम अविवेकिनी कौन लियो यह ढंग ।

पापिन सों निज बंधु को मान करावत भंग ॥

(पद्माकरकृत गंगालहरी से)

जोग जप जागै छाँड़ि जाहु ना परागै भंश मेरी कही आँखिन के आगे सुतौ आवैगी । कहै पद्माकर न ऐहै काम सरसुना सांचहू कलिदी कान करन न पावैगो ॥ लैहै छोन अंबर दिग-बर के जोरावरी बैल पै चढ़ाय फेरि शैल पै चढ़ावैगो । मुंडन के माल की भुजंगन के जाल की सु गंगा गजखाल की खिलत पहिरावैगी ॥

एक महापातकी स्वगात को दशा त्रिलोकि देत यों उरा हनो सु आठहं पहर है । मोच समय तेरो उन बाप गयो कंठ इत व्यापि गयो कंठ कालकूट सो जहर है । आप चढ़ी शीश

मोहिं दीन्ही बकसीस औ हजार सीसचारे की लगाई अटहर
है । मोहि कर नंगा अंग अंगन भुजंगा बांधो परी मेरी गंगा
तेरो अद्गुन लहर है ।

बरवा-कुजनपान गुणवजिन अकुल अनाथ ।

कहूँ कृपानिधि राखर कस गुणगाथ ॥

सूचना-पद्माकरकृत 'गंगालहरी' में इस अलंकार के बहुत उत्तम
उदाहरण हैं। विनयपत्रिका में " बाबरो रावरो नाह भवानी " बाला पर
इसी अलंकार में कहा गया है ।

(दूसरी)

दो०-कीन्हे पर अस्तुति जहां परअस्तुति दरसाय ।

ताहू को ब्याजस्तुतै कहैं कविन के राय ॥

(यथा)

जासु दूत बल बरणि न जाई । तेहि आये पुग कौन भलाई ॥

यहां दूत की बड़ाई से दूत के मालिक (रामचंद्र) की
बड़ाई झलकती है ।

या बृन्दावन विपिन में बड़ भागी मम कान ।

जिन मुरली की तान सुनि किय हर्षित अँग आन ।

यहां कानों की बड़ाई से मुरली की अत्यन्त बड़ाई
प्रगट होती है ।

(३७) ब्याजनिंदा * (द्विधा)

(प्रथम)

दो०-अस्तुति कीन्हे हू जहां निंदा ही दरसाय ।

ताहिं ब्याजनिंदा कहैं कवि कोविद हरषाय ॥

* नोट-इस अलंकार को अंगरेजी में आयरनी (Irony) और
कारखी तथा छद्म में ' हनी मजाह ' कहते हैं ।

(यथा)

१-सेमर तू बड़ भाग है कहा सराबो जाय ।

पंखी करि फल आरा तोहि निस दिन सेवहि आय ॥

२-राम साधु तुम साधु सुजाना । राममातुतुमभलिपहिचाना ॥

३-धन्य कीश जो निज प्रभुकाजा । जहाँ तहाँ नाचहिपरिहरि लाजा॥
नाचि कृदि करि लांग रिभाई पति हिन करत कर्म निपुनाई ॥

४-‘ अहो मुनीश महाभटमानी ’

५-नाककान बिनु भगिनिनिहारो । क्षमा कीन्ह तुम धर्मविचारी॥
लाजवंत तुम सहज सुभाऊ । निजगुण निजमुख कहसिनकाऊ॥

(दूसरी)

औरै की निन्दा किये पर की निंदा होय ।

निंदा ब्याज तहाँ कहैं कवि कोबिद सब कोय ॥

(यथा)

दई निरदई सों भई ‘दास’ बड़ीयै भूल ।

कमलमुखी के जिन कियो हिय कठिनई अतूल ॥

यहाँ दई की निन्दा से कमलमुखी (नायिका) की निन्दा
झलकती है ।

दो०-जु हरि हमारो जीव निज ताहि चलयो लै दूर ।

को सो जो यहि कूर को धन्यो नाम अकूर ॥

यहाँ अकूर की निन्दा से नामकरण करनेवाले की भारी
निंदा प्रगट होती है ।

(३ =)-आक्षेप

दो०-कारज के आरंभ ही जहाँ कीजै प्रतिषेध ।

आक्षेपा तासों कहत तासु तीन हैं भेद ॥

उक्ताक्षेप सु प्रथम है दुतिय निषेधाक्षेप ।

तीजो सब कविजन कहैं सुन्दर व्यक्ताक्षेप ॥

विवरण—आक्षेप का अर्थ है 'बाधा' वा 'मुमानिबन्ध', अतः आक्षेपालंकार से मतलब है ऐसी क्रिया वा ऐसा कथन करना जिससे कार्य में बाधा डालने का तात्पर्य सिद्ध हो। इसके तीन भेद हैं।

१-(उक्ताक्षेप)

जहां कथित निज बात को समुक्ति करिय प्रतिषेध ।

उक्ताक्षेप तहां कहैं कविजन मतिउत्पेध ॥

जहां अपनी हां कही हुई प्रथम बात का निषेध करके दूसरी बात कहा जाय ।

(यथा)

१-तुव मुख बिमल प्रसन्न अति रहो कमल सो फूलि ।

नहिं नहिं, पूरन चन्द सो कमल कहाँ मैं भूलि ॥

२-प्रभु प्रसन्न है दीजिये स्वर्ग धाम को बास ।

अथवा याते फल कहा, करहु आपनो दास ॥

३-सानुज पठइय मोहि बन, कीजिय सर्वाहि सनाथ ।

नतरु फेरिये बंधु दोउ, नाथ चलौ मैं साथ ॥

सूचना-स्मरण रखना चाहिये कि इसमें निज कथित प्रथम बात का निषेध इमलिये किया जाना है कि दोबारा उससे बढ़कर बात कही जाय ।

२-(निषेधाक्षेप)

दो०-पहले करै निषेध जो फिर ठहरावै ताहि ।

कहत निषेधाक्षेप तेहि कविजन सकल सराहि ॥

बिबरण-पहले किसी बात से इनकार किया जाय फिर अन्य प्रकार से उसकी स्थापना कीजाय । यथा—

१-कबि न होउँ नहिं अतुर कहाऊं । मतिअनुरूप रामगुण गाऊं ।

२-वशमुख मैं न बर्साठा आयो । अस बिचारि रघुनाथ पठायो ।

३-मैं न मान मेरो चाहति कहति यहै उर धारि ।

४-सरजा सिवा पर पदावत मुहीम काज हजरत हम मरिखे ते नाहिं उरते । चाका हैं उज्जु किया न जाय नैक पै कलू दिन उबरते तो घने काज करने ।

५-मोहि न जानत हैं आप है यह मैं कवि हौं नहीं, काल हौ तेरा ।

३-(व्यक्ताक्षेप)

दो०-करिये की आज्ञा प्रगट छिप्यो निषेध जु होय ।

व्यक्ताक्षेप कहैं तहां कवि कोविद सब कोय ॥

(यथा)

दो०-राज देन कहि दीन बन मोहि न शाच लवलेश ।

तुमबिन भरनहिं भूपतिहिं प्रजहिं प्रचण्ड कलेश ॥

पुनः-सुख सों पीय सिधारिये पग पग होय कल्यान ।

हौं हूं जनमौगी तहां तब जेहि देश पयान ॥

क०-जो हौं कहौ रहिये ता प्रभुता प्रगट होत चलन कहौ तो हित हानि नाहिं सहजो । भाव सों करहु तो उदास भाव प्राणनाथ साथ ले चलहु कैसे लोकलाज बहनो । केशौराय की सौं तुम सुनहु छशीले लाल चले ही बनत जो पै नाही राज रहनो । तैसिये सिखाओ सीख तुमही सुजान पिय तुमहिं चलत मोहि जैसो कलू कहनो ।

(३६)—विरोधाभास *

दो०—द्रव्य क्रिया गुण जाति में भासत जहां विरोध ।

कहत विरोधाभास तेहि वृध जन सहित सुबोध ॥

बिबरण—जहाँ विरोधी पदार्थों का वर्णन किया जाय वह विरोधाभाव अलंकार है । ऐसा वर्णन वर्णनीय की विशेषता वा उत्कृष्टता जताने के लिये होता है । प्रस्तार करने से इसके दस भेद हो जाते हैं :—

त्रैसं :—

जाति का विरोध (१) जाति से (२) गुण से (३) क्रिया से (४) द्रव्य से ।

गुण का विरोध (१) गुण से (२) क्रिया से (३) द्रव्य से
क्रिया का विरोध (१) क्रिया से (२) द्रव्य से

द्रव्य का विरोध (१) द्रव्य से

सूचना—कुछ उदाहरण लिख देने हैं । पाठक स्वयं विचार करके कि क्रिया का किससे विरोध है ।

(सूरसागर से)

—चरण कमल बन्दों हरि राई ।

जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै अन्धे को सब कुछ दिखराई ।

बहिरो सुनै मृक पुनि बोलै रंक चलै सिर छत्र धराई ।

सूरदास स्वामी करुणामय बार बार बन्दों तेहि पाई ।

(रामायण से)

२—भरद्वाज सुनु जाहि जब होत विधाना बाम ।

* इस अलंकार की फारसी तथा उर्दू में “ मुइतामिलुल जिदन ” कहते हैं ।

- धूरि मेरु सम जम जनक ताहि ब्याल सम दाम ।
 ३-तृण ते कुलिश कुलिश तृण करई
 ४-गरल सुधा रिपु करै मिताई। गोपद सिन्धु अनल शितलाई
 गरुश्र सुमेर रेणु सम ताही। राम कृपा करि चितवहि जाही ।
 ५-पवन अचल गिरि रेणु पुनि जलधि नहीं गंभीर ।
 धरा अतिहि लघु होति है कृपा दृष्टि रघुबीर ॥

पुनः:-

- ६-भांकी रघुबीर की विलोकि कै अचेतन भे चेतन, अचेतनह
 चेतन भे देख्यौ आज ॥
 ७-सो अज प्रेम भगति बश कौशल्या की गोद ।
 ८-कुलिश कठोर कूर्म पीठि ते कठिन अति हठि न पिनाक
 काहू चपरि चढ़ायो है । तुलसी सो राम के सरोजपान
 पसंत ही दूटो मानो बारि ते पुरारि ही पढ़ायो है ।
 ९-वा मुख की मधुराई कहा कहौ मीठा लगै अँखियान लुनाई ।
 १०-लाल निहारे दूगन की कहौ रीति यह कौन ।
 जासों लागै पलक दूग लागै पलक पली न ॥
 ११-तंत्री नाद कवित्त रस सरस राग रति रंग ।
 अनबूड़े बूड़े तिरे जे बूड़े सब अंग ॥
 १२-कतो मिठास दयो दई इते सलोने रूप ।

सूचना- (१) यह अलंकार अद्भुत रस की कविता के लिये बड़े काम का है । (२) इसी से मिलता जुलता विषमालंकार का दूसरा भेद है । दोनों की पहचान भली भाँति कर लेनी चाहिये । दोनों में भेद यह है कि इस विरोधाभास में जो विरोध कथन किया जाता है वह केवल आभास मात्र (नितान्त भूँटा) है । विषमालंकार के दूसरे भेद में जो विरोध कहा जाता है वह सत्य होता है और केवल कार्यकारण के संबंध दी में कहा जाता है ।

(पांचवीं)

१-दो०-बरनत हेतु विरुद्ध ते उपजत है जहँ काज ।

सिय हिय शीतल भो लगे जरत लंक की भाँस ॥

२-आनन ऐन सुधाको हहा तेहिने इतनो बिपवैन बकै तू ।

३-तुव मुग्व रवि-बालातप जू मरुनायक जसवंत ।

अन्य नृपन के कर कमल युत संकोच करंत ॥

४-क्यों न उतपात होइ वैरिन के भुण्डल में कारे घन उमड़ि
अंगारे बरसत हैं ।

(छठवीं)

दो०-कारज सों जहँ होति है कारणा की उत्पत्ति ।

(यथा)

दो०-तुव कृपान ध्रुव भूम तें भयो प्रताप कृशानु ।

२-और नदी नदन तें कोकनद होउ तेरा कर कोकनद नदी
नद प्रगटन है ।

दो०-कर कलपद्रुम सों कयौ जस समुद्र उतपन्न ।

४-हाय उपाय न जाय कियो ब्रज बूझत है बिनु पावस पानी ।
धारन ते अँसुवान की है चवमीनन तें सरिता सरसाना ॥

(४१)-विशेषोक्ति

दो०-विद्यमान कारण बन्यो तऊ न फल जहँ होय ।

ताहि विशेषोक्ति कहैं कवि कोविद सब कोय ॥

(यथा)

१-हाथी हजारन के बल ' केशव ' खँचि थक पट को डर

डारे। द्रौपदी को दुहसासन पै तिल अंग तऊ उघसोन उघारे ॥

२-त्यों त्यों प्यासेई रहत ज्यों ज्यों पियत अघाय ।

मगुन सलोने रूप की जु न बख-नृषा बुझाय ॥

३-लिखन बैठ जाकी मबिहि गाहि गाहि गरब गरूर ।

भये न केते जगत के चतुर चितेर कूर ॥

४-दौलति इन्द्र सपान बढ़ी पै खुमान को नेक गुमान न आयो ।

५-लाग न उर उपदेश, जदपि कहौ शिव बार बहु ।

(४२)-असंभव

दो-अनहोनी सी बात कलु होय असंभव सोय ।

(यथा)

१-जोग सिखावन को हम को बहुखा तुम से उठि थावन पेहे ।

ऊधो नहीं हम जानती ताँ मनमोहन कृबरी हाथ बिकैहैं ॥

२-एसो कौन जानत हो ए हो कबि 'घुनाथ' बूझि बरी द्वै
लौं नरे पानी हो के लागैहैं । सीस पर चढ़ि आपु नाली दे
करत नृत्य नाथि काल काली कालीदह ते निकरिहैं ।

३-को जानै थो गोपसुत गिरि धारैगो आज ।

४-यह को जानत हो जु कपि जैहै लंका जारि ॥

५-जासों बैर करि भूप बचै ना दगंत ताके दंत तोरि तखन
तरे ते आयो सरजा ।

सूचना- 'कौन जानता था कि 'या इसी भाव के अन्य शब्द इस
अलङ्कार के सूचक है ।

(४३)-असंगति

कारण कारज को जहाँ लखौ विरोधाभास ।

ताहि असंगति जानिये कवि जन सहित हुलास ।

(असंगति अलंकार के तीन भेद)

(प्रथम)

दो०-कागण कहूँ कारज कहूँ देश काल को बीच ।

कहैं असंगति प्रथम तेहि कविजन बुद्धि अनीच ॥

(यथा)

१-सीतहि लै दसकंध गयो पै गयो है विचारो समुंदर बाँध्या ।

२-और करै अपराध कोउ और पाव फल भोग ।

अति विचित्र भगवंत गति को जग जानै जोग ॥

३-कोयल मदमाती भई झूमत अंबा मोर ।

४-महागज शिवराज चढ़त तुरंग पर श्रीवा जाति नै करि
गनीम अतिबल की । भूषन चलत सरजा की सेन भूमि
पर छानौ दरकत है खरी अखिल खल की । कियो दौरि
पाव उमगावन अमोरन प गई कटि नाक सिगरेई दिली
दल की । सूरज जराई कियो दाह पातसाह उर स्याही
जाय सब पातसाही मुख झलकी ।

(दूसरी)

दो०-और ठौर करनीय जो करै और ही ठौर ।

द्वितीय असंगति कहैं ताहि जे कविता सिरमौर ।

१-पहिर कंठ विच किंकिणी कस्यो कमर विच हार ।

२-पायन की सुधि भूलि गई ३-कुलाय महाउर आँखिन दीन्हों

(तीसरी)

दो०--काज कियो चाहत प्रथम तासों करै विरुद्ध ।

ताहि असंगति तीसरी बरनत जे मतिशुद्ध ॥

१-राज देन कहँ शुभ दिन साधा । कह्यो जान बन केहि अपराधा ॥

२-प्रगट भये घनस्याम तुम जग प्रतिपालन हेत ।

नाहक विथा बढ़ाय कै प्रेमिन के जिय लेत ॥

३-प्रगट भयो है जलद तू जग को जीवन दान ।

मेरो जीवन लेत है कौन बैर मन आन ।

४-मोह मिटावन हेत प्रभु लीन्हो तुम जनतार ।

उलटो मोहन रूप धरि माँगीं सब ब्रजनार ।

५-सर्वथा काज महाशत्रुराज बलीके यहँ बनि आवतहै लखतही ।

जात कह्यो न कहा कहिये 'रघुनाथ' कहँ रसना एक ऐही ।

साल रसाल तमालहि आदि दै जेतिक बृक्ष लता बन जेही ।

नौ दलकीबहि को प्रगट्यो पर कै पतझार दियो पहिलेही ॥

(४४)-विषम

(अनमिल वस्तुओं वा घटनाओं के वर्णन में
विषम अलंकार होता है)

(प्रथम)

अनमिल अनमिल वस्तु को वर्णन है जेहि ठौर ।

प्रथम विषम तेहि कहत हैं सकल सुकवि सिरमौर ॥

(यथा)

१-मैं कै बा बिनती कगे मान ठानि दुख दैन ।

- कहां मधुर मृदु मुख कहां कटिन काठ से बैन ।
 २-जोग कहां मुनिलोगन जोग कहां अबला गति है खपलासी ।
 श्याम कहां अभिराम सुरूप कुरूप कहां वह कूबार दासी ।
 ३-कहँ कुंभज कहँ सिन्धु अपारा ।
 ४-राजकुमार के कंज से पाणि कहां कहँ शंभुशरासन वज्रसो ।
 ५-कहाँ सीप मुक्ता कहाँ कहाँ कमल कहँ पंक ।
 कहँ कस्तूरी मृग कहाँ, विधि-बुधि है सकलंक ।
 ६-को कहि सके बड़ेन की लखे बड़ी हू भूल ।
 दीन्हे दर्ई गुलाब के इन डारन ये फूल ।
 ७-जेइविधितुमहिरूप अस दीन्हा । तेइ जड़बर बाउर कसकीन्हा ।
 कस कीन्ह बर बौराह जेइ विधि तुमहि सुंदरता दर्ई ।
 जो फल चाहिय सुरतराहिं सो बरवस बवूरहिं लागई ।
 ८-खारो कियो है पयोनिधि को पय कारो कियो पिकसो अनुमानो
 कंटक पेड़ गुलाब किये अरु चानक बारहु मास तृपानो ।
 पंक को अंक कियो है मयंक में आग कियो है चकोरको खानो
 'सागर मित' सब परखा कर हंसपती हरबाहन जानौ ।

(दूसरा) *

- दो०-कारण औरै रूप को कारज औरै रूप ।
 विषम अलंकृत दूसरो बरनत है कविभूष ।
 १-खड्ग असित जसवंत को प्रगट कस्यो जस सेत ।
 श्याम गौर दोउ मूरति लखिमन राम ।
 इनते भइ सित कीरति अति अभिराम ॥

* विष्णुसुखाचार के इस अंश को फारसी तथा उर्दू में "सनअल तजाद" कह सकते हैं ।

- २-उपजे जदपि पुलस्ति कल पावन अमल अनूप ।
तदपि महीसुर साप बस भये सकल अधरूप ॥
- ३-या अनुगामी चित्तकी गति समुझै नहिं कोय ।
ज्यों ज्यों बूढ़े श्याम रंग त्यों त्यों उज्ज्वल होय ॥
- ४-श्रीसरजा शिव तो जस सेत सों होत हैं वैरिन के मुँह कारे
भूषन तेरे अरुन प्रताप सपेद लखे कुनवा नृप सारे ।
- ५-भूषन भनत मदाबीर बलकन लाग्या सारी पातसाही के
उडाय गये जियरे । तमक ते लाल मुख सिवा को निरखि भये
स्याह मुन्न नोरैन सिपाह मुख पियरे ।

(तीसरा) *

- दो०-और भलो उद्यम किये होत बुरो फल आय ।
ताहि विषम तीजा कहत बुद्धिबंत कविराय ।
- १-शीतलसिख दाढ़क भइ कैसे । चकइति शरद चांदनी जैसे ।
- २-भलो कहत दुख रउरेहु लागा ।
- ३ दो०-लौने मुख दीठि न लगै यों कहि दीन्हो ईठ ।
दूनी है लागन लगी दिये दिठाना दीठ ।
- ४-कोय बस हँ कै हिरनाकुस उदित प्रहलादै मारिबेकां भयो
आपु ही हनो गयो ।
- ५-जारिबे को चाहत लंगूर जातुधान देखो बीर हनूमान जू
जराय दई लड्डा को ।
- ६-जीतिबे को आये भृगुनंद रघुनन्दन को जीते गये आपु भये
गिने बीरताई सों ।

* सूचना-कई एक कवियों ने ' विषम ' अलंकार के ६ भेद लिखे हैं । परन्तु विचार करने से ज्ञान पड़ता है कि आगे के तीन भेद इसी तीसरे भेद के अन्तर्गत आते हैं ।

(४५)—सम

(विषमालंकार का ठीक विरोधी)

इसके भी तीन भेद हैं, यथा:—

(पहला)

वरनत जहाँ विशुद्ध मति यथायोग्य को संग ।

प्रथम समालंकार तेहि भाषत बुद्धि उत्तम ।

१-सो -जेइ विधि रच्यो गोपाल, तेइ ठकुराइन राधिका ।

लखि चख होत निहाल, समसरि जुगलकिसोर की ।

२-दो०-चिगजावो जोरी जुरै क्यों न सनेह गँभीर ।

को घटि ये वृषभानुजा वे हलधर के बीर ।

३-जेइ विरंचिरनि सोय सँवारा निइ स्यामल वर रच्यो विनारी

४-देखे हैं अनेक व्याह सुने हैं पुरान वेद बूझे हैं सुजान साधु

नरनारी पारखी । ऐसे सम समधी समाज न विराजमान

राम से नर वर दुलही न सोय सारखी ।

५-जस दुलह तस बना बराना । कौतुकविविध हाहि मगुजान ।

६-कुषजा को कूबर मधुप अइ, त्रिभंगिहि जोग ।

(विनयपत्रिका से)

७-देव ! तू दयाल, दीन हो' तू दानि, हौ' भिखारी ।

हौ' प्रसिद्ध पातकी तू पापपुंजहारी ॥ १ ॥

नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो ।

मो समान आरत, वहि आरत हर तोसो ॥ २ ॥

ब्रह्म तू, हौ' जीव हौ', तू ठाकुर, हौ' चेरो ।

... .. ॥ ३ ॥

तोहि मोहि नाते अनेक मानिये जो भावै ।

ज्यौंत्यौं तुलसी कृपालु चरणशरणा पावै ॥ ४

८-दो०-मो सम दीन, न दीनहितु तुम समान रघुवीर ॥

अस बिचारि रघुवंशमणि हरहु विषम भवभीर ॥

(दूसरा)

दो०-कारण के सम बरणिये कारज को जेहि ठौर ।

देखि सरिस गुण रूप तैं बरणात हैं 'मम' और ।

(यथा)

१-सिय जु दुसह दुख साह लियो, सुता भूमि की होय ।

२-सो०-जगजीवन को दंद, उदय होत ही तम हरै ।

और सिन्धु को नंद, क्यों न उजैरो होय शशि ।

३-दो०-मधुप बालपन ही पियो दूध पूतना केर ।

नाही ते दासी रुची यामें कछू न फेर ।

(तीसरा)

दो०-ताकी सिद्धि अनिष्ट बिनु उद्यम जाके अर्थ ।

ताको सम तीजो कहैं जिनकी बुद्धि समर्थ ॥ यथा:-

१-दुंदुभि अस्थि ताल दिखराये । बिनु प्रयास रघुवीर ढहाये ।

(सुग्रीव ने राम की परीक्षा लेनी चाही । राम ने तुरन्त परीक्षा दी और परीक्षा में उत्तीर्ण हुए ।

२-हरि ढूँढ़न ब्रज में गई, पाये गिरधर लाल ।

३-छुवतहिं टूट पिनाक पुराना ।

४-छुवत टूट रघुपातिहि न दोष

५—अति उत्तंग गिरि पादप लीलाहिं लेहिं उठाय ।

आनि देहिं नल नीलाहिं रचाहिं ते सेतु बनाय ॥

६—शैल विशाल आनि कपि देहीं । कंदुक इव नल नील सो लेहीं ।

७—तुरत वैद्य तब कीण्ह उपाई । उठि बैठे लल्लिमन हरषाई ॥

(४६)—विचित्र

दो०—जहां करत उद्यम कलू फल चाहत विपरीत ।

वरनन तहां विचित्र कहि जे कविता के मीत ॥

(यथा)

१—जीवन हित प्रानहिं तजन नवत उँचाई हेत ।

सुख कारण दुख संग्रहैं बहुधा पुरुष सचेत ॥

२—क्यों नहिं गंगा को सुमिरि दरस परस सुख लेत ।

जाके तट में मरत नर अमर होन के हेत ॥

३—कगिबे को उज्ज्वल सुधा सो अभिराम देखो मन ब्रजबाम
रंगनी है श्यामरंग में ।

४—भवसागर के तरिबे के लिये बहु डूबत तरिथ नीर मँझारे ।

५—उक सौ एक निज पूरबज तृप्त करन के हेत ।

अनछाने जव-चून को पिंड गया में देत ।

६—अमर होन हित समर महुँ जूझत पुरुष पुनीत ।

(४७)—अधिक

इस अलंकार में आभार और आधेय का उत्कर्ष कहा जाता है । इसके दो भेद हैं ।

(प्रथम)

जहां बड़े आभार ने अधिक होय आधेय ।

अर्थात् बड़े आधार से भी प्राधेय का बड़ा कइना-जैसे:-
दो०--जामे भारी भुवन सब गँवई से दगसात ।

तेहि अखंड ब्रह्मंड में तेरो जम न अपात ॥

सर्वथा-सातो समुद्र परी वसुधायह सातो गिरीश धरे सब ओरे ।
सातहीदीप सबै दग्ग्यात में दग्गिहि खंड किते नेहि ठोरे ।
'दास'ननुदेश लोह प्रकाशित हैं ब्रह्मांड इकीसहि जोरे ।
एतेही में सातजैसै लोह ८ जोर घुनाथ सो बैर विथोरे ।
इसमें दर्शन में यह बात निकलती है कि श्री राम जी का
अमल इमल इसमें भी अधिक स्थानों में है-अर्थात् इनने
आधार से बहुत बड़ा है ।

(दूसरा)

जहँ अति लघु आधार जहँ धरै बड़ो अधेय ।

अर्थात् बड़े प्राधेय को छोटे आधार से रखना-जैसे:-

१ जा यदुपति के उदर में सिंगरो बसत जहान ।

सुख में राखनि ताहि तू दिखरे हार समान ।

२-विश्वामित्र मुनीश की महिमा अपंगार ।

करतलगत आमलकसम जिनकां सब संसार ॥

३--ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहै ।

मम उदर सोबासी यह उपहासी सुनतधीरमतिथिर न रहै

४ व्यापक ब्रह्म निर्गुन निर्गुण विगत विनोद ।

सो अज प्रम भगति बस कौसल्या की गोद ।

५--तुम जो गिरिवर कर धन्यौ सो है हलकी बात ।

गिरि समेत मैं उर धन्यो नेकौ ना गरुआत ॥

(४८)—अल्प

दो०—अति छोटे आधेय ते अति छोटे आधार ।

ताहि अल्प भूषण कहैं जे सुबुद्धि आगार ॥

अर्थात् अत्यंत सूक्ष्म आधेय की अपेक्षा आधार का अति सूक्ष्म वर्णन करना इस अलंकार का मुख्य उद्देश्य है । यथा:—

बरबा—अब जीवन की हे कपि आस न मोहिं ।

कनगुरिया की मुँदरी ककना होहि ॥

जानकी जी हनुमान जां से कहती हैं कि छिगुलीका छल्ला (अति छोटा छल्ला) हाथमे कंकण की तरह होता है (अर्थात् इतनी दुबली होगई हूँ)

यहां छल्ला आधेय और कंकण आधार है । अति छोटे आधेय से आधार को और भी सूक्ष्म कहा गया है ।

पुनः—रोम रोम प्रति राजहीं कोटि कोटि ब्रह्मांड ।

(मुरारिदान की सम्मति)

“रम्य हाय जेहि ठाँअलपाई । अल्प अलंकृत सो सुखदाई” ।

इस परिभाषा से आधार और आधेय का भगड़ा मिट जाता है । हमारी भी यही सम्मति है कि इस अलंकार के लिये आधार और आधेय का भगड़ा न लगाना चाहिये । मगोरजक अल्पता के वर्णन में इसे स्वच्छन्द बिचरने देना चाहिये ।

बोले हनुमान याहि मुँदरी न कहे मातु तेरे पाछे यासों राम कंकण कहत हैं ।

पुनः—भुजा भई अति दूबरी कंकण कीन्ही छाप ।

(४९)—अन्योन्य

दो०—जो जासों जैसो कबै सो तासों तस कीन ।

अन्योन्यालंकार तेहि भाषैं सब मातिपीन ॥

१-मुनि रघुबीर परस्पर नवहीं । बचन अगोचर सुख अनुभवहीं ।

२-सर की शोभा हंस है, राजहंस की ताल ।

३-वे उनको अपराध करें नहि, वे उनको न उदास करें चित ।

वे मित राखे रहै उनका 'रघुनाथ' वे राखे रहै उनकी मित ।

प्रेम पगे दोउ आपुस में यहि भांति बगेबर क्यों न बढ़ै हित ।

वे सुख दैत रहै उनको नित वे सुख दैत रहै उनको नित ॥

४-शब्द सु शोभा अर्थ की दैत बढ़ाय निहार ।

त्योही शोभा शब्द की बढ़वत अर्थ मुरार ॥

५-शशि सों निशा निशा सों शशि भल ।

६-कवि सों सभा सभा सों कवि वर ।

७-रामचन्द्र विनु सिय दुखी, सिय विनु उन रघुराय ।

८-मनमोहन तन घन घन सु रमणि राधिका मोर ।

श्री राधा मुखचंद को गोकुलचंद चकोर ॥

(५०)-विशेष

इस अलंकार के तीन भेद हैं: यथा—

(पहला)

जहँ जाहिर आधार विनु है आधेय सुरंज । यथा: ।

१-शुभदाता, सूरों, सुकवि, सेत कगै आचार ।

विना देह हू 'दास' ये जीवित हैं संसार ॥

२-वन्दनीय काहक नहीं, ये कविन्द मातिमान ।

स्वरग गये हू काव्यरस । जनको जगत जहान ॥

३-सैन्य केते लपेटे लंगूर सों दीन्हें उछाय फटे फहरात हैं ।

सागर व्योम के बीच लटे उलटे दल ऊपर ते मँडरात हैं ।

४-बिनु वारिद बिजुरी विना वारि लमत युग मीन ।

बिधु ऊपर तम तोम यह निरखी गीति नवीन ॥

५-मार के कसैया अरि अपरपुरे ने तऊ अगैं मारु मारु सोर
होन है समर में ।

(दूसरा)

थोरे ही प्रारंभ में लाभ अलभ्य बखान । यथा:-

१-पाइ चके फल चार ह करत गंगजल पान ।

२-आज को था छुबि देखि सखा । अथ देखिवे को न रहो कलु बाकी ।

३-कपि तव दर न स फल दुख नीते । भिले आजु मोहि राम पिरौते ।

(तीसरा)

वस्तु एक जहँ युक्ति ते बहु थल बरनी जाय । जैसे:-

१-घर बाहर अथ ऊधौ मर ठां राम लखाय

२-सोवत जागत दिशि विदिशि देखि परैं घनश्याम ।

कंस हृदय आठहु पहर कृष्ण करैं विश्राम ।

३-सती दीख कोतुक भगजाता । आगे राम सहित सियभ्राता ।

फिर निवन पाछे प्रभु देखा । मलिन बन्धु सिय सुन्दर भेषा ।

जहँ बितव तहँ प्रभु आसोना । सेबहिं सिद्ध मुनीश प्रवीना ।

४-सीयराममय सब अग जाती । करों प्रताप जाहि जुग पानी ।

५-निजप्रभुमय देखहिं जगत कासों करैं विरोध ।

६-गोपिनमँग निशि शरद की रमत रविक रसरस ।

लहाछुह आति गानिन को सबन लखे निज पास ।

७-जल में थल में गगन में जड़ चेतन में 'दास' ।

चर अचरन में एक है परमात्मा प्रकास ।

सूचना-यह अलंकार पर्याय अलंकार से मिलता जुलता है। भेद यह है कि इसमें एक वस्तु का 'एकही समय' में 'बहुधातों' में होना कहा जाता है और पर्याय में एकही वस्तु का बहुधातों में क्रमशः आश्रय लेना वर्णन किया जाता है।

(५१)-व्याघात

व्याघात = प्रका। इसके दो भेद हैं।

(प्रथम)

दो०-एकहि वस्तु जहां कहैं करै सुकाज विरुद्ध ।

प्रथम तहां व्याघात कहि वरणैं कवि मतिशुद्ध ॥

(यथा)

१-जासों काटत जगत के बंधन दीन दयाल।

ता चितवनि सों तियन के मग वांधे गोपाल ॥

२-जीन उतारत हो तन ताप सो जारन आजु सुधाधर साई ।

३-तू सबको प्रतिपालनहार द्विबारें भतार न मारु हमारे ।

४-बरसत जु गणि पियूष सो विष बरसत मोहिं जीय ।

५-नाम प्रभाव जान शिव नाके । कालकूट फल दान भरी के ।

(दूसरा)

दो०-एकै कारज साधनो करिकै क्रिया विरुद्ध ।

सो द्विजो व्याघात है वरना सुकवि सुबुद्ध ।

(यथा)

१-लोभी मन संचै करै दारिद्र को डर मानि ।

'दास' यहै डर मानिकै दान देत है दानि ॥

२-रण ते हूबे को अमर भागत कायर कूर ।

यहै चाह चित करि नहीं विचलत सांचे सूर ।

३-दुख दारिद की संक सों लोभी स्वधन न देत ।

दातहु ताही संक सों सरबस देत सहेत ॥

४-मिलत एक दारुण दुख देहीं बिछुरत एक प्राण हरि लेहीं ।

(५२)-कारणमाला-(गुम्फ)

(प्रथम)

दो०-कारण ते कारज प्रगटि कारण है है जात ।

तेहि कारणमाला कहैं जे कवि बर विख्यात !

(यथा)

दो०-विद्या देती विनय को विनय पात्रता मित्त ।

पात्रत्वै धन, धन धरम, धरमदेत सुख निज ॥

सो०-होत लोभ ते मोह, मोहहि ते उपजै गरब ।

गरब बढ़ावै कोह, कोह कलह, कलहहु व्यथा ॥

दो०-होत पाप ते जड़ नृपति जड़ नृप ते अविवेक ।

फौज दुखित अविबेक तें ता दुख जीति न नेहु ॥

दो०-बिनु सतसंग न हरि कथा, तेहि बिनु मोहन भागु ।

मोह गये बिनु राम पद होय न दृढ़ अनुरागु ॥

दो०-सतसंग तें वैराग है ताते मन संतोष ।

संतोषहि तें ज्ञान है होत ज्ञान तें मोष ॥

(दूसरी)

दो०-कारज को कारण जु सो कारज है है जाय ।

काण माला ताहु को कहैं सकल कविगाय ॥

(यथा)

दो०—रामकृपा ते परमपद कहत पुराने लोय ।

रामकृपा है भक्ति तें भक्ति भाग्य तें होय ॥

अन्न मूल धन, वनन को मूल यज्ञ अभिराम ।

ताको धन, धन को धर्म, धर्ममूल हरिनाम ॥

पुनः—दुख पाप तें, पाप सु दारिद्र तें, पुनि दारिद्र तुच्छ
किये मन के ।

(५३)—एकावली—(शृंखला)

दोहा—किये जँजीरा जेर पद एकावली प्रमान ।

बिबरण—जहाँ पदों का ग्रहण और त्याग, पुनः ग्रहण और त्याग के ढँग से सब पद जँजीर की कड़ियों की तरह परस्पर जुड़े हों वहाँ एकावली समझना चाहिये । कारणमाला में कारण और कार्य का शृंखलाबद्ध सम्बन्ध जैसा दिखलाया गया है वैसे ही इसमें भी होता है, भेद केवल इतना है कि कारणमाला में केवल 'कारण और कार्य' को शृंखला बनाई जाती है, और इसमें सबही वस्तुओं की । 'कारणमाला' को एकावली कह सकते हैं, पर 'एकावली' को सदा कारणमाला नहीं कह सकते । यथाः—

१—गिरि पै वृष, वृष पै जु शिव, शिव पै सुरसरिनीर ।

२—सो नहि सर जित सरसिज नाही । सरसिज नहि जेहि
अलि न लोभाहीं । अलि नहि जो कल गुंजन हीना । गुंजन
नहि जु मन न हरि लीना ॥

३—सबैया—सोभति सो न सभा जहँ वृद्ध न, वृद्ध न ते जु

पढ़े कछु नाहीं। ते न पढ़े जिन ाधु न साधित दीह दया न
दिपै जिन माहीं। सो न दया जु न धर्म धरै धर धर्म न सो
जहँ दान वृथा हीं। दान न सो जहँ सांच न 'कंशव' सांच
न सो जु बसै छल छाहीं ॥

४—(कवित्त)

करम पै कोल कोलहू पे शेष कुंडली है कुण्डली पै फबी
फैल सुफन हजार की। कहै 'पदमाकर' त्यौं फन पे फबी है
भूमि, भूमि पै फबी है धिति रजत पहार की। रजत पहार पर
शंभु सुरनायक हैं शंभु पे जोति जटाजूट है अषार की। शंभु
जटाजूटन पै चन्द्र की छुटी है छटा चन्द्र की छटान पे छटा
है गंगधार की ॥

(५४) सार

दो०—अर्थन को उत्कर्ष जहँ आंग आगे होत ।

विवरण—जहाँ वर्णित 'स्तुति' का उत्तरात्तर उत्कर्ष वा
अपकर्ष वर्णन किया जाय उसे 'सार' कहते हैं। इसका
दूसरा नाम 'उदार' भी है। जैसे:—

(उत्कर्ष)

१-सब मम प्रिय सब मम उपजाये। सबत अति ह मनज मोहि भाये
तिनमहँ द्विज द्विजमहँ श्रुत धारा। अमहँ निगदनीति अनुसारी॥
तिनमहँ पुनि विरक्त पुनि जानी। जानिहुनि अति भाय विजानी।
तिनतें मोहि अति प्रिय निज दासा जोह गति मारि न दूखि आसा॥

दो० मखमल ते कोमल मदा कदलि गरम को पात ।

नाह ते कोमल अधिक राम तुम्हारे गात ।

३-उन्नत अति गिरि गिरिन तें हरिपद हैं विख्यात ।

निन हूं ते ऊंचो घनो संत हृदय दग्धात ॥

४-हे करतार बिनै सुनो 'दास' की लोकनि को अवतार
कस्यो जनि । लोकनि को अवतार कस्यो तो मनुष्यन को
तो सँवार कस्यो जनि ॥ मानुष हू का सँवार कस्यो तो तिनहैं
बिच प्रेम पसार कस्यो जनि । प्रेम पसार कस्यो तो दयानिधि
केहं वियोध विचार कस्यो जनि ॥

(अपकर्ष)

१-अधमने अधम अधम अतिनारो । तिन महँ मैं नतिमंद गँववा ॥

२-दो०-शिला कठोरी काठ तें तातें लोह कठार ।

ताहू तें कीन्हों कठिन मन तुम नंदकिमोर ॥

३-तृण ते लघु है तूल, तूलहु ते लघु मांगनो ।

सू०-इस अलंकार की अंगरेजी में क्लाइमेक्स (Climax) कहेंगे ।

(५५)-क्रम

दो०-क्रम सों कहि पहल कछु क्रम ते अर्थ मिलाय ।

यो ही आर निबाडिये क्रम भूपण सु कहाय ॥

विवरण-दो चार अथवा तीन या अधिक वस्तुओं का जिस
क्रम से पहले वर्णन करें उसी क्रम से उनका वर्णन अंत तक
निबाहें, उसे 'क्रम' अलंकार कहते हैं । 'यथासंख्य' या इसी
का नाम है । इस अलंकार के मुख्य ३ भेद हैं:-

(१) यथाक्रम (२) भंगक्रम (३) विपर्ययक्रम

(१)-यथाक्रम

दो०-रंग, लोह, तरु कीट ये परसि न पनई अंग ।

कहा नृपति, पारस कहा, कह चंदन, कह भृंग ॥

यहां पहले चार वस्तुओं का उल्लेख किया—रंक, लोह, तरु और कीट । फिर कहा कि ये चारो सत्संग पाकर अपना रूप न पलट दें तो राजा, पारस, चंदन और भृंग व्यर्थ ही हैं । यहां जिस क्रम से पूर्वार्द्ध में चार वस्तुओं के नाम आये हैं उक्तगार्द्ध में ठीक उसी क्रम से उनको पलटानेवाली वस्तुओं के नाम भी आये हैं अर्थात् रंक के लिये नृपति लोह के लिये पारस तरु के लिये भंदन और कीट के लिये भृंग । ऐसी ही वर्णन प्रणाली में 'क्रम' अलंकार माना जाता है । पुनः—

दो०—गिरे अरिन के तहत तुव रूप रोष बिकरार ।

तन तें, मन तें, करनतें, स्वेद गरव, हथियार ॥

अर्थात् तेरा रोषपूर्ण रूप देखकर शत्रुओं के तन से मनसे और हाथों से गिर पड़े पसीना, गर्व और हथियार—अर्थात् तन से पसीना, मन से गर्व और हाथों से हथियार । यहां भी यथा क्रम वर्णन है । इसी प्रकार ओर भी समझ लेना । यथाः—

बंदों राम नाम रघुवर को । हेतु कृशानु भानु रिपकर को ॥

'राम' शब्द के तीन अक्षर र, अ, म क्रम से अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा के हेतु कहे गये ।

पुनः—शत्रुन को मित्रन को परम पवित्रन को घालियन, पालियत, पूजियत पाये ते ।

दो०—अमी हलाहल मद भेग सेत श्याम रतनार ।

जियत मरत झुकि झुकि परत जेहिं चितवत इकबार ।

भौं चितवनि डोरे बरुनि असि कटार फँद तीर ।

कटत फटत बंधत बिधँत जिय हिय मन तन वीर ॥

पुनः—

लं०—जनि जन्पना करि सुजस नासहि नीति सुनहि करहि छमा ।

संसार महँ पूरुष त्रिविधि पाटल, रसाल, पनस समा ।

इक सुमनप्रद, इक सुमनफल, इक फलहि केवल लागहीं ।

इक कहहि, कहहि करहि अपर इक करहि, कहत न बागहीं ।

सूचना—इस अलंकार को फारसी, उर्दू तथा अरबी साहित्य में 'लफोमशर मुस्तश' कहते हैं । इस अलंकार का एक अति उत्तम उदाहरण 'फिरदौसी' ने अपने 'शाहनामा' में लिखा है । फारसीदां पाठकों के लिये उसे हम यहां लिखे देते हैं और हिन्दीवालों के समझने के लिये उसका भावानुवाद भी किये देते हैं । इसमें की तारीफ में फिरदौसी लिखता है:—

बरोजे नबर्द आं यले अजुमंद । बशमशीरो, खंजर बगुर्जो, कमंद ।
बुरीदो, दरीदो, शिकस्तो, बिबस्नायलां रासरो, सीनओ, पायो दस्त ।

(भावानुवाद)

संगर में जब रुस्तम ने अपने विजयी हथियार उठाये ।
खड्ग, कटार, गदा, अरु पाश के अद्भुत, यों करतव्य दिखाये ।
काटि गिरावत, फारत, तोरत बांधत चारि खनौ न लगाये ।
शत्रुन के सिर और उरस्थल, पाद, भुजा नहि जायँ गनाये ।

इस में यथाक्रम वर्णन किया है—चक्र देखो ।

खड्ग	कटार	गदा	पाश
काटि गिरावत	फारत	तोरत	बांधत
सिर	उरस्थल	पाद	भुजा

२—(भंगक्रम)

जिसमें कथित वस्तुओं का क्रम भंग हो जाय—

(यथा)

दो०—सचिव वैद्य गुरु तीन जो प्रिय बोलहिं भय आस ।
राज्य धर्म तन तीन को होइ बेगि ही नास ।

यहां सचिव, वैद्य और गुरु के क्रम से राज्य, तनु और धर्म कहना चाहिये था, सो क्रम भंग है।

इसको फारसी तथा उर्दू में “ लफानशर गौर मुस्तब ” कहते हैं। ‘ यथाक्रम ’ का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण जो हमें मिला है वह यह है।

छप्पय

आनन बेनी नैन बैन पुनि दशन सुकटि गति । शशि सपिन मृग पिक अनार केहरि करणिन पति । पुरन खिभिनजक तरुण पक बरपंच पुष्टबल । शरद पनाल बिछोह बाग तरु गिरि बनकजल । निशि सन्नवेश शावक चुवत विगस प्रसूती मद-भरन । पृथिराज भनत बंशी बजत अस बनिता बनबन फिरत ।

इस में प्रथम चरण में ७ वस्तुओं के नाम लिये, पुनः दूसरे चरण में यथा क्रम उनके उपमान कहे। पुनः तीसरे चौथे और पांचवें चरण में यथाक्रम उन्हीं उपमानों के विशेषण कहने चले गये।

इस अलंकार का इससे बढकर हमें कोई उदाहरण नहीं मिला।

३—(विपरीत क्रम)

जिसमें पूर्वोक्त वस्तुओं के वर्णन का क्रम उल्टा दिया गया हो। जैसे:—

राज्य नीतिबिनु धन बिनुअर्मा । हरिहि समर्प बिनु सतकर्मा । विद्या बिनु विवेक उपजाये । अमरुत पढ़े, क्रिये अस पाये ।

यहां चार वस्तुएं कही गईं राज्य, धन, सत्कर्म और विद्या। फिर कहा गया है कि इन चारों के साथ अगर ये चार गुण न हों तो विद्या का पढ़ना, सत्कर्म का करना और धन तथा राज्य

का पाना केवल श्रम मात्र है। यहां स्पष्ट देख पड़ता है कि जो क्रम वर्ण्य वस्तुओं का है ठीक उसके विपरीत उनके वर्णनका है।

(५६)-पर्याय

(प्रथम)

दो०—एक वस्तु क्रम सों जहां आश्रय लेय अनक ।

ताहि प्रथम पर्याय कवि वरनैं सहित विवेक ।

विवरण—एक वस्तु का क्रमशः बहुत स्थानों में आश्रय लेना वर्णन किया जाय वहां प्रथम पर्याय जानो ॥ जैसे:—
मणि प्राणि न मुक्ता छवि जैसं । अहि गिरि गज सिर साहन तैसी ।
नृप किरीट तरुणी तनु पाई । लहैं सकल सोमा अधिकाई ।

इसमें प्राणिकारि का पड़ा स्थान अहि गिरि गजसिर वर्णन किया, फिर नृपकिरीट और तरुणी तन कहा गया ।

दो०—असुवन ते यह नद कियो नद त कियो समुद्र

अव सिगरो जग जलमई करन चहति वनि रुद्र ॥

यहां आसुओं का आश्रय पड़ते नद पुनः समुद्र पुनः सारा जग कहा गया है ।

दो०—हालाहल तोहि नित नय, किन वतराय ऐन ।

अबुधि हिय पुनि शंभुगर, अव निवसत खलैवन ॥

जीति रही औंग मैं, राखै छत्रपति छाँड़ि ।

तजि ताहू को अव रही, शिव सरजा कर माँड़ि ॥

सूचना—मरण रखना चाहिये कि पर्याय अनेकार में एक आश्रय के त्याग के अनन्तर दूसरे आश्रय को ग्रहण करना कहा जाता है। जहाँ ऐसा न हो, वरन् प्रथम आश्रय में रहते हुए ही उस वस्तु का अन्य आश्रयों में भाँ जाना वर्णन किया जाय, वहाँ कई एक कवियों ने 'विकाश' नामक एक पृथक् ही अनेकार माना है। जैसे:—

दो०—सर सरिता गिरि सिंधु सों रुकत नहीं दिन रात ।

जस तेरो जसवंत नृप जग में पसरत जात ॥

तुव अधरहि में हे सखी हुतो जो पूरव राग ।

अब तुव हिय में भी वही लख्यो परत बड़ भाग ॥

सूचना—विकाश के विपरीत भाव में कोई कोई 'कवि' 'संकोच' अलंकार भी कहते हैं:—

(यथा)

तज तरनि जसवंत तुव होत जगत बिख्यात ।

कुवलय इव अगि कुवलय जू सनै सनै सकुचात ॥

इस दोहा में पूर्वार्द्ध में 'विकास' अलंकार और उत्तरार्द्ध में 'संकोच' है ।

(पुन. विकाश)

गोपिन के अँसुवान के नीर पमारे भये फिरि ह्वेगये नारे ।
नारे भये नदियां बढि के नदियां नद ह्वै गई काटि करारे । बेगि
चलो तो चलो ब्रज में कवि 'तोष' कहै ब्रजराज हमारे । वे
नद चाहत सिंधु भये पुनि सिंधु ते ह्वै हैं जलाहल सागरे ।

(दूसरा पर्याय)

दो०—क्रम ही तें जहँ एक में आवैं वस्तु अनेक ।

मो दूजो पर्याय है बरनत कवि सविवेक । यथा—

जा हिय में अविवेक हो छायो तहाँ विवेक ।

यहां एक ही हृदय में पहले अविवेक का रहना पुनः विवेक का आना कहा गया ।

दो०—ऋषिहि देखि हरषै हियो राम देखि कुम्हिन्याय ।

धनुष देखि हरषै महा चिन्ता चित्त डोलाय ॥

“ जनक लहौ सुख सोच विहाई ”

यहां जनक के हृदय में पहले सोच था, पुनः सुख आया ।
आधार एरु है, आश्रय लेनेवाले भिन्न ० हैं । पुनः
दो०—हुती देह में लरिकई, पुनि तरुणाई जोर ।
बिरधाई आई अजहुँ, मजि ले नंदकिशोर ॥

(५७)—परिवृत्त *

दो०—जहाँ अधिक अरु न्यून को लीवो दीवो होय ।

बिबरण—‘ परिवृत्त का अर्थ है ‘अदला बदला’ वा लेना देना । इसके तीन भेद हो सकते हैं—(१) बहुत देकर थोड़ा लेना । (२) थोड़ा देकर बहुत लेना । (३) समदेकर समलेना जिसमें से तीसरे में हमारे मत में कोई अलंकारता नहीं आता । इससे हम केवल प्रथम दो के ही उदाहरण लिखेंगे ।

(१)—बहुत देकर थोड़ा लेना

दो०—कामों कहिये आपनो यह अजान यदुराय ।

मन मानिक दीन्हौ तुम्है लीन्ही बिरह बलाय ॥

पुनः—तारा बिकल देखि रघुराया । दीन्ह ज्ञानहरि लीन्ही माया

पुनः—तन मन धन है प्रेम सों लाये रोग बिसाहि ।

तुम कौन धौं पाटी पढ़े हो लला मन लेत पै देत छटांक नहीं

(थोड़ा देकर बहुत लेना)

१—चारो फल देत चार चाउर बढ़ाये ते ।

२—सेवा सुमिरन पूजिवो पात आखत थारे ।

दिये सबे जहँ लौं जगत सुख गज रथ धोरे ॥

३-इक धनूर फल दै शिवहि निय अमोघ फल चारि ।

४-तीन मूठी भर आज देखर अनाज आपु लीन्ही यदुगाय जू सीं
संपनि धनैश की ।

५-देखो त्रिपुरारी की उदारता अपार जहाँ पये फल चारि एक
फल दै अतरे को ।

(५८)-परिसंख्या

दा०-रुहि निषध भल एकतेँ राखिय औरहि ठौर ।

वस्तु, धर्म, गुण जाति जहँ परिसंख्या तेहि ठौर ॥

बिबरण-जहां किसी वस्तु, धर्म, गुण वा जाति को अन्य सब स्थानों से (जो उससे उपयुक्त माने जाते हों) वर्जन करके किसी एक विशेष स्थान पर उठाने, वहां परिसंख्या अलंकार होता है । ' परिसंख्या ' शब्द का अर्थ यहाँपर " अपने स्थान से उठाई गई आगे दूसरे स्थान पर बैठाई हुई वस्तु को गणना " है ।

यथा-

दा०-नृपति राम के राज्य में हैं न शूल दुखमूल ।

अखियत चित्रन में लिखो शंकर के कर शूल ॥

यहां राज्यपर में ' शूल ' (कष्ट) का वर्जन करके केवल चित्र में शंकर के हाथ में (त्रिशूल) को स्थापित किया है ।
यहाँ अलंकारता है ।

पुनः-

दा०-दंड जतिन कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज ।

जीतो मनमिज सुनिय अस रामचन्द्र के राज ॥

यहां यह कहा गया कि रामराज्य में दंड (सज़ा) कही

नहीं है केवल नाममात्र को दंड (लाठी) सन्धासियों के हाथ में है। भेद (भेदनीति) कहीं नहीं है, केवल नृत्यक समाज में सुर, ताल, राग इत्यादि का भेद (विलगाव) देखा जाता है, और कोई किसी को जीतने का उद्योग नहीं करता, केवल काम को जीतने की इच्छा करते हैं। इसीप्रकार और भी समझना, जैसे-

कवित्त

साम को तो काम मुनिवर के मुखन माहि और ठौर में तो तासों रंचकन काज है। दाम जल भरिबे के कामही में देखियत दंड को निवास एक कर यतिराज है। ' रतनेश ' भेद एक सुर के मिलाइबे में देखो जहां होत गान नृत्य को समाज है। साम दाम दंड भेद अनत न देखे कहूँ ऐसो सुनवाई रघुराज जू को राज है।

दो०-केशन ही में कटिलता मंचारिन में संक।

लखो राम के राज में इक शशि माहि कलंक ॥

पुनः—(काव्य छन्द)

भूलन हो को जहां अधोगति केशव गाइय।

होम हुतासन धूम नगर एकै मलिनाइय।

दुर्गति दुर्गन ही जो कुटिल गति सरितन ही में।

श्रीफल को अभिलाप प्रकट कबिकुल के जी में।

(रामचंद्रिका)

पुनः (कवित्त)

शत्रुको उथापि पीछे थापिबे में व्रत भंग दीखत युधिष्ठिर में
गिद्धन में कंकता। कैद लोक कुल की त्यौं वेद मरजाद ही में,
स्वैरगति माहत में चातकमें रंकता। इति ग्रंथ पूर्णता में संकर

लिखैया लिखैं चोरी इतिहास में है होरी में निसंकता । चंद्रमा में काहु काल राहु ते ससंकता त्यों द्वितीया में बंकता है पूनो में कलंकता ॥ १ ॥

आये जुए जांघिबे की जांचक जहाँ लौं रहे एहो कबि रघुनाथ आजु तीनों थर में । एते मान दान तिन्हें भूप दसरथ दीन्हें देत न दिखाई कहं कोऊ सौज घर में । बसन के नाते पास बास कौशिला के एक भूपन के नाते नथ नाक छला कर में । घोरे हाथी चित्रन के रहे चित्रसारी माहिं रामके जनम रहे दाम दफतर में ॥ २ ॥

दोहा—पत्राहीं तिथि पाइये वा घर के चहुँ पास ।

नित प्रति पूनो ही रहत आनन ओष उजास ॥

कवित्त—अति मतवारे जहां दुरदै निहारियत तुरगन ही मे चंचलाई परकीति है । भूपन भनत जहां पर लगैं बानन में कोक पच्छिनहि माहिं बिछुरन रीति है । गुनिगन चोर जहाँ एक चित्त ही के, लोक बंधे जहां एक सरजा की गुन-प्रीति है । कंप कदली में वारि बुँद बदली में शिवराज अदली के राज में यों राजनीति है ।

नोट—(कभी कभी प्रश्नोत्तर रीति से भी यह अलंकार कहा जाता है ।

दोहा—सेव्य कहा ? तट सुरसरी, कहा धेय ? हरि पाद ।

करन उचित कह ? धर्मनित, चित तजि सकल विषाद ।

(५६) विकल्प

दो०—कै तो वह कै यह जहां यह विकल्प दिखराय ।

ताहि विकल्प बखानहीं सिगरे कबि समुदाय ॥

विबरण—‘ या तो ऐसा ही होगा या ऐसाही होगा ’ इस प्रकार के कथन में ‘विकल्प’ अलंकार माना जाता है । जैसे:—

- १-जन्म कोटि लगि रगर हमारी । वरौं शंभु न तु रहौं कुमाही ।
 २-दो०-दिसि दिसि कूजहिं कोकिला फूले रुचिर रसाल ।
 दूरि करैगो विरह दुख कै गोपाल कै काल ॥
 ३-कोमल श्रीरघुवीर महा नबनीतहु ते नव नूतन माई ।
 है शिव को धनु बज्र समान शशी रवि ताहि सकैं न उटाई ।
 नात को बोल अडोल सबै निरमूलक आनिबनी दुचिताई ।
 जानकी जान की आस तजोकिबरौं इनको कि मरौं विष खाई ।
 ४-भीय स्यों राज्यकरौ युग लौं पथ ते भरतै मिलिहौं पलटाऊं ।
 जूझि मरौं कि करौं प्रभुकारज तौ अपनो मुख आनिदिखाऊं ।

(जययुवाक्य रावणप्रति)

- ५-हौं गरुडासन राम को सेवकरे छलिकै कोउ लेत सियाको ।
 कै न जु देह कि छांडु सनेह कि नू रण मांडु कि छांडु सियाको ।

(६०)-समुच्चय

समुच्चय = समूह । यह अलंकार दो प्रकार का है ।

(प्रथम)

- दो०-बहुत भाव इकवारही तिनको गुंफन होय ।
 काविकोविद सिंगरे कहैं प्रथम समुच्चै मोय । यथा:-
 चकित भित्तै मुंदरी पहिचानी । हरष विषाद हृदय अकुलानी ।
 यहां आश्चर्य, हर्ष, विषाद और व्याकुलता सब भाव एकठां
 साथ उदय हुए ।
 दो०-हे हरि तुम बिनु राधिका सेज परी अकुलाति ।
 तरफराति, तपकति, तचति, सुसकति, सूखी जाति ।
 सबैया-मांगि पठाये सिवा कछु देश वजीर अजानन बोल

गहे ना । दौरि लियो सरजा परनालो यों भूपन जो दिन दीय
लगे ना । धाक सो खाक विजैपुर भो मुख आयगो खान खवासके
फेना । भै भरकी करकी धरकी दरकी दिल एदिलसाहकी सेना ।

(द्वितीय)

दो०—एक काज के करन को हेतु जु होयँ अनेक ।

ताहि समुच्चय दूसरो वरनैं कवि सविवेक ॥

बिबरण—किसी कार्य के होने के लिये एक हेतु (काफी
तौर से) वर्तमान है ही, पर साथ ही साथ अन्य हेतु भी
उपस्थित कहे जायें, यथा:—

दो०—गंगा गीता गायत्री गनपति गरुड़ गोपाल ।

प्रातकाल जे नर भजैं ते न परैं भव जाल ॥

यहां गंगा गीतादि उपरोक्त कारणों में से एक कोई कारण
भवजाल से छोड़ाने के लिये काफी है, पर बहुतों का व्रणन
किया गया है ।

दो०—गंगा गीता गुरु गऊ गोकुल औ गिरिगज ।

ये देवतु कलिकाल में सदगति दिव्य दराज ॥

पुनः—प्रहयहीत पुनि बात बस तेहि पुनि बीछी मार ।

ताहि पिपाई बारुनी कहौ कौन उपचार ।

पुनः—

दो०—एक मंद मैं मोह वश कीश हृदय अज्ञान ।

पुनि प्रभु मोहिं बिसारेऊ दीनबधु भगवान ॥

(६१)—समाधि

‘ समाधि ’ शब्द का अर्थ है ‘ शक्तिसंपन्न करना ’ ।

दो०—और हेत के मिलन ते सुगम होय जेहँ काज ।

बिबरण—आकस्मिक कारणान्तर के योगसे जहां कार्यभति

सुगमता से हो जाय ।

१-पावक जरत देखि हनुमंता । भयो परम लघुरूप तुरंता ।

निबुकिचढ्यो कपि कनक अटारी । भई सभित निशाचर भारी ।

हारि प्रेरित तेहि अवसर चले पवन उन्चास ।

हनुमान जी लंब । को जलाना चाहते थे कि अकस्मात् उन्चासो पवनों की सहायतासे वह काम और भी सुगम होगया ।

२-भीत गमन अवरोध हित सोचत कछु उपाय ।

तबही आकसमात तें उठी घटा घहराय ।

३-रानचन्द्र सोचत रहे रावण बधन उपाय ।

सुपनेखा ताही समय करी ठोली आय ।

(६२)-प्रत्यनीक

दो०-शत्रु मित्र के पक्ष सों किये बैर अरु हेत ।

प्रत्यनीक भूषण कहैं सिंगरे सकवि सचेत ॥

बिबरण-जहाँ शत्रुपक्षवालों से बैर अथवा मित्रपक्षवालों से प्रेम करना कथन किया जाय । यह अलंकार 'अन्योन्य' अलंकार का संबंधी है । साक्षात् अपने साथ करनेवाले के प्रति वैसा ही करना तो 'अन्योन्य' का विषय है, और उसके संबंधी के साथ वैसाही बरतना इस अलंकार का विषय है । 'प्रत्यनीक' शब्द का अर्थ है, 'सेनाप्रति' वा 'संबंधीप्रति' ।

(शत्रुपक्षप्रति)

"विष्णु, बदन सम विधुहि विचारी । अबहु राहुदे पीडा भारी"

विष्णु ने राहु का सिर काटा था । विष्णु के मुख के समान जानकर राहु खन्द्रमा को अब तक प्रसता है ।

दो०-तेज मंद रवि ने कियो बस न चलयो तेहि संग ।

दुहुन नाम एकै समुझि जरत दिया पतंग ।

सवैया—लाज धरौशिव जूसों लरौ सब सैयद सेख पठान पठायकै
भूपन ह्यां गढ़ कोटन हारे उहां तुम क्यौंमठ तोरे रिसायकै।
हिदुन के पतिसों नबिसाति सतावत हिन्दू गरीबनपायकै
लीलीकलंकनदिल्लीकेबालमआलम आलमगीरकहायकै ।

पुनः—एती कहै किन जाय कोऊ अब मोसों कछुक न चूक परी है ।

बैर तिहारे हमारे हिये यह कोकिल कूकि कै हूक करी है ।

पुनः—नहिं चितव जब कपि कोपि तब गहि दसन लातन मारहीं ।

धरि केश नारि निकारि बाहर तेऽपि दीन पुकारहीं ।

(रावण जब यज्ञ से नहीं उठा तब बंदरों ने त्रियों को
सताना आरंभ किया)

पुनः—रावण दूत हमहि सुनि काना । कपिन बांधि दीन्हें दुखनाना ।

(मित्रपक्षप्रति)

१-दो०—छला छबीले लाल को नवल नेह लहि नारि ।

लेति लगाय लगाय उर पहिरति धरति उतारि ॥

२-हरि जन जानि प्रीति अति बाढी।सजल नैन पुलकावलि ठाढ़ी।

३-छैल जू सैल तिहारी सुनै तेहि गैलकी धूरि सों नैन धुरेंटति ।

रावरे अंग को रंग विचारि तमाल की डार भुजाभरि भेंटति।

४-चलत मोहि चूड़ामणि दीन्ही।रघुपति हृदय लाय सोइलीन्ही॥

(६३)—काव्यार्थापत्ति

काव्यार्थापत्ति=काव्य में न कहे हुए अर्थ का आ पड़ना ।

दो०—‘यहै भयो तो यह कहा, यहि बिधि जहाँ बखान ।

कहत काव्य पद सहित तेहि अर्थापत्ति सुजान ।

१-‘जितेउ सुरासर तब अम नाही।नर बानर केहि लेखे माहीं॥’

अर्थात् जब सुगासुर को जीत लिया तब नर बानरों का
जीतना उसी के अन्तर्गत आ पड़ा ।

२-सिंह पछाऱ्यो बाहु बल कहा स्यार की बात ।

३-जीत्यों जब चंदहि अमंद मुख तेरो तब 'चिंतामणि' मुकुर सरोज सनमाने को ।

४-पूरो जिन पूरो पारावार है पहार डार इतनी सुनो हो ताको लंक लेन कितनी ।

५-पंकज पात की बात कहा जिन कोमलता लईजीतिगुलाबकी ।

६-भूषण भनन गढ़ कोट माल मुलुक दै सिवा सों सलाह राखिये तो बात मली है ।

जाहि देत दंड सब डरिकै अखंड सोई दिल्ली दलमली तो तिहारी कहा चली है ।

(६४)-काव्यलिङ्ग ।

काव्य = काव्य का अर्थ । लिङ्ग-पहिचान करानेवालाचिन्ह (कारण) इसलिये 'काव्यलिङ्ग' शब्द का अर्थ है "काव्य में कही हुई बात की ठीक पहिचान करानेवाला चिन्ह (कारण) ।

सूचना-पाठकों को खूब समझ लेना चाहिये कि हेतु (कारण) दो प्रकार का होता है- (१) उत्पादक (२) सूचक वा ज्ञापक। उत्पादक हेतु वह है जिस से कार्य उत्पन्न हो जैसे अग्नि धूम का उत्पादक हेतु है, और सूचक वा ज्ञापक हेतु वह है जो किसी बात की सूचना दे, जैसे धूम अग्नि का ज्ञापक हेतु है । बस इस अलंकार में 'ज्ञापक' हेतु द्वारा ही काम लिया जाता है । उत्पादक हेतु का कार्यकारण सम्बन्ध 'हेतु' अलंकार में वर्णन किया जायगा । इसलिये इस अलंकार की परिभाषा यों हुई कि:-

दो०--ज्ञापक कारण द्वार जहँ अर्थ समर्थन होय ।

काव्यलिङ्ग ताको कहत कवि कोविद सब कोय ।

दो०--कनक कनक तें सांगुनी मादकता अधिकाय ।

वा खाये बौरात है या पाये बौराय ॥

कवि कहता है कि धतूरा की अपेक्षा सोने में सौगुनी मादकता है। इस कथन के समर्थन में ज्ञापक हेतु देता है कि धतूरा खाने से मनुष्य बौराना है और सोना पाने ही से बौरा जाता है। बौरा जाना मादकता का ज्ञापक हेतु है।

धर्महीन प्रभुपदविमुख कालविबश दसशीश ।

आये गुण तजि रावणहिं सुनहु कौशलाश्रीश ॥

अंगद कहते हैं कि राजनीति के चार गुण (दाम, साम, दंड, भेद) रावण को छोड़कर आपके पास बचे आये—कारण क्या ? सो पूर्वार्द्ध में कथित है ।

दो०—मेरी भवबाधा हरो राधा नागरि सोय ।

जा तन की भाँई परे श्याम हरितदुति होय ॥

तजि तीरथ हरि राधिका तनदुति करु अनुराग ।

जेहि ब्रज केलि निकुंज मग पग पग होत प्रयाग ॥

दो०—करौ कुवत जग कुटिलता, तजौ न दीनदयाल ।

दुखी होहुगे सरल हिय बसत त्रिभंगी लाल ॥

अपनी कुटिलता न छोड़ने की युक्ति कवि कैसी अच्छी कहता है। हे कृष्ण ! म त्रिभंगीला न हो इसलिये सरल (सोधा) हृदय में रहने से तुम्हें कष्ट होगा। इसलिये मैं अपने हृदय को कुटिल (टेढ़ा) ही बनाये रखूंगा, चाहे जगतजन मुझे बुरा (कुवत = कुबात) ही क्यों न कहें।

सूचना—कोई कोई आचार्य इस ' काव्यलिङ्ग ' अलंकार को ' हेतु ' अलंकार का प्रकारांतर ही मानते हैं। परंतु हमारी सम्मति में इसमें हेतु अलंकार की अपेक्षा कुछ विवक्षणा ही अलंकारता है।

एक महाशय इस अलंकार की यह परिभाषा लिखते हैं—

“काव्यलिङ्ग जहँ युक्ति सों अर्थ समर्थन होय” ।

एक दूसरे महाशय यो लिखते हैं :—

करै समर्थन युक्ति बल काव्यलिंग है सोय ।

कहुँ सुभाव कहुँ हेतु कहि कहुँ प्रमान दे होय ॥

तात्पर्य तीनों परिभाषाओं का यही है कि 'किसी कही हुई बात का समर्थन कुछ हेतु सूचक बात कहकर करे ।

पुनः—

१-वृथा विरस बातैं कराति लेति न हरि को नाम ।

यह न आचरज है कछू 'रसना' तेरो नाम ॥

२-अब न मोहि डर बिघन को करत कौन हू काज ।

गननायक गौरी तनय भयो सहायक आज ॥

३-श्याम गौर किमि कहौं बखानी । गिरा अनेन नैन बिनु बानी
(यहाँ न कह सकने का कारण बहुत ही अच्छा कहा गया है)

(६५)-अर्थान्तरन्यास

अर्थान्तरन्यास = दूसरे प्रकार का अर्थ रखना ।

दो० साधारण कहिये बचन कछु अवलोकि सुभाय ।

ताको पुनि दृढ़ कीजिये प्रगट विशेष बनाय ॥

कै विशेष ही दृढ़ करै साधारण कहि 'दास' ।

ताको नाम बखानहीं कहि अर्थान्तरन्यास ॥

बिबरण-पहले कोई बात कही जाय, फिर यदि वह बात साधारण हो तो विशेष उदाहरण से और यदि विशेष हो तो साधारण सिद्धान्त से उसका समर्थन किया जाय । इन दोनों प्रकार के कथनों में अर्थान्तरन्यास अलंकार माना जाता है ।

(साधारण की दृढ़ता विशेष से)

दो०-कारण ते कारज कठिन होय दोष नहीं मोर ।

कुलिश अस्थि तें उपल ते लोह कराल कठोर ॥

इसमें दोहे के पूर्वाद्ध में एक सामान्य बात कह कर उत्तराद्ध में विशेष प्रमाण द्वारा वही बात पुष्ट की गई है । पुनः—

१-दो०-बड़े न हूँ गुणन बिनु विरद बड़ाई पाय ।

कनक धतूरे सों कहत गहनो गढ़ो न जाय ॥

२-दो०-अति लघुहू सतसंग तें लहत उच्च पदवीसु ।

कीट सु लाहि सँग सुमन को चढ़त ईस के सीसु ॥

३-दो०-जे छोड़त कुल आपनो ते पावत बहु खेद ।

लखहु बंस ताजि बांसुरी लहै लोह को छेद ॥

४-दो०-लागत निज मन दोष ते सुन्दर हू विपरीत ।

पित्त रोग बस लखाहि नर सेत शंख हू पीत ॥

५-दो०-वरजत हूँ जाचक जुँ दानवंत की ठौर ।

करी करन भारत रहैं तऊ भ्रमैं तहैं भौर ॥

६-राम भजन बिनु मिटहि न कामा ।

थल बिहीन तरु कबहुँकि जामा ॥

७-छोटे, बड़े पद को पहुँचै जब पावत हैं सतसंग बिलास को ।
पान के साथ है जात लखोक्षिति नाथ के हाथ लौं पात पलास को ॥

(विशेष का समर्थ सामान्य से)

१-असकहि चला विभीषण जबहीं । आयुहीन भे निश्चर तबहीं

साधुभवज्ञा तुरत भवानी । कर कल्याण अलिख कर हानी ॥

यहां पहले विशेष बात कही कि ज्यों ही विभीषण लंका

को त्याग कर रामजी की शरण को चला त्योंही सब निश्चर आयुहीन हो गये, फिर साधारण सिद्धान्त से “साधुओं की अवज्ञा सर्व कल्याण को विनाश करती है” उसकी पुष्टि की गई। इसी प्रकार और भी जानो।

दो०—हरि प्रसाद गोकुल बच्यो, का नहिं करहिं महान।

इसमें हरि प्रताप गोकुल बच्यो = यह विशेष बात है।

का नहिं करहिं महान = सामान्य बात से समर्थन है ॥

३—धूरि चढ़ी नभ पौन प्रसंग ते कीच भई जल संगति पाई।
फूल मिलै नृप पै पहुँचै कृमि काठन सग अनेक व्यथाई ॥

चंदन संग कुदारु सुगंध है नीब प्रसंग लहै करवाई।

दास जू देखो सही सब ठौरन संगति को गुण दोष सदाई ॥

इसमें प्रथम के तीन चरणों में विशेष बातें कहके चौथे चरण में साधारण सिद्धान्त द्वारा उन सब की पुष्टि की गई है। पुनः—

४—दो०—कैसे फूले देखियत प्रात कमल के गोत।

‘दास’ मित्र उद्दोत लखि सबै प्रफुल्लित होत ॥

५—परशुराम पितु आज्ञा राखी। मारी मातु लोक सब साखी ॥

तनय ययातिहि यौवन दयऊ। पितु आज्ञा अध अयश न भयऊ ॥

दो—अनुचित उचित विचार ताजि जे पालहिं पितु बैन।

ते भाजन सुख मुजस के बसहिं अमरपति ऐन ॥

सूचना—(काव्यलिङ्ग और अर्थान्तरन्यास का भेद)

काव्यलिङ्ग में कथित बात के समर्थन की जरूरत जान पड़ती है और बिना समर्थन किये पाठक को शंका बनी रहती है। यह समर्थन कारणवत् होता है। अर्थान्तरन्यास में समर्थन कारणवत् नहीं बल्कि उद्देश्यवत् होता है, और अगर समर्थन न भी किया जाय तो भी बात पूरा हो जाती है।

(६६)-विकस्वर

विकस्वर = विकसनशील ।

दो०-कहि विशेषं सामान्य पुनि कहिये बहुरि विशेष ।

ताहि विकस्वर कहत हैं जिन के बुद्धि अशेष ॥

बिबरण-पहले कोई विशेष बात कही जाय । उसके समर्थन को साधारण बात कही जाय, पर इतने से भी सन्तुष्ट न होकर फिर किसी विशेष उदाहरण से उसका समर्थन किया जाय । यथा:—

१-दो०-बड़ी विपति पांडवन पै खोई हारि सुवाम ।

दुख न गनत कछु सत पुरुष, ज्यों हरिचंद, नल, राम ॥

यहां बड़ी विपति..... सुवाम=एक विशेष वर्णन है ।

दुख न गनत कछु सत् पुरुष=पुनः सामान्य से पुष्टि है ॥

ज्यों हरिचंद, नल, राम=पुनः विशेष से पुष्टि है ।

२-वारिध बांधि सिलान सों राम जू लै कपिको दल रावन मारो । कारज ये समरत्थन के चाहिये इनको न अकत्थ विचारो ॥

‘गोकुल’ देत कहे सो सुनो सति मानि हिये मति में निरधारो ।

गोपन के हित हैत गोपाल लखो शिशुताइहि में गिरि धारो ॥

यहां प्रथम चरण में एक विशेष बात कही गई है । दूसरे चरण में सामान्य से उसकी पुष्टि है और चौथे चरण में विशेष से पुनः उस सामान्य की पुष्टि की गई है ।

सूचना-स्मरण रखना चाहिये कि इस अलंकार में अन्तिम पुष्टिकरण या तो उपमान वाक्य से होता है या अर्थान्तरण्या से । पहले उदाहरण में उपमान से पुष्टिकरण किया गया है और दूसरे में अर्थान्तरण्या से । इसी तरह नीचे के उदाहरणों में भी समझलो ।

३-देती स्वकीय तू पीको सुखै निजु केती बगारत हू मति

सैली । 'दास' जूये गुण हैं जिनमें तिनही की रहै जग कोरति
फैली ॥ बात सही बिधि कीन्हो भलो तेहि योही भलाइन सो
निरमैलो । काटि अंगारन में गहि गेरेहु देत सुबासना चंदन चैली ॥

इसमें प्रथम चरण में विशेष, दूसरे में सामान्य, पुनः
चौथे में विशेष है ।

पुनः

४-रत्न अनंत जनक हिमपरवत । महिमा घटहि न जो शीतल अत ।

हूबत एक दोषगुण गण में । शशि कलंक जैसे किरनन में ।

इसमें प्रथम दो चरणों में एक विशेष बात कही गई है ।
तासरे चरण में सामान्य से उसकी पुष्टि है । चौथे चरण में पुनः
उपमान वाक्य से विशेष कहकर सामान्य को पुष्टि की गई है ।

पुनः

५ इन्द्र को साँमा सुदाबा को कृष्ण दई मिलतै न गयो पल-
सेखो । में कहौं जो सो सुनो मन दै इतने कोन आप अपूरब
लेखो । रीति बड़ेन की ऐसई है रघुनाथ कहै उरमें अवरेखी ।
अंक लगाय मिले रघुनाथक लंक बिभीषण को दई देखो ।

(६७)-प्रौढोक्ति

दो०-हेतु न जो उत्कर्ष को कल्पित कीजै नौन ।

प्रौढोक्ति तासों कहत कवि कोविद मति भौन ।

दो०-ईस सीस के चन्द्र सो अमल आठहू जाम ।

सुरसरि तट के वरफ तें धवल सुजस तव राम ॥

महादेव के शीश पर का चन्द्रमा और गंगा तट का बर्फ
कुछ अधिक सफेद नहीं होते, तथापि कल्पना की गई है ।
इसी को प्रौढोक्ति कहते हैं ।

पुनः-तेरो जस सुरसरित के पुंडरीक सो सेत ।

(कवित्त)

मानसर बासी हंस बंस न समान होत, चंदन सों घम्यो
घनसारऊ घरीक है। नारद की सारद की हांसी में कहां
की भास शरद की सुरसरि को न पुंडरीक है। भूपत
भनत छक्यो छीरधि में थाह लेत फेन लपटानो ऐरावत को
करी कहै। कयलासईस ईससीस रजनीस वही अवनीस
सिवा के न जस को सरीक है।

बि०—हंस मानसर बासी होने से कुछ अधिक सफेद नहीं
हो जाते। इस प्रकार चंदन के संग से कपूर, नारद और सारद
की होने से हंसी, शरद ऋतु की गंगा का होने से स्वेत कमल,
कुछ अधिक स्वेत न होंगे, परन्तु कल्पना की गई है। इसी
प्रकार और भी समझ लो।

पुनः

सवैया—पान किये हूँ दवानल को जेहि को अधरास
नाहिं ढढ़ै री। ता के लगी मुख सों यह जाय तो ज्वाल सी
तानन क्यों न गढ़ै री। गोकुलनाथ के हूँ थ बसी है बिसासिनी
नाथिबे ही को बढै री। छेदति या हिय को बैसुरी सखि
पाहन फोरि के बांस कढ़ै री।

यहां वंशी की उत्कर्षताके जो हेतु कहे गये हैं, वास्तव में
वे उसकी उत्कर्षताके हेतु नहीं हैं, तो भी कल्पित किये गये हैं।

(६८)—संभावना

दो०—‘ होय जु यों तो होय यों ’ जहँ कहूँ वर्णन होय।

अलंकार संभावना ताहि कहैं सब कोय ॥ यथा:—

१—दो०—उगै जाँ कातिक अंत की छनदा छोड़ि कलंक।

तो कहूँ तेरे वदन की समता लहै मयंक ॥

२-जो छबिसुधा पयोनिधि होई । परमरूपमय कच्छप सोई
सोभा रज्जु मंदर सिंगारू । मथै पाणि पंकज निज मारू ।

यहि विधि उपजै लक्षि जब सुन्दरता सुखमूल ।

तदपि सकोच समेत कबि कहैं सीय समतूल ॥

३-जो तुम अबत्यो मुनि की नाई । पदरज सिर सिसु धरत गोसाई

४-मीत न नीत गलीतहै जो धन धरिये जोर ।

खाये खड़े जो बचै तो जोरिये करोर ॥

संज्ञा 'प्रमाण' अलंकार के अन्तर्गत एक भेद 'संभव' भी है। उसमें और इस संभावना अलंकार में यह भेद है कि इसमें तो निश्चय कहा जाता है कि 'यदि ऐसा होता तो ऐसा होता' और इस 'संभव' में केवल यह कहा जाता है कि "ऐसा होना संभवित है"। हो या न हो, यह निश्चित नहीं।

(६६)-मिथ्याध्यवसित

(मिथ्या बात को निश्चित कर लेना कि यह ऐसा ही है)

दो०--जहँ मिथ्याको सत करै कहि मिथ्या कह्यु और ।

मिथ्याध्यवसित होत है अलंकार तेहि और

(यथा)

१--जो आजै नभ कुसुम रस लखै सो अहि के कान ।

२-गोकुल नाथ सुनो बन में यह आजु बड़ा अबरज्जहि लेख्यो ।

एक सत्ता गहि दौरिकै सिंहहि फारत पेट पछारत पेख्यो ।

मीत कछो यह सो सब साँच है ईश्वर की महिमा अवरेख्यो ।

इंदुर एक दुरद को आज नदी तट में गह्यो लीलत देख्यो ।

३-ससा सींग के धनुष लिय, गगन कुसुम धरि माल ।

खेलत बंध्यासुतन सँग तुव अरिगण द्वितिपाल ।

४-तेरो कुजस सुनाइवे, बधिरन बसुधा बार ।

गावत गूंगो कल्लुक पी, दूध उदधि के तीर ।

५-या भूषति के अयश निहारे । गने परारध ते अति भारे ।
गावत हैं गूंगा गण खरे । जिनके बचन समझ नहिं परे ।

६-मैं चढ़ि सौध अमंद, गहे मूठि भरि कै नखत ।

पीत महं गहि चंद अंक लिये कब लौं रह्यौ ।

७ शश सींग की करि लेखनी मसि कुरंगतृष्णा नीर ।

आकाशपत्रहिं पर लिख्यो कर हीन कोउ कविबीर ।

जनमांध पंगुर मक बंध्या को जु सुत लै जाय ।

जसनंत अपजस बधिर गन को है सुनावत गाय ॥

(७०)—ललित

दो०-ललित अलंकृत जानिये क्यौं चाहिये जीन ।

ताही के प्रतिबिंब ही बरनन कीजै तौन ।

विवरण-जो वृत्तान्त कहना है, उसे न कह कर केवल
उसका प्रतिबिम्बमात्र कहा जाता है । यथा:—

१-निखत सुधाकरगालखि राह । बिधिगति बाम सदा सबकाहू ।

यहां “रा. जी का राज्याभिषेक था सो तो न हुआ उलटा
बनवास हुआ ” यह प्रस्तुत वृत्तान्त है, सो नहीं कहा, उसका
प्रतिबिम्ब मात्र कहा गया ।

२-सोचहिं दूषण दैवहिं देहीं । बिरचत हंस काक किय जेहीं ।

३-यहि पापिनिहि सूझि का परेऊछाय भवन पर पावक धरेऊ ।

४-दो०-सुनिय सुधा देखिय गरल सब करतूति कराल ।

जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सकृत मराल ॥

‘रामराज्य का चाँ केवल सुनने में आया, देखने में न
आया ’ यह कहना था. सो न कह कर यों कहा ।

५-मेरी सीख सुनति न सखि उलटे उठति रिसाय ।

सोयो चाहति नींद भरि सेज अंगार बिझाय ॥

७-तब न सीख मानी अली कियो विचार न कोय ।

चाखो चाहति अमृत फल विष को बीजा बोय ।

७-हे रघुनाथ कहा कहिये कहते कछु बात नहीं बनि आवैं ।

देखति हौ इनकी मति को ऋतु पावस बीति गये घर छावैं ।

(७१)-प्रहर्षण-(त्रिविधि)

(प्रहर्षण = मनचाहा आनन्द)

१-(प्रथम)

दो० जतन बिना ही होत है जहँ चित चाही बात । जैमे:-

१-दो०-जाको रूप अनूप लखि साखि न गयो धरि धीर ।

आपुहि ने गया दूहन आयो वही अहीर ॥

२ सातहु दीपन के अवनीपति द्वारि रहे जिय में जब जाने ।

बीस बिसे व्रत भंग भयो सु कहो अब केशव को धनु ताने ।

शोक की आग लग्यो परिपूरण आय गये घनश्याम बिहाने ।

जानकी के जनकादिक के सब फूलि उठे नर पुन्य पुराने ।

३-नाथ सकल साधन में हीना । कीन्ही कृपा जानि जन दीना ।

४-निश्चर हीन करों महि भुज उठाय व्रत कोन ।

सकल मुनिन के आश्रमन जाय जाय सुख दीन ॥

(मुनि लोग ऐसा चाहते ही थे, वहां बात बिना किसी आग्रह के रामजी ने कह दी और स्वयं ही उनके आश्रमों पर गये, उन्हें कोई विशेष उद्योग नहीं करना पड़ा)

५-खुलि गये सकल पटलके तारे । भये निद्रा बस सब रखवारे ।

अह बसुदेव देवकी दोऊ । छूटि गये बंधन ते सोऊ ।

६-रामकृपा भवनिशा लिरानी जागे पुनि न डसैहौ । (विनय)

(राम कृपा से ऐसी बात हुई, किसी उद्योग से नहीं)

सूचना-आपुहि ते, राम कृपाते, अनायास ही, अचानक ही, इत्यादि या इसी अर्थ के अन्य वचन इस अलंकार के बाचक जान पड़ते हैं ।

२-(द्वितीय)

दो०-जहँ चित्त चाही बात तें अधिक अरथ सिधि होय ।

१-दो०-बहत सात पावत सहस गज पावत दय चाहि ।

भाउ सिंह दीवान है जगत सराहत जाहि ॥

२-धरहु धीर छै हैं सुन चारी । त्रिभुवन विदित भगन-भयहारी
(राजा दशरथ एक पुत्र मांगने गये थे, चार पाये)

३-इक फल चाहि पूजत सिवहि तुरत मिलें फल चारि ।

४-आपुन के कर में बसिबेको बजार में रावरे हाथ बिकाने ।
भाग लखो मुकतान को एजू हरा है रहैं हियरे लपटाने ।

३-(तृतीय)

दो०-ढूँढ़त जाके जतन को वस्तु चहै कर आन

(यथा)

१-दो०-हरि की सुधि को राधिका चली अली के भौन ।

हँसत बीचही मिलि गये वरनि सकै सुख कौन ॥

२-निधि अंजन की औपधी ढूँढ़त लह्यो निधान ।

(भूमि में गड़े हुए धनको देखने के लिये एक अंजन बनना है । उसे “ निधि-अंजन ” कहते हैं । उस निधि अंजन की औपधी को ढूँढ़ते हुए भूमि में गड़ा हुआ धन ही मिल गया)

(७२)-विषादन

दो०-जहँ चित्त चाही वस्तु तें पावै वस्तु विरुद्ध ।

बुद्धिबंत नर वरनहीं तहां विषादन शुद्ध ॥

१-दो०-उड़िहौं खिलिहै कमल जब निशि वीते परभात ।

यों सोचत आलि कोश गत तोरथो करि जनजात ॥

(किसी कमलकोश में बन्द हुआ भौरा सोच रहा था कि कलह सबरे इस बंदीखाने से निकलूंगा कि इतने में किसी हाथी ने आकर वह कमल तोड़ मरोड़ डाला)

२-एक विधातहिं दूषण देहीं । सुधा दिखाय दीन विष जेहीं ।

३-लिखत सुधाकर गा लिखिराह । विधिगति बाम सदा सबकाह ।

४-जेतो औगुन दूँडिये गुनै हाथ परिजाय ।

सू०-इन उपरोक्त चौपाइयों में वाक्यार्थ से 'लसित' अलंकार है, परन्तु व्यंग्यार्थ से 'विषादन' भी है-रामराज्याभिषेक चितचाही बात न हुई, वरन् उसके विरुद्ध उन्हें बनवास दिया गया-यह इच्छा से विरुद्ध हुआ । अतः विषादन है ।

पुनः

४-कन देबो सौँप्यो ससुर बह भुरहथी जानि ।

रूप रहँचटे लगि लग्यो मांगन सब जन आनि ।

(७३)-(उल्लास)

दो०-औरहि के गुण दोष तें औरहि को गुण दोष ।

होत, तहां उल्लास कहि वरनत मति के कोष ॥

विवरण-उल्लास शब्द का अर्थ है "प्रबल संबंध" । जहाँ संसर्ग संबंध से संगति का गुण दोष अन्य में वर्णन किया जाय वहाँ यह अलंकार होता है । इसके चार भेद हैं । यथा:—

१-(पहला)

दो०-और वस्तु के गुणन तें और होत गुणवान ।

(यथा)

१-सठ,सुधरहि सतसंगति पाई । पारस परसि कुधातु सोहाई ।

२-सजन सकृत् जिधु सम कोई । देख पूर बिधु बाढ़हि जोई ।

३-कह्यो देवसरि प्रगट है ' दास ' जोरि युग हाथ ।

भयो सीय तुव न्हान ते मेरो पावन पाथ ॥

४-कुटिल कुराही कूर कलही कलकी कलिकाल की कथन में
रहे जे मति खोइ कै । तेऊ विष्णु अंगन में बैठे सुरसंगन मे
गंग की तरंगन में अंगन को धोइ कै ।

५-दो०-नृप सभान में आपनी होन बढ़ाई काज ।

साहि तनय शिवराज के करत कवित कविराज ॥

६-मज्जन फल देखिय ततकाला । काकहोहि पिक बकहु मराला ।

२-(दूसरा)

दो०-लगे और के दोष तें दोष जु औरहि आय ।

(दोहा)

१-संगति को गुण सांच है कहैं जु गुनी रसाल ।

कुटिल कूबरी संग ते भये त्रिभंगी लाल ॥

२-दुखित होंहि पर विपति विशेषी ।

३-रहिवो उचित न मलय तरु, यहि कुवंश बन माहि ।

घसत परस्पर हैं अगिन, औगडु तरु जरि जाहि ॥

४-शिव सरजा के वैर को, यह फल आलमगीर ।

छूटे तेरे गढ़ सैंव, कूटे गये बजीर ।

५-स्याम सुरति करि राधिका कहति तरणिजा तीन ।

अमुवन करति तगैस को छिन खारोंहों नीर ।

६-निरखु परस्पर घसन सों याँस अनल प्रगटाय ।

जरत आपु सकुटुंब अरु बन हू देत जराय ॥

७-भूलि गयो अपनो दुख ता छिन बानर के दुख नैन बढ़ाय ।

३-(तीसरी)

दो०-बर्ने ते गुण और में दोष और को होत ।

१-" जगहिं सदा पर सम्पति देखी " ।

२-चंद अलोक ते लोक सुखी यह कोक अभागो न शोकते छूटै ।

३-दो०-बरसे वारिद के लता तृण तरु सब हरियात ।

भाग्य लखो या आक को जल हू सों जरिजात ॥

४-आक तबास पात बिन भयऊ । जिमिसुरा ज्य खल उद्यमगयऊ ॥

४-(चौथा)

दो०-अवगुण ते जहँ और के गुण औरहिं परकास ।

(यथा)

१-खल परिहास होय हित मोरा ।

२-परहित हानि लाभ जिन केरे ।

३-सुखी होहिं पर विपति विशेषी ।

४-दावरे की बुद्धि है केँ बावरे न कोजै बैर रावरे के बैर होत काज भिवराज के ।

सूचना ग्रहण रखना चाहिये कि यह 'व्यास' अलंकार 'असंगति' अलंकार के प्रथम भेद से बहुत कुछ मिलता जुलता है। दोनों में भेद यह है कि इसमें कार्य कारण का संबंध है और इस अलंकार में केवल स्वभाव की अपेक्षा है, कारण कार्य की नहीं।

(७४)-अवज्ञा

दो०-और के गुण दोष ते और गुण नहिं दोष ।

नहिं अवज्ञा कहत हैं सकल सुकवि मतिपोष ॥

विवरण—यह अलंकार 'उल्लास' का उलटा है। इसके दो भेद हैं।

(प्रथम)

दो०—जहां एक के गुणन तें दूजों गुणाहि गहै न ।

(यथा)

१-दो०—करि वेदान्त विचार हू शठहिं विराग न होय ।

रंच न मृदु मैनाक भो निशि दिन जलनिधि सोय ।

२-देखो अभाग कलानिधि को 'रघुनाथ' सदा शिव शीश पै जाग्यो ।

जैसे को तैसे कलंकरहो शिव संगति को गुण नेकु न लाग्यो ।

३-विपुल बारि वरपत जलद तरु तृण सब हरियात ।

इन पापीन करील में कबहुँ न उलहत पात ।

४-बड़वानल सह सिंधु जल उष्ण न द्रोत निहार ।

५-तुलसी प्रभु भूषण किये गुंजा बहो न मोल ।

(दूसरी)

दो०—जहां और के दोष ने दोष न और होय ।

(यथा)

१-सब तरुवर नय दल लहैं रितु वसंत के माहिं ।

पत्र न लगैं करील महुँ दोष वसंतहि नाहिं ॥

२-तिमिर तोम तुरंत मिटै प्रगटे जाहि कलूक ।

कहा दोष दिननाथ दिन देखै जो न उलूक ॥

३-मोती संग जु पात के पहिरै वाला कोय ।

तो महिमा मुकुतान की घटै न नेकौ सोय ॥

४-कहा भयो जो तजत हैं मिलन मधुप दुख मानि ।

सुवरन वरन सुवास युन चंपक लहै न हानि ॥

५-दोष बसन्त को नेक नहीं उलहै न करील की डार जु पाती ।

६-दो०-कह बसंत को दोष जो पत्र न लहै करील ।

दूषण मेयहिं कौन जो चातक मुख नहिं नीर ॥

७-वराधि विश्व हरपित करत हरत ताप अघ प्यास ।

तुलसी दोष न जलद को जल ते जरै जवास ॥

८-तुलसी देवल देव को लागे लाख करोर ।

काक अभागै हागि भरो महिमा भई कि थोर ।

(७५)-अनुज्ञा

(अनुज्ञा — जो अंगीकार करने योग्य न हो उसे अंगीकार करना)

(दोहा)

उच्छा करिये दोष की दोषहिं में गुण देखि ।

ताहि अनुज्ञा कहत हैं सुकविन मत अवरोखि ॥

१-मुनि शाप जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह में माना ।

देख्यो भरि लोचन हरि भवमोचन यहै लाभ शंकर जाना ॥

२-रामहि चितव सुरेश सुजाना । गौतम शाप परम हित माना ।

३-तप करिकरि कमलापति सों मांगत यों लोग सब करि
मनोरथ ऐसे साज के । दीपारी जहाज के न राजा भारी राज के
मिखारी हमें कीजे महाराज शिबराज के ॥

४-चेरिये पै जो गोपाल रचै तो चलाई सबै मिलि चैरा कहावैं ।

कृषर ही पै लगै मन जो सब कम्मर टोरि के हांड़ी बंधावैं ॥

५-होउ बिपति जामें सदा हिये चढ़त हरि आनि ।

(७६)-तिरस्कार

दो०-त्यागिय आदरणीय हूँ लाखिय जो दोष विशेष ।

तिरस्कार भूषण कहैं जिनकी सुमति अशेष ॥

(यथा)

- १-दो०-जरौ सु सम्पति सदन सुख सुहृद मातु पितु भाय ।
 सनमुख होत जो रामपद करै न सहज सहाय ॥
- २-जाके प्रिय न राम बैदेही ।
 तेहि त्यागिये कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही ।
- ३-जिन होवहु तिय श्रिय विभव गज तुरंग कल बाग ॥
 जिनके बस नर करत नहिं हरिचरणन अनुराग ।
- ४-सो सुख धर्म कर्म जरि जाऊ । जहँ न रामपद पंकज भाऊ ॥
- ५-वा सोने को जारिये जाते फाटै कान ।

(७७)-लेश

- दो०-जहँ बरणत गुण दोषकै कहै दोष गुण रूप ।
 भूषण ताको लेश कहि गावत सुकवि अनूप ॥

(दोष को गुण मानना)

- १-दो०-नहिं राजा ते दंड भय नहिं कछु चोर कलेस ।
 नाहिं दिवाले तें ढरें धनि दरिद्रको देस ॥
- २-कोऊ बचन न सामुहे सरजा सौं रन साजिं
 भली करी पिय समग ते जिय लै आये भाजि ॥
- ३-कागा परत न बंध में श्रुतिकटु वचन उचारि ।
- ४-निर्गुणता जग धन्य है धिक गुणगौरवताहि ।
 और विटप सुख से रहै चंदन तरु कटि जाहि ॥
- ५-बालिपरम हितु जासु प्रसादा । मिल्यो रा न तुम शमन विपादा ।
- ६-जो नहिं होत मोह अनि मोहीं । मिल्यो तान कवन बिचिनाही ॥

(गुण को दोष मानना)

१-कंद होत सुक सारिका मधुरी बानि उचारि ।

२-मुनि बिनुकाजकरिय कत रोषू । कतहुं सुधाइहुं ते बड़ दोषू ॥

३-सुक सारिक जो पढ़ते नहीं । तो कत परत पिंजरन माहीं ॥

शब्द बंध शर जो न चलीति । अंध शाप कत दसरथ पोंते ।

रवि शशि जो न करत परकासा । तो संतत कत फिरत उदासा ॥

जो न होत रघुपति के दाया । तो बन दुख कत सहत निकाया ॥

(७८)-मुद्रा

दो०-प्रकृति अर्थ में मिलहिं पद औरहु नाम प्रकास ।

मुद्रा तासों कहत हैं कवि जन सहित हुलास ॥

बिबरण-प्रस्तुत अर्थ के कथन करनेवाले पदों से जहां कोई दूसरा सूचनीय अर्थ भी निकलता हो, वहां मुद्रा अलंकार माना जाता है ।

(यथा)

दो०-मुनि मुरली सुर धुनि सखी गो मति को साविवेक ।

जमुनायकु हित को भयो सरसइ हिय धरि टेक ॥

इस दोहा में प्रस्तुत अर्थ के अलावा सुधुनि (गङ्गा) गोमति (गोमती) जमुना और सरसइ (सरस्वती) नदियों के नाम भी सूचित होते हैं ।

(केशवकृत रामचंद्रिका में अयोध्या के वर्णन में यह छंद है)

कविकुल विद्याधर सकल कलाधर राज राज चरवेश बने ।

गणपति सुखदायक पशुपति लायक सूर सहायक कौन गनै ॥

मेनापति बुधजन मंगल, गुरुगत, धर्मराज मन बुद्धि धनी ।

बहु शुभ मनसाकर करुणामय अरु सुर तरंगिनी सोभ सनी ॥

इसमें अयोध्या नगरी का वर्णन प्रस्तुत है, पर साथही इस में ऐसे शब्द आये हैं जिनसे देवपुर (अमरावती) की भी सूचना मिलती है।

पुनः—यच्चौ मैं प्रभूते यही हाथजोरी। फिरे आपुते ना कबौ बुद्धिमोरी।
भुजंगप्रयातोपमा चित्त जाको। जुरै ना कदा भूलि कै संग ताको।

इस छन्द में ईश्वर प्रति विनय रूपी प्रस्तुत अर्थ के अलावा यह भी सूचित होता है कि यही छन्द ' भुजंगप्रयात ' नामक छन्द का उदाहरण भी है। ' यच्चौ ' शब्द से सूचित होता है कि (य, चौ) अर्थात् चार यगण का यह छन्द होता है।

इसी प्रकार और भी समझ लेना चाहिये। कबिवरजगन्नाथ प्रसाद (भानु) कृत ' छन्दप्रभाकर ' ग्रंथ के वर्णिक छन्दों में उदाहरणों में सर्वत्र यही अलंकार निवाहा गया है।

सूचना—कभी नाटक ग्रन्थ में अथवा कथा ग्रन्थ में चतुर कविआदि में ही कोई ऐसा छन्द रख देता है कि जिससे समस्त ग्रन्थ में वर्णित कथा की सूचना मिल जाती है। ऐसे छन्द में मुद्रा अलंकार माना जाता है।

(अनघगघव नाटकमें आदिही में सूत्रधार कहता है)

दो०—नीति रीति सों चलत तेहिं तिर्यक होत सहाय।

कुपथ चलै तेहि को तजहिं सादर हू जग भाय ॥

(अथवा)

जो जन नय पथ विचरन लायक। तिर्यक हू तेहिं होत सहायक।

जो जग में अनीति मग भजहीं। तुरत सहोदर हू तेहि तजहीं ॥

(इन कविताओं से नाटक की पूरी कथा की सूचना मिलती है)

बाबू हरिश्चन्द्र कृत ' मुद्राराक्षस ' नाटक के आदि में यह दोहा है।

दो०—चन्द्र बिंब पूरण भये क्रूर केतु हठ दाप ।

बल सों करिहै ग्रास कह जेहि बुध रन्त आप ॥

इस दोहे से 'मुद्राराक्षस' नाटक में वर्णित चंद्रगुप्त, मलय केतु और बुध (चाणक्य) की काररवाई की सूचना मिलती है।

इसी प्रकार 'रत्नावली नाटिका' तथा 'प्रेमयोगिनी' में बाबू हरिश्चन्द्र ने यह दोहा नांदी में कहलाकर ग्रंथ के वर्णन की सूचना दिलवाई है:—

दो०—भरित नेह नय नीर नित वरसन सुरस अथोर ।

जयति अपूरब घन कोऊ लाखि नाचत मन मोर ॥

इसी प्रकार गोस्वामीतुलसीदास कृत रामायण में आरग्य कांड का यह सौरठा कांड भर की कथा की सूचना देता है।

सो०—उमा रामगुण गूढ़, पण्डित मुनि पावहिँ विरति ।

पावहिँ मोह विमूढ़, जे हरिविमुख न धर्म रति ॥

सुन्दरकाण्ड के आदि का यह श्लोक कांड भर की कथा का सूचक है:—

अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहं, दनुजवन्तशानुं ज्ञानि-
नामाग्रगण्यं । सकलगुणनिधानं वाभराणामधीशं रघुर्पाति वर-
दूतं वातजातन्तमामि ॥

लंकाकांड के आरंभ का यह दोहा लंकाकांड भर की कथा का सूचक है:—

दो०—लव निभेष परमाण युग वरप कल्प शर चण्ड ।

भजासि न मन तेहि राम कहँ काल जासु कोदण्ड ॥

सूचना—फारसी और उर्दू में इस अंतर्कार को 'मिराआतुअजीर' कहते हैं। उर्दू में इसी को 'ज़िला' भी कहते हैं। एक उदाहरण यह है।

नजर बदली जो देसी उस सनम की । नदी नालों ने फुसंत
बक दम की ।

यहां प्रस्तुत अर्थ के सिवाय-बदली, नदी, नाला से अन्य
सूचनीय अर्थ भी निकलते हैं ।

(७६)-रत्नावली

दो०-प्रस्तुत अर्थ कहत कहैं क्रम में औरौ नाम ।

वहै मचिर रत्नावली अलंकार मुख धाम ॥

(यथा)

‘ रसिक चतुरमुख लक्ष्मिपति सकल ज्ञान के धाम ’

अर्थात् हे रसिक तुम चतुरों में मुख्य हो लक्ष्मीवान हो, और
संपूर्ण ज्ञान के धाम हो । यह प्रस्तुत अर्थ हुआ । परंतु साथ ही
अन्य नाम भी क्रम से निकलते हैं अर्थात् चतुरमुख = ब्रह्मा,
लक्ष्मीपति = विष्णु, सकल ज्ञान के धाम = शिव ।

(कवित्त)

जीतहि जे रावत ऐरावत सों जंग अंग पुं डरीक के गनत
पुं डरीक लद हैं । वामन वामन मृदु कुमुद कुमुद गने अंजन के
जितबार अंजनसे कद हैं । पुष्पदंत हू के दंत तौरें ज्यों बहुपसार
छीन लेत सार्वभौम हू के सदा मद हैं । प्रबल प्रतीक सुप्रतीक
के जितैया रैयाराव भाऊसिंह तेरे दान के दुरद हैं ।

यहां भाऊसिंह के दिये हुए हाथियों की प्रशंसा तो प्रस्तुत
अर्थ है, पर साथ ही आठों दिग्गजों के नाम क्रम से निकलते
हैं-अर्थात् ऐरावत, पुं डरीक, वामन, कुमुद, अंजन, पुष्पदंत-
सार्वभौम और सुप्रतीक । (पुनः)

रबी सिर फूल मुखै ससि तूल महीसुत बंदन बिंदुसुभांति ।
पना बुध केसर आड़ गुरी नथ मोतिय शुक करै दुख शांति ।
शनी है सिंगार बिधुंतुद बार सजै भस्त्रकेतु सबै तन कांति ।
निहारिय लाल भरी सुखजाल बनी यह बाल नवग्रह पांति ।
इसमें क्रम से ' नवग्रह ' के नाम आये हैं—

आदित सोम कहौ कबहुं कबहुं कही मंगल औ बुध हो ते ।
औ गुरु शुक सनीचर को कहिबो कबहुं मुख सो नहि रीते ।
मोहि न जानि परै रघुनाथहि भेंट को है दिन कौन सो नीते ।
आवत जात मैं हारि परी तुम्हैं बार बतावत बासर बीते ।

इसमें सातों दिनों के नाम क्रम से आये हैं। इसमें यह आवश्यक है कि कही हुई वस्तुओं का प्राकृतिक क्रम भंग न होने पावे ।

(८०)—तद्गुण

दो०—छोड़ि आपनो गुण जहाँ औरन को गुण लेत ।

अलंकार तद्गुण तहां बरनै कवि करि हेत ॥

विवरण—'गुण' शब्द का अर्थ इस अलंकार में केवल ' रंग ' है । उल्लास और अवज्ञा अलंकारों में गुण का अर्थ ' धर्म ' अथवा ' दोष ' का विरोधी भाव है । यह अन्तर भली प्रकार समझ लेना चाहिये ।

भूषण ने स्पष्ट कहा है :—

दो०—जहां आपनो रंग ताजि गहे और को रंग ।

ताको तद्गुण कहत हैं भूषण बुद्धि उतंग ॥

(यथा)

१—जाहिरै जागत सी जमुना जब बूड़ै बहै उमहै वह बेनी ।
त्यों पदमाकर हीर के हारन गंग तरंगन सी सुखदेनी । पायव

के रँग सों रँगि जात सी भांति ही भांति सरस्वती सेनी । तैरे
जहां ही जहां वह बाल तहां तहां ताल में होत त्रिवेनी ।

२-गई बिशद रँग रुचिरई भई अरुण छावि नौल ।

लै मुकुता कर में करति तूं मूंगा को मौल ।

३-सोन जुही सी होति दृति मिलत मालती माल ।

४-अधर धरत हरि के परत ओंठ डीठि पट ज्योति ।

हरित बांस की बांसुरी इन्द्रधनुष रँग होति ।

सूचना-किसी किसी आचार्य का मत है कि 'रँग' के अलावा 'रस' और 'गंध' भी इसी अलंकार का विषय है । परन्तु हमें जितने उदाहरण इसके मिले हैं वे सब रँग ही से सम्बन्ध रखते हैं और भूषण ने तो परिभाषा ही में 'रँग' शब्द कह दिया है ।

(८१)-अतद्गुण

दो०-रहे आन के संगह गुण न आन को होय ।

तादि अतद्गुण कहत हैं कवि कोविद सब कोथ ॥

बिबरण-तद्गुण का उल्टा इसे समझना चाहिये । इसमें भी केवल रँग का विचार ही मुख्य है ।

(यथा)

१-लाल बाल अनुराग सों रँगत रोज सब अंग

तऊ न छाँड़त रावरो रूप साँवरो रँग ॥

२-गंगाजल सित अरु असित जमुना जलहु अन्हात ।

हंस रहत तो शुभ्रता तैसिय बढ़ न घटात ॥

३-सिव सरजा की जगत में राजति कीरति नौल ।

अरि तिय अंजन दृग हरै तऊ धौल की धौल ॥

४-कज्जल इव जमुना जलहिं सासि सम सुरसरि नीर ।

नहात न घट बढ़ स्वतेता राजहंस धनि धीर ॥

(८२)-पूर्वरूप (द्विधा)

(प्रथम)

दो०--बहुरि मिलै गुण आपनो जहां आन के संग ।

पूर्वरूप तहां प्रथम भापैं सुमति उत्तंग ॥

(यथा)

१--लखत नीलमणि होत अलि कर विद्रुम ठहरात ।

मुकुता को मुकुता बहुरि लग्यो तोहिं मुसकात ॥

२--मुकुत माल हरि के हिये मरकत मणिमय होत ।

पुनि पावत निजरूप लाहि राधे मुख उद्योग ॥

१-भूपन यों सिवराज की धाक भये पियरे अरुने रंगवाले ।

लोहे कटे लपटे अति लोहु भये मुँह मीरन के पुनि लाले ॥

४-(बरवारामायण)केश मुकुत सखि मरकत मणिमय होत ।

हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत ॥

सू०-पुनि, बहुरि, फिरि, इत्यादि इसके बाचक हैं ।

(दूसरा)

दो०--वस्तु बिनासे हू बहुरि तरह पीछली होत ।

दृजो पूरवरूप तोहि वरनत पंडित गोत ॥

बिबरण-जिस वस्तु से मिलकर कुछ गुण बढ़ जाना कहा गया हो वा अनुमान किया जाय, उसके बिनष्ट हो जाने पर भी पूर्ववत् (वैसाही जैसा उस वस्तु के साथ रहते समय था) बना रहना वर्णन किया जाय वहां दूसरा पूर्वरूप होता है ।

(यथा)

१-अंग अंग नग जगमगत दीप सिखा सी देह ।

दिया बढ़ाये हू रहत बड़ो उजेरो गेह ॥

२-अथये हू ससि हँसनि की छाई छटा अनूप ।

३-दीप बढ़ाये हू रहै रसनामणि परकास ।

४-अथये हू इन्दुहि तिमिर तोमहि दियो पछेलि ।

चहूँ ओर मुख चन्द की रही चांदनी फैलि ।

भौन अँधेरहुँ बीच गये मुख जोति ते वैसिये होत उज्यारी ।

६-आठयें के ससि हू के अथौत भई मुख रावरे की उजियारी ।

(८३)-अनुगुण

(अनुगुण = गुण का और अधिक बढ़ना)

दो०--पहिले को गुण आपनो बढ़ै आन के संग ।

तासों अनुगुण कहत जे जानत कविता अंग ॥

बिबरण-इस अलंकार में पिछले तीन अलंकारों की तरह केवलरंग ही का ग्रहण न समझना चाहिये वरन् सब ही प्रकार के गुणों का ग्रहण समझना चाहिये ।

(यथा)

१-मुक्त माल हिय हास तें अधिक सेत है जात ।

१-भानुवंश भूषण महीप रामचन्द्र बीर रावरो सुजस फैल्यो
आगर उमंग में । कबि लछिराम अभिराम दूनो शेष हू सों
चौगुनो चमकदार हिमगिरि गंग में । जाको भट घेरे तासों
अधिक परै है और पचगुनो हीराहार चमक प्रसंग में । चंद
मिलि नौ गुनो नछत्रन सों सौगुनो है सहसगुनो भो छोर
सागर तरंग में ।

३-कज्जल कलित अँसुवान के उभंग संग दूना होत रोज रंग
यमुना के जल में ।

४-मणिमाणिक मुकताछबिजैसा॥अहिगिरिगजसिरसोहनतैसी॥
नृप किरोट तरुणी तनु पाई । तहँ सकल शोभा अधिकारी ॥
नोट-इस चौपाई में कमालंकार भरा है । परंतु हमारा लक्ष्य
केवल चौथा चरण है ।

५-(बरवा) नंपक हरवा अँग मिलि अधिक सोहाय ।

(८४)-मीलित

दो०-दुई चीजें इकरंग जहँ मिलि न भेद लखाय ।

मीलित तासों कहत हैं कबि कीर्तिद हरपाय ॥

१-भरकत मणि अलि शीश पै नेकहुँ नाहिं लखात ।

सुवरन के भूषण सिया तन सुवर्ण मिलि जात ॥

२-अधर पान अंजन नयन लगो महाउर पाय ।

मिय तन ये दरसन नहीं अंगन रहे ममाय ॥

३-बेणुहरितमणिमय सख कोन्है । सगल सपण परहि नहिं नीन्है ॥

४-पँखुरी लगी गुलाब की गात न जानी जाय ।

५-पान पीक अधरान में सखी लखी नाहिं जाय ।

कजरागी अँखियान में कजरा रो न लखाय ।

(८५)-उन्मीलित

दो०-जहँ मीलित में हेतु लहि कछुक भेद बिलगाय ।

उन्मीलित, सुरसरि मिले ज्यों जमुना लखि जाय ।

(यथा)

१-समझो परत सुगंध ते तन केसर को छेप ।

२-चंपक हरवा अंग मिलि अधिक सोहाय । जानि परें सिय
हियरे जब कुम्हिलाय ।

३-दो०-चंपक तन घन बरन बर रहौ रंग मिलि रंग ।

जानी जात सुवास ही केसर लाई अंग ॥

४-सम प्रकास तम पाख दुँहु नाम भेद विधि कीन्ह ।

ससि पोषक शोषक समुक्ति जग जस अपजम दीन्ह ॥

५-शिव सरजा तव सुजस में मिले धवल छवि नृल ।

बोल वास तें जानिये हंस चमेली फूल ॥

पुनः-मिलि चंदन बेदी रही गारे मुख न लग्वात ।

ज्यौं ज्यौं मद लाली चहै त्यों त्यों उधरत जात ॥

सूचना-स्मरण रखना चाहिये कि तद्गुण और अतद्गुण अलंकारों में केवल 'रंग' का विषय वर्णित होता है । मोलित और तन्मीलित में केवल 'रंग' ही नहीं चरन, रंग, गंध के भी विषय वर्णित होते हैं । आगे सामान्य और विशेषक अलंकार लिखे जायेंगे जिनमें 'आकाश' वर्णित विषय होता है । इन अलंकारों का भेद खुब बाग्यानी से अपभ्रंश और स्मरण रखना चाहिये ।

(८६)-सामान्य

दो०-वस्तु दोथ आकाश इक भेद न पौ लग्वाय

तहँ सामान्य बखानहीं अलंकार कविराय

(यथा)

१-एक रूप तुम भ्राता दोऊ ।

२-नाहिं फरक श्रुतिकमल अरु हरिलोचन अनिमेष ।

यहां कान में खोंसे हुए प्रस्फुटित कमल पुष्प के दलों और कृष्ण के अनिमेष नेत्रों में आकाश की एकता से भी नहीं जान पड़ता ।

३-जानी न जात मशाल और बाल गोपाल गुलाल चलावन चूकैं ।
(यहां भी आकार ही के बिचार से एकता है)

(भुजंगप्रयात)

४-भगो देखिकै शंकिलंकेश बाला। दुरी दौरि मंदोदरी चित्रशाला
नहां दौरि गो बालि को पूत फूल्यों। सबै चित्रकी पुत्रिकादेखिभूत्यो
५-गहै दौरि जाको नजेताकिताको। नजै जादिशाको भजैबामताको
भले कै निहारी सबै चित्रसारी। लहै सुन्दरी क्यौं दरीको बिहारी ॥

लका में युद्ध समय में अंगद आर हनुमान रावण के रति-
वास में घुसकर मंदोदरी का पकड़ना चाहते हैं । मंदोदरी चित्र-
सारी में जा घुसी आर वहां बनी हुई तपस्वी में ऐसी मिल गई
(आकार की समता से) कि अंगद यह नहीं जान : के कि
कोन चित्र है और कोन असल मंदोदरी है । (रामचंद्रिका
६-भरत रामएकै अनुहार) । महसा लखि न सकैं तर नारी ॥
लखन शत्रुसुदन इकरूपा । लख शिखरें सब अंग अनूपा ॥

(८७)-विशेषक

दो०-सामान्यहि में जहँ कलू कैसहुँ भेद जनाय ।

ताहि विशेषक कहत हैं सब कविकोबिदराय ॥

बिचरण-पूर्वोक्त ' सामान्य ' अलंकार ही में (आकार का
बिचार लियेहुए) जहां किसी कारण वश दो-ती वस्तुओं का
भेद ज्ञात हो जाय वहां विशेषक ' अलंकार होगा । जैसे-

१-दो०-मनमोहन मनमथन का द्वे कहतों का जान ।

जा इनहुँ कर कुसुम को दाता जान समान ॥

अर्थात् श्रीकृष्ण और कामदेव एकही रूपा और आकार के
हैं, भेद यों जाना जाता है कि कृष्ण के हाथ में फूलों के
धनुषबाण नहीं हैं ।

२-भूषण भनत एते मान घमसान भयो जान्यो न परत कौन
आयो कौन दल ते । सम वेष ताके तहां सरजा सिवा के
बांके बीर जाने हांके देल मीर जाने चलते ।

३-कागन में मृदुवानितें मैं पिक लियो पिछानि ।

(८८)-विशेषकोन्मीलित

दो०-जहँ विशेषकोन्मीलित मिलि भेदहि प्रगटैं आय ।

तहँ विशेषकोन्मीलित है कहत सुकवि समुदाय ॥

तहां उन्मीलित और विशेषक दोनों का मेल पाया जाय
वहां यह अलंकार कहा जाता है ।

(यथा)

१-शशि में मुख में भेद कछु नेकु न परत लखाय ।

बिन कलंक अरु वास ते सिय मुख जानो जाय ॥

२-वय बपुवरण रूप सोइ आली । शील चनेह सखिस समचाली ।

वेष न सो सखि नीय न संगी । आगे अनी चली चतुरंगा ।

सूचना (गुमान कवि कृत) नैषधकाव्य में 'पंचनली' का प्रसंग देखो ।

दमयंती के स्वयंवर में राजा 'नल' आये हैं । इन्द्र, अग्नि, यम और
नरक देवता भी राजा नल हां का रूप (उर्ध्व का तर्ध्व) धारण कर स्वयंवर में
बैठे हैं । इस प्रकार 'नल' के पांच रूप देखकर दमयंती चमक गई है कि
इन पांचों में से अपनी 'नल' कौन है । परस्वती का स्मरण करके दम-
यंती बिचारने लगी है, तब भेर स्फुरित हुआ है । यह काव्य यों है ।

मुनि कै यह अद्भुत बात नई । पंचहु नल ओर चकी चितई ।

नहि पावत है निरधार कियो । धरको हियरा तन ताप लियो ।

सुर खारि आनंद सो पगे । नहि पार्य भूतल में लगे ।

नल के लगे पग मेदिनी । लखि जानि जाति नितंबिनी ।

सुर के शरीरन में कहीं। कण रेणु के लखिये नहीं।
नल देह पै दुति पाय कै। जनु भूमि भेंटत चाय कै।
नल के पल लोय ? माहि लगैं। सुर नैनन में न निमेष लगैं।
सुर शीश न फूल मलीन भये। नल के सिर के कुम्हिलाय गये।
इन भेदन सो नल को पहिचानो। चित अंतर सिधु सुधाहि समानो।

इस कविता में 'विशेषकोन्मीलित' अलंकार है।

केवल 'उन्मीलित' इसलिये नहीं है, कि शुद्ध उन्मीलित में केवल एक वस्तु में कोई विशेषता सूचक बात कही जाती है, इसमें दोनों वस्तुओं (देवता और नल) में विशेषता सूचक चिन्ह कहे गये हैं। और केवल 'विशेषक' इसलिये नहीं है कि 'विशेषक' में केवल 'आकृति' की ही समानता वर्णन की जाती है अन्य गुणों की नहीं। इसमें आकृति के अलावा अन्य गुणों अर्थात् रूप रंग कामलता इत्यादि की भी समानता (राजा नल और देवताओं की) चित्राक्षत है।

(८९)—गूढ़ोत्तर

दो०—अभिप्राय यत् जवाब जहँ कहि गूढ़ोत्तर भाय ।

प्रश्न मानि लीजै कहँ कहँ पूछे पर होय ॥

बिबरण—जहाँ कुछ गूढ़ अभिप्राय सहित उत्तर का वर्णन हो, वहाँ यह अलंकार हाता है। यह दो प्रकार से हो सकता है। एक वहाँ जहाँ केवल उत्तर कहा जाता है और उसी उत्तर से कल्पना कर ली जाती है कि ऐसा प्रश्न किया गया होगा। दूसरा प्रश्न सहित कहा जाता है।

(९)—कल्पित प्रश्न का

दो०—ग्राम घरीक निवारिये कलित ललित अलि पुंज
जमुना तीर तमाल तरु मिलति मानती कुंज ।

(बिना पूछे ही स्वयं अपना परिचय देने में सर्वत्र यही अलंकार होगा। जैसे तुलसीकृत रामायण के सुन्दरकांड में बिना हनुमान जी के पूछे ही विभीषण अपना परिचय दे चले हैं) देखो—

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दशनन महँ जीभ विचारी ।
इत्यादि.....

(इस में विभीषण का गूढ़ अभिप्राय अपनी दीनता दिखा कर रामदूत की कृपा संपादन करना था)

हनुमान जी जब संजीवनी लेने जाते थे, तब कालनेमि राक्षस कपटमुनि के भेस से बिना पूछे ही कह चला है:—

होन महारण रावण रामहि । जिति हैं राम न संशय यामहिं ॥
यहां भये मैं देखों भाई । ज्ञान दूषि बल मोहि अधिकारी ॥ इत्यादि

(इसमें गूढ़ अभिप्राय अपने प्राण विश्वास उत्पन्न कराके हनुमान जी को ठगना था ।

इसी प्रकार अन्य स्थानों में भी समझ लेना चाहिये ।

पूचना-स्वयं इति का नायका के वचनों में सर्वत्र इस अलंकार होता है ।

(२)—प्रश्न सहित

(रावण और हनुमान का प्रश्नोत्तर)

कपि कीन तू ? सुत अक्षय घातक, कीन बल ? रघुनाथ के ।

रघुनाथ को ? खर दूषणांतक, अनुज लक्ष्मण साथ के ॥

लम्बन का ? तब भगिनि जानति, परशुधर मद् जेहि हस्तो ।

परशुधर को ? सहस्रभुजरिपु दीप जेहि तब सिर धस्तो ।

पठवा जो केहि ? सुग्रीव, का ? हरि बालि सोदर जानिये ।

कपि बालि को ? तुम रह्यो जाकी कांख में सुधि आनिये ।

किमि सिंधु नांघो ? गोपद ज्यों, केहि हेत ? सिय चोरै लखै ।

सिय कौन ? कन्या जनक की तुम बाण गे जाके मखै ।
 कस बाण ? सोइ बलि सुवन जेइ तोहि बांधि नाच नचायऊ
 को कहत यहि विधि ? पद्मिनी जेइ जलधि मांभ चलायऊ ॥
 (इसमें इन्द्रमान जी का गूढ़ अभिप्राय रावण को लज्जित
 करना है)

दो०-बाल कहा लाली परी लोयन कोयन मांह ।

लाल तिहारे दृगन की परी दृगन में छाँह ॥

(६०)-चित्रोत्तर

(यह अलंकार दो प्रकार का है ;

(प्रथम)

दो०-जह बृभक्त कलु वात के उत्तर सोई वात ।

प्रथम चित्र तेहि कहत हैं सकल सुकवि अवदात ॥

विशरण-जिन शब्दों में प्रश्न किया जाता है, वेही शब्द
 उत्तर में भी हो जाते हैं ।

(यथा)

१-दो०-कोहै जारत अग्नि बिनु ? कोरे नेह बिहीन !

२-तात कहाँ ने पाती आई ?

३-का बषाँ जब कृपी सुखाने ?

४-को कहिये जल सों सुखी ? को कहिये पर श्याम ?

का कहिये जे रस बिना ? को कहिये सुख वाम ?

१-प्रथम उदाहरण में, (प्रश्न) बिना अग्नि के कौन
 जलाता है । (उत्तर) कोह (कोय) ही बिना अग्नि के
 जलाता है । प्रश्न) नेह हीन व्यक्ति को क्या कहते हैं ?

(उत्तर) नेह बिहीन व्यक्ति को ' कोरा ' कहते हैं ।

२-दूसरे उदाहरण में भरतजी राजा दशरथ से पूछते हैं ।
(प्रश्न) हे तात यह पाती (पत्री) कहां से आई है ? इन्हीं
शब्दों में राजा दशरथ का उत्तर भी हो जाता है (उत्तर) तान
(रामचंद्र) के यहाँ से पाती आई है ।

३-तीसरे उदाहरण में भी ठीक इसी प्रकार समझो ।

४-चौथे उदाहरण में, (प्रश्न) जल से किसको सुखी
कहना चाहिये । (उत्तर) कोक (चक्रवाक) का हृदय जल
से सुखी होता है । (प्रश्न) जिसके पर काले हों उन्हे क्या
कहते हैं । (उत्तर) काक (कौवा) का सीना और पर श्याम
होते हैं । (प्रश्न) जे रसहीन हैं उन्हें क्या कहना चाहिये ?
(उत्तर) जे अरसिक हैं उन्हें काक-हृदय कहना चाहिये ।
(प्रश्न) खी किसके लिये सुखरूप है (उत्तर) खं कोक
(चक्रवाक) के लिये सुखरूप है ।

२-(दूसरा)

दो०-बहुती वातन को जहां उत्तर दीजै एक ।

चित्रोत्तर सो दूसरो कहैं सुकवि सविवेक ॥

(यथा)

सो०-गाउ, पीठ पर लेहु, अंगराग कर, हार कर

ग्रह प्रकाश करि देहु, कृष्ण कक्षो सारंग नदी ।

इसमें राधिकाजी के पांच वाक्य हैं (१) गाओ (२) पीठ
पर लेलो (३) अंगराग करो, (४) माला बनाओ (५) घर में
प्रकाश करो । इन पाँचों का उत्तर कृष्ण ने एक वात कहकर
दिया कि "सारंग नहीं है" । "सारंग" शब्द अनेकार्थे वाची
है । यहां इसके अर्थ यों हैं (१) शीता (२) शोभा (३) चंदन
(४) फूल (५) दीपक ।

दो०—को हरि बाहन ? जलधिसुत ? काको हाथ जहाज ।

चतुर सुकवि उत्तर दियो एक वचन 'द्विजराज' ॥

यहां तीन प्रश्न हैं ? सबका उत्तर 'द्विजराज' शब्द है ।

(१) गरुड़ । (२) चंद्रमा (३) ब्राह्मण ।

दो०—को मरु भुव पालन सुअव, को नित धिर जु रहंत ।

यूरुप पदवी कौन मुख्य जानहु प्रिय जसवंत ॥

(प्रश्न) मरुभूमि का इस समय कौन पालन करता है ?

उत्तर—जसवंत—(महाराजा जसवंतसिंह)

(प्रश्न) नित्य कौन स्थिर रहता है ?

उत्तर—जसवंत = (यशस्वीपुरुष)

(प्रश्न) यूरुप में कौन सी पदवी मुख्य मानी जाती है ।

उत्तर—'ज' और 'स' वाला पदवी अर्थात् जी० सी० (G. C.)

प्यावहु बारि, बिदारहु मृगवर।सर'दिग नाहि प्रिया यहि अवसर ॥

पुनः

सो०—पंथी प्यासो जाय गदहा रहै उदास क्यों ।

उत्तर दीन बताय, एक वचन ' लोटा न था ' ।

दो०—को रण में मनमुख लरन ? को तमरिपु भरपूर ।

उदर व्याधि अति कठिन का ? सुकवि 'दीन' कह 'मूर'

इसमें तीन प्रश्न हैं । तानों का उत्तर ' मूर ' शब्द से हो जाता है ।

(६१)—सूक्ष्म

दो०—सूक्ष्म कृति लिखि आन की करै क्रिया कछु भाय ।

ताको नाम बखानहीं सूक्ष्म सब कबिराय ॥

बिबरण—दूसरे का किया हुआ कोई सूक्ष्म कृत्य (इशारा वा चेष्टा) देखकर इशारे ही से उसका उत्तर देने वा समाधान कर देने के वर्णन में यह अलंकार होता है। इस अलंकार के लिये यह ज़रूरी है कि इशारा वा कोई कृत्य दोनों ओर से होना चाहिये। आगे जो 'पिहित' अलंकार है, उसमें और इसमें यह भेद है कि इसमें एक कोई तात्पर्य सूचक क्रिया करेगा, तब दूसरा उसका उत्तर में कोई साभिप्राय चेष्टा करेगा और पिहित में एक के आकार से (बिना किसी क्रिया के) उसका छिपाहुआ वृत्तान्त समझकर दूसरा कोई ऐसी क्रिया करेगा जिससे प्रगट हो जाय कि वह उसका छिपाया हुआ वृत्तान्त जान गया। यथा:—

१—सीतहि सभय देखि रघुराई । कहा अनुज सन सैनबुभाई ॥

यहाँ सूपनखा का विकट रूप देख कर सीताजी ने भय सूचक कोई चेष्टा की तब रामजी ने सीता का समाधान करने के लिये इशारे से लक्ष्मण जी से सूपनखा के नाक कान काट लेने का इशारा किया।

२—बिनय प्रेम बस भई भवानी । खसोमालमूर्ति मुसकानी

यहाँ बिनय से भवानी जी सीता जी के मन का अभिप्राय समझ गई और मुसकाकर अपना तात्पर्य भी जता दिया।

३—गौतम तिय गति सुरति करि नहिं परसति पद पानि ।

मन विहँसे रघुवंशमणि प्रीति अलौकिक जानि ॥

४—सो०—मुनि केवट के बैन प्रेम लोपटे अटपटे ।

बिहँसे कण्ठाएन चितै जानकी लखन तन ।

(६२)—पिहित

दो०—जहाँ छिपे पर वृत्त का समुक्ति कर कलु काज ।

जाते प्रगटै जानिवो, सो पीहित कविराज ॥

विवरण—‘पिहित’ शब्द का अर्थ है “आच्छादित” । जहां अपना हाल छिपानेवाले व्यक्ति प्रति कोई ऐसी क्रिया की जाय जिससे जान पड़े कि उसका वह हाल क्रिया करने वाले का ज्ञात हो गया, वहां यह अलंकार होता है—जैसे सती जी ने सोता का रूप धरकर रामजी का धोखा देना चाहा, वहां तुलसीदासजी कहते हैं:—

१—“सती कष्ट जाना सुरस्वामी”

जोगि पाणि प्रभु कीन्ह प्रणाम् । पिता समेत लीन्ह निज नाम् ।

२—गैर मिसिल गाढ़ा शिवा अंतरयामी नाम ।

प्रगट करी रिस साह सों सरजा करि न सलाम ॥

३—आनि मिलो अरि यों गहो चखन चकत्ता भाव ।

साहि तनय सरजा सिवा दियो मुच्छ पर ताव ॥

सर्वथा—जल को गये लक्खन है लरिका परिखौ पियछाहँ धरीकहँ
ठाढ़े। पाँछि पसेउ वयार करौं अरु पाँय पखारिहौं भूभुरि डाढ़े ।
तुलसी ग्युबीर प्रिया श्रम जान कै वैठि बिलंब सों कंटककाढ़े ।

(जानकी नाह को नेह लखे पुलकी तनु बारि बिलोचन बाढ़े)

वनगमन समय राह में चलने से थककर सीताजी ने लक्ष्मणजी को पानी लेने भेजा है । तदनंतर अपनी थकावट छिपाने हुए लक्ष्मण के आने तक महाराज से परखने का अनुरोध करती हैं । रामजी ने उनका तात्पर्य समझलिया और एक वृक्ष के नीचे बैठकर बड़ी देर तक अपने पैरों से कांटे निकालते रहे । (जोथा चरण छन्द पूर्ति के लिये लिख दिया है) यहां पिहित अलंकार की पूर्ति केवल तीन ही चरणों में होगई है ।

(६३)—व्याजोक्ति

व्याज = बहाना उक्ति = कथन = बहाने की बात ।

दो०—कछु मिस करि कछु और बिधि कहै दुरै के रूप ।

सबै सुकवि व्याजांक्ति तेहिं भूषण कहैं अनूप ॥

शिबरण—किसी खुलती हुई बात वा वृत्तान्त को छिपाने की इच्छासे कोई बहाने की बात कहना । लेकापन्हुति में निषेध पूर्वक छिपाना होता है, इसमें बिना निषेध के । सूक्ष्म और पिहित में क्रिया से और इसमें 'बचन' से काम लिया जाता है । यथा:—

तुलसीकृतरामायण में राजा भानुप्रताप और कपट मुनि के प्रसंग में राजा अपने को छिपाने के लिये कहता है:—

१—"भूप प्रतापभानु अवनीसा । तासुसचिव मैं सुनहु मुनीसा" ।
पुष्पवाटिका में जय सीताजी रामछवि देखक मोहिनि हुई
और आंख मूंदकर रामजीके ध्यान में मग्न हुई तब एक चतुर
सखी ने अन्य सखियों से सीताजी की मोहावस्था छिपाने के लिये यह कहा कि:—

२—"बहुरि गौरिक ध्यान करेहू भूप किसोहि देखि किनलेहू ॥"

३--शिवा बैर औरंग वदन लगी रहै नित आहि ।

कवि भूषण वृष्णे सदा कहै दंत दुख साहि ॥

(साहि = शाही = राज्य)

४--कार वरन डरावने कत आवत यहि गेह ।

कड़ बा लख्यो सखी लखे लगै थरहरी देह ॥

सवैया—साहिन के उमराव जितेक सिवा सरजा सब लूटिलयेहैं ।

भूषण ते विन दीलतिहू कै फकांग हू दंस बिदेस गये हैं ॥

लोग कहैं इमि दक्षिण जेय सिसौदिया रावंग हाल ठये हैं ॥

देत गिसाय कै उत्तर यों हमहीं दुनिया ते उदास भये हैं ॥

(६४)—गूढोक्ति

दो०—औरै प्रति उदेश्य करि कहै और सों वैन ।

ताहि कहत गूढोक्ति कवि जिनकी मति अति पैन ॥

बिबरण-किसी दूसरे का कोई विशेष सूचना देने के अर्थ किसी अन्य प्रति कोई बात कहना जिससे वह सुन ले और समझ ले। जैसे:—

१-“ पुनि ओउव यहि बेरियाँ काला ” (रामायण)

२-सुनिये बिटव ! इस पुहुत तिहार अहैं राखिहो हमैं तो शोभा राखरी बढ़ावैंगे । तजिहो हरपि कै तो बिलग न मानैंकहु जहां जहां जेहैं नहां दूनी जस पावैंगे । सुरन चढ़ें ग तर सिरन चढ़ेंगे पर सुकवि ' अनीश ' हाथ हाथन थिकावैंगे । देखभैरहैंगे पारदेस में रहैंगे काह भेस में रहैंगे नऊ रावर कढ़ावैंगे ।

३ ब्रूष छांडो पर खेत को आवत यहि रखवार ।

४-मांझ सखी मैं जाइहौ पूजन देव महेश ।

५-रे हरिना अब भागु द्रुत बारी करु न विहार ।

या बारी को देखियत आवत राखनहार ॥

प्रस्ता-प्रस्तुतांकुर और इसमें यह भेद है कि इसमें कहने वाले का मुख्य तात्पर्य सुननेवाले से होता है, जिससे बात कही जाती है उससे नहीं। प्रस्तुतांकुर में कहनेवाले का मुख्य तात्पर्य अपने से होता है जिसके प्रति बात कही जाय। सुननेवाला भी उससे लाभ उठावे तो अच्छा ही है नहीं तो कोई आघात नहीं। प्रस्तुतांकुर मुख्यतः उपात्तम ही वर्णन के लिये है, और यह अलंकार सूचनार्थ है।

(६५)-विवृतोक्ति *

नोट-छिप्या अर्थ जो श्लेष से प्रकट करे कवि ताडि ।

विवृतोक्ति तासों कहैं सकल भूमति कविराय ॥

बिबरण-श्लेष शब्दों द्वारा कहे हुए गुप्त अर्थ को कवि

* सू-किसी किसी का मत है कि विवृतोक्ति गूढोक्ति से और गूढोक्ति सूक्ष्म अर्थ अन्तर्भूत है।

स्वयं खोल दे उस कथन को विवृतोक्ति कहते हैं—(विवृत शब्द का अर्थ खोला हुआ वा उद्घाटित)

दो०—तजौ निंकुजहिं इन कहत जब तव स्याम भुजंग ।

यों कहि सखि सखि दै सवनि रखी चतुर तियसंग ॥

जो गोरस चाहत लियो तो आवहु मम धाम ।

यों कहि याचक सों हरिहिं किय सूचित निजकाय ॥

पुनः—वृष भागो पर खेत तें, कहत जताये सैन ।

(९६)—युक्ति

दो०—ठगै क्रिया करि आन को मरम छिपावन हेत

युक्ति बतावत ताहि को सिंगरे सुमति निकेत ॥

विवरण—पूर्व के तीन अलंकारों में “ बचन चातुरी ” कुछ छिपाने की बात कही गई है । इस अलंकार में कोई मर्म की बात वा घटना किसी “ क्रिया द्वारा ” छिपाने की मुख्यता है, इसलिये यह अलंकार उसमें भिन्न है ।

(यथा)

लिखत रही पिय चित्र तहँ आवत लखि सखि आन ।

चतुर तिया तेहि कर लिख फूलन के धनु आन ॥

सूचना—न कहने योग्य बात को किसी चेष्टा से प्रगट कर देने में भी यही अलंकार मानना पड़ता है । जैसे एक मज्जन के पास एक गूंगा नौकर था । उस मज्जन ने उससे कहा कि एक पैसे का मुर्दासंख (मुर्दासंग) ला दे । वह नौकर पैसा लेकर पसांगी के पास गया और पसांगी के सामने पहले मुर्दा ला हाकर खेद रहा, फिर उठकर शंख बजाने की भी भुत्ता दिखता कर पैसा उसके सामने रख दिया । पसांगी था चतुर, उसने उसकी चेष्टा में बात समझ ली और एक पैसे का मुर्दासंख देकर उसे बिदा किया ।

परो मृतक के रूप पुनि शंखाकृति किय शोर ।

दियो सु मुरदासंख तेहि बनिया बुद्धि अथोर ॥

तुलसीकृत रामायण में बन में जब ग्रामस्त्रियों ने सोताजी से उनके साथ राम लक्ष्मण का सम्बन्ध पूछा है तब लक्ष्मणजी के लिये सोता ने कह दिया कि:—

सहज सुभाव सुमग तन गोरे । नाथ लखन लघु देवर गोरे ॥

पर रामजी का संबंध बतलाते हुए सीताजीने कुछ चेष्टाओं से ही काम लिया है, जिसे गोस्वामीजी ने यों कहा है:—

बहुरि वदन बिधुअंचल हांकी । पिय तन चितै भौंह करि बांकी
खंजन मंजु निरीछे नैनन । निज पति कहेउ तिनहि सिय सैनन ॥

यहां भी युक्ति अलंकार माना जायगा । इसलिये ऊपर लिखी हुई परिभाषा (यद्यपि प्राचीन है) हमारी सम्मति में ठीक नहीं जैसी । हमारे सम्मत्यनुसार वह परिभाषा यो होनी चाहिये :

मर्म छिपावन हेतु वा मर्म जनावन हेतु ।

जैसे क्रिया कछु ' युक्ति ' तेहि भाषत मुकविसचेत ॥

' सूक्ष्म ' और ' परिहित ' अलंकारों से इसमें प्रत्यक्ष विभिन्नता है, जो परिभाषा पढ़ने मात्र से प्रगट हो जाती है ।

गोस्वामी तुलसीदास ने ' बरवा रामायण ' में इस युक्ति अलंकार का एक और भी बहुत अच्छा उदाहरण लिखा है ।

वेद नाम कहि अंगरिन गंडि अकाम ।

पठयो सुदनखाहि लखन के पास ॥

दि = श्रुति = का । अकाम = नाक = नासा ।

नागर्य यह कि रामजी ने युक्ति से लक्ष्मणजी पर अपना मर्म प्रगट कर दिया कि इसके कान और नाक काट लो ।

यदि कोई कहे कि इसमें ' सूक्ष्म ' अलंकार है तो ठीक

नहां, क्योंकि सूक्ष्म में दोनो ओर से केवल इशारे से ही बात होनी चाहिये । इसमें इशारे से गम जी की आज्ञा है, जिसका पालन लक्ष्मण जी ने कृत्य द्वारा किया है । इस हेतु यहां युक्ति हा अलंकार मानना चाहिये ।

‘युक्ति’ का अर्थ है ‘हिकमत’ ‘चतुराई’ । इस लिये हिकमत में अपना कर्म छिपाना वा अपना तात्पर्य प्रगट करना दोनों दशाओं में यह अलंकार हो सकता है । यह जरूरी नहीं है कि मर्म छिपाने ही में हिकमत से काम लिया जाय अन्यथा नहीं । हां हम यह बात मानने के लिये तैयार हैं कि मर्म छिपाने में अधिक बागीक हिकमत की जरूरत होती है ।

(६७)—लोकोक्ति

दो०—लोकोक्ति जहँ लोक की कहनावत बहराउ ।

गजा करै सो न्याउ है, पासा परै सो दाउ ॥

(यथा)

१—फिरे रहै न रहै यहा समयौ बहता नदा पाय पखार लेरी ।

२—भो बिधना प्रतिकूल जब तब ऊंट चढ़े पर कूकर काटत ।

३—वृथा मरहु जनि गाल बजाई । मनमोदकनि कि भूख बुभाई ।

४—देब कहा हम तुमहि गोसाई । ईधन पात किरात मितार्डे ॥

कर्म प्रधान विश्व कागि राखा । जो जस करै सो तस फल चाखा ।

सूचना—अंगरेजी में इसे इंडियम (Idiom) कह सकते हैं । फारसी और उर्दू में इस अलंकार को “इरसालुजमसल” कहते हैं ।

स्मरण रखना चाहिये कि केवल लोकोक्ति मात्र के कथन में । अलंकार न होगा । प्रयोग बना कर अन्त में लोकोक्ति पर प्रदत्त काने से अलंकारता आवेगी ।

हिन्दी साहित्य में ‘ठाकुर’ (बैरखंडी) कविकी कविता में लोकोक्तियों की योजना सराहनीय मानी जाती है ।

(६८)-छेकोक्ति

दोहा-जहँ परार्थ की कल्पना लोकउक्ति में होय ।

छेकोक्ति तासों कहैं कबि कोविद सब कोय ॥

बिभरण-जहां लोकाक्ति का प्रयोग साभिप्राय हो अर्थात् गहले कोई बात कहके उपमान वाक्य की भांति लोकोक्ति कही जाय, वहाँ छेकोक्ति होगी ।

(यथा)

१-श्री०-जे सोहात सिवराज को ते कविच रसमूल ।

जे परमेश्वर पै चढ़ै तेई आछे फूल ॥

२-दुगावत हौ सहवासिन सों रघुनाथ बृथा बतियानके जोर ।
सुनौ जग में उपखान प्रसिद्ध है चोरन की गति जानत चोर ॥

३-औरंग जो चाढ़ दक्खिन आवे तो ह्यां ते सिधावै सोऊ
बिन कप्पर । दीनो मुहीम को भार बहादुर छागो सहै क्यों गर्यद
को भप्पर । सासना खाँ सँग वे हठि हारे जे साहेब सातणें
ठाँ के भुवप्पर । वे अब सूबहु आवैं सिवा पर कान्हि के जागि
कैलीदे को खप्पर ॥

४-छिति नीरकशानु समीर अकास ससी रबिहु तन रूपधरै ।

यह जागत सोवन हू मानिराम सो आपनी जोति प्रकास करै ॥

जग ईस अनादि अनंत अपार वही सब ठौरन में बिहरी ।

सिगरे तन मोहन मोय रहे, तिन आट पहार न देखि परै ॥

५-सत्य सराहि कहाँ बर देना । जानेहु लेइहि माँग चबेना ॥

(६९)-बक्रांति

दो०-जहां श्लेष सों चर नर अर्थ लगावै और ।

नाहि कहत बक्रोक्ति हैं सिगरे कबि सिरमौर ॥

विवरण-वक्रोक्ति दो प्रकार की होती है:- (१) शब्दमूला (२) अर्थमूला। शब्दमूला वक्रोक्ति की व्याख्या शब्दालंकार में देखो। यहाँ केवल अर्थमूला वक्रोक्ति का वर्णन है।

जहाँ श्लेष से अर्थ का उलट फेर हो जाय, वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होगा। जैसे:-

१-भिक्षुक गो कित को गिरिजे ? सुतां माँगन को बलिद्वार गयो री। नाच नच्यो कित हो भवभाम, कलिन्दसुता तट नौके उयो री। भाजिगयो वृषपाल सु जानत ? गोधन संग सदा सु छयो री। सागर-शैल-सुतान के आज परस्परयो परिहास भयो री।

यहाँ भिक्षुक, नाचनच्यो, और वृषपाल शब्द श्लिष्ट हैं। लक्ष्माजी इन्हीं शब्दों से शिव का इंगित करती हैं और पावतो जी इन्हीं शब्दों का अर्थ फेर कर विष्णु पर आरोपित कर देती हैं। इस से वक्रोक्ति है। और यह अर्थ-वक्रोक्ति इस लिये है कि यदि हम 'भिक्षुक' के स्थान पर 'मंगन', 'नाचनच्यो' के स्थान पर 'नृत्य कियो' और 'वृषपाल' के स्थान पर गोपाल वा पशुपाल शब्द रख दें तो भी अर्थ और युक्तिज्या की त्यों रहेगा। शब्दालंकारवाली उक्तियों के श्लिष्ट शब्दों को इस प्रकार नहीं बदल सकते। इसी से वे शब्दालंकार के उदाहरण हैं, और यह अर्थालंकार का उदाहरण है।

काहु से जो वक्रोक्ति होती है वह शुद्ध शब्दालंकार है, क्योंकि वहाँ विलक्षण प्रकार की कंठध्वनि के कारण अर्थ में हेर फेर होता है, और कंठध्वनि कान से सुनने का विषय है। कानका विषय होने के कारण वह शब्दालंकार ही है।

(१००)-स्वभावोक्ति

दो०-जाको जैसो रूप गुण बर्णत ताही साज ।

सुभावोक्ति भूषण तहां कहैं सबै कविराज ॥

विवरण-जाति वा अवस्था के अनुसार जिसका जिस समय जैसा प्राकृतिक कृत्य हो वसाही कहना स्वभावोक्ति मलंकार है। इसके दो प्रकार हैं; (१) सहज (२) प्रतिज्ञाबद्ध

(१)-सहज

१-दो०-धूरि धुरेते धराणि में धरत लटपेट पाय ।

लाल अटपटे आखरन भाषत मखि हरषाय ॥

२-धूसर धूरि भरेतनु आये भूति विहँसि गाद बढाये ॥

३-दो०-भोजन करत चपल चित इत उत अवसर पाय ।

भागि चलत किलकात मुख दाधि ओदन लपटाय ॥

[कृष्णबानिक]

४-सीस मुकुट कटि काछनी कर मुगली उर माल ।

याहि बानिक मो उर वसौ सदा बिहारी लाल ॥

[तुरंग स्वभाव]

५-जित रुख पावै तित पहुँचाव छन आवै छन जावै ।

जमिजमि थमिथाम थिगकि भूम पर नहि नहि देखावै

फांदत चंचल बारु खीकडी चपलदू को चबल भांपै ।

भरत कुँवर को तुरंग रंगीलो बराण आय कहु का वै ॥

[कुनस्वभाव]

६-कहीं सुभाव न कुलहि प्रशंसी । कालहु डरहि न रण रघुवंशी ।

७-रघुकुल रीति सदा बलि आई । प्राण जाई बरु बचन न जाई ।

(तात्पर्य यह कि जिस समय जिसका जैसा रूप गुण हो उस समय वैसाही कहना)

सूचना-किसी का कोई स्वभाविक गुण साधारणतः प्रगट नहीं होता वर

किसी मनोविकार वा उत्तेजना के समय प्रतिज्ञा रूप से प्रगट होता है। इसे प्रतिज्ञाबद्ध स्वभाव कहते हैं। ऐसे स्वभाव का वर्णन भी स्वभावोक्ति ही कहा जाता है। जैसे:-

२-(प्रतिज्ञाबद्ध स्वभावोक्ति)

१-शिव संकल्प कीन्ह मन माहीं। यहि तन सगिहि भेट अथ नाहीं।

२-दो०-तोगें छत्रक दंड जिमि तुव प्रताप बल नाथ।

जो न करों प्रभु पद सपथ पुनि न धरों धनु हाथ ॥

३-जो शत शंकर करें सहारै। तदपि हतौं रण राम दसहारै ॥

सूचना-ऐसी स्वभावोक्ति तसपथ वा अमंजव कथन द्वारा भी प्रगट की जाती है तथा-

(कवित्त)

४-बारि डारि डारों कुंभकणहि बिदारि डारों मारों मेघनादै
आजु यों बल अनंत हौं। कहै पदमाकर त्रिकूटहु को ढाहि डारों
डारत करेई जातुधानन को अंत हौं ॥ अच्छहि निरच्छ कपि
रच्छ है उचारौं इमि तो से तिच्छ तुच्छन का कछुवै न गस्त
हौं। जारि डारों लंकहि उजारि डारों उपवन फारि डारों रावण
को नी में हनुमंत हौं ॥

५-लोक तिहुँ जागैं सातों गगार सुआय डारों गिरिन
ढहाय डारों भूमि उलटाऊं में। रंच में बिदारि डारों दसो दिग-
पालन को खगन समेत शशि सूरहिं गिराऊं में ॥ नभ ते पताल
लेके कितहुं कहूं जो नेक 'रसिक बिहारी' प्राण प्यारी सुधि
पाऊं में। जानकी न लाऊं तौ पै लखी न कहाऊं राम नाम
पलटाऊं धनुबान न उठाऊं में ॥

६-कह हनुमंत जोरि युग हाथा। लखन सोच जनि कीजै नाथा।

कहै चंद्रमहि पट इस गारी। अबहो देहुं अमी मुख डारी ॥

कहौ विबुध-वैदहि गहि आनों । मीचु मारि सब के कुल आनों ॥
 कहौ फोरि नभ रबिहि निकारों । रिपु तेहि द्वार राहु बैठारों ॥
 कहौ प्रह्ला हरि हर कहँ आनी । अमर अमर बुलवाऊँ बानी ॥
 कहौ पताल जाय हति नागा । आनों अमी-कुंड यहि जागा ॥
 कहौ देहुँ निज देह त्यागी । अबही उठौँ लखन घट जागी ॥
 दो०- जो कल तुव मन में रुचै सो मोहिं आयसु होय ।

नाथ सपथ क्षण में करौँ प्रभु प्रताप बल सोय ॥

(विभ्रामसागर)

(१०१)-भाविक

दो०-जहां भूत भावी अथ वरनत कवि परतच्छ ।

अलंकार भाविक कहत ताको सब मतिस्वच्छ ॥

१-(भूतार्थ प्रत्यक्ष वर्णन)

दो०-जाकी छवि को देखिकै होत मनहिं विसराय ।

चित्रकूट में जानिये अबहुँ राजत राम ॥

(कवित्त)

२-अजौँ भूतनाथ मुण्डमाल लेन हरपत भूतन अहार लेत
 अजहुँ उछाह है । भूपन मनत अजौँ काटे कग्वालन के कारं
 कुंजरन परी कठिन काल है । सिंह शिवराजा सलहेरि के समीप
 ऐसो कीन्हो कतलाम दिल्ली दर को सिपाह है । नदी रनमंडल
 रुहेलन रुधिर अजौँ अजौँ रबिमंडल रुहेलन की गह है ॥

३-आवन हौँ जमुना तट को नहि जानि परै बिलुटे
 गिरधारी । जानति हौँ समि आवन चाहत कुंजर ते कति
 कुंजबिहारी ॥

५-दो०-जहां जहां ठाढो लखो श्याम शुभग सिरमौर ।

उनहूं बिन छिन गहि रहत दृगन अजौं वह ठौर ॥

५-दो०-दलन दवाई ही जु तुम इनत दशानन गोत ।

लखहु राम वह आजलौं धक धक धरती होत ॥

सूचना-इसे अंगरेजी में ऐतिहासिक वर्तमान (Historic Present) कहते हैं । अजौं, अजहुं, अब भी इ. के वाचक जान पड़ते हैं ।

२-(भावी अर्थ प्रत्यक्ष वर्णन)

१-दो०-जिन चलाइयं चलन की चरचा श्याम मुजान ।

मैं देखति हौं बाहि यह बात सुनत बिन प्रान ॥

२-गहन विपिन गिरि गैल के जे गढ़ दृढ़ भगपूर ।

राम गवरो दल चलत देखत हौं चकचूर ॥

३-कही जाय क्यों अलि भली छावि प्रति अंग अनूप ।

भावी भूषण भार हू लमत अवहि तब रूप ॥

(१०२)-उदात्त

दो०-संपत्ति की अत्युक्ति को कोविद कहत उदात्त ।

जहँ उपलक्षण बडन को ताहू की यह बात ॥

१-(संपत्ति की अत्युक्ति)

१-जो संपदा नीच गृह सोहा । सा बिलोकि सुरमायक मोहा ।

जेहि तिरहुति तेहि समै निहारी । तेहि लघु लगेभुवनवसचारी ॥

२-जगत-जनक बरनै कहा जनक नगर को ठाट ।

सहल महल हीरन बने हाट बाट कगहाट ॥

३-सुवरनपुर मणिमय महल रही महा छावि फैलि ।

चौकी चिंतामणिन की बैठी कंचन-बेलि ॥

४—नंद द्वार बजे मांगन आये । हुरो फिर याचक न कहाये ।

लक्ष्मी सी जहाँ मालिन बोलै । बंदनमाला बांधत डोलै ॥

बारबुहारतफिरन अष्टसिद्धि । कौरन सधिया चीतत नवनिधि ॥

२—(महाजनों की उपलक्षणता *)

दे०—भूषित शंभु स्वयंभु सिर जिनके पद की धुर ।

ठठ करि पाँव शैवावती तिन सों तिय मगरूर ॥

२—यह अरण्य वह है जहां मानि पिता के वैन ।

वसत राम एकाहि कियो हनन निशाचर सैन ।

३—खरदूषन त्रिशिरा सिरन तजि दूषण जेहि ठौर ।

रघुकुल भूषन जे कप्यो हर भूषन जिन जोर ॥

४—या पूना में नति टिको दीन्हा शिवा सजाय ॥

(१०३)—अत्युक्ति +

दे०—योग्य व्यक्ति की योग्यता अति करि बरनी जाय

भूषन सो अत्युक्ति है समुझै जे मतिगय ॥

सुन्दरता अरु सूरता अरु उदारता भाव ।

या भूषण में कहत ही उर उपज अति चाव ॥

(सुन्दरता)

दे०—भूषण भार सँभारिहै क्यों वह तन सुकुमार ।

सूधे पाँय न धर परत महि शोभा के भार ॥

* संसर्ग जन्य बड़ाई अर्थात् बड़ों के संबंध से बड़ाई की प्राप्ति ।

+ इस श्रलंकार की अँगरेजी में ' एग्जैजरेशन ' (Exaggeration) और फारसी तथा उर्दू में ' मुबाज्जिगा ' कहते हैं ।

पुनः—सुमनमयी महि में करै जब राधिका बिहार ।
तब सखियां सँगही फिरै हाथ लिये कचभार ॥

(शूरता)

१-जासु त्रास डर कहँ डर होई ।

२-जा दिन चढ़त दल साज अवधूत सिंह ता दिन दिगंत
लौं दुवन दाटियतु है । प्रलै कैसे धाराधर धमक नगारा धूरिधारा
ते समुद्रन की धारा पाटियतु है । भूयन भनत भुवगोल कोल
हहरत कहरत दिग्गज मगज फाटियतु है । काच से कचर जान
शेष के अशेष फन कमठ की पीठि, पै पिठो सी बांटियतु है ।

छंद—कह दास तुलसी जयहि प्रभु शर चाप कर फेरन लगे ।

ब्रह्मांड दिग्गज कमठ अहि महि सिंधु भूधर डगमगे ॥

दो०—इते उच्च शैलन चढ़े तुव डर अरि सकलत्र ।

तोरत कपित करन सौं मुकता समुक्ति नकुत्र ।

(उदारता)

१-दो० वारिद लौं वसु वरामि के कविकुल किये कुवेर

निकट जो होतो मेरु तो देत न होती देर ॥

२-जाचक तेरे दान ते भये कल्पतरु भूप ॥

३-मैंही अनाथ अनाथन में तजि तेरोइ नाम न दूजो सहा-
यक । मंगन तेरे के मगन ते कल्पद्रुम आजु है मांगिवेलायक ॥

४-संपति सुमेर की कुवेर की जो पावै ताहि तुरत लुटावत
बिलंब उर धारै ना । कहैं पदमाकर सुहेम हय हाथिन के हलके
हजारन के बितर विचारै ना ॥ गजगंजबकस महीप रघुनाथ
राव याहि गज धोखे कहूं काहु देख्यहारै ना । याही डर पिरिजा
गजानन को गोइ रही गिरि ते गये तैं निज गांढ तैं उतारै ना ॥

५-दो०-गनत न कछु पारस पदुम चिंतामनि के ताहिं ।

निदरत मेरु कुबेर को तुव जाँचक जग माहिं ॥

सूचना-केवल सुन्दरता, शूरता और उदारता ही नहीं वरन् और वस्तुओं में भी अत्युक्ति हो सकती है । जथा: -

(प्रेमात्युक्ति)

कागद पर लिखत न बनत कहत सँदेस लजात ।

कहिहै सब तेरो दियो मेरे हिय की बात ॥

(विरहात्युक्ति)

गोपिन के अँसुवन भरी सदा असोस अपार ।

डगर डगर नै है रही बगर बगर के वार ॥

(इसी प्रकार और भी समझ लो)

अत्युक्ति सब वस्तुओं की हो सकती है, परन्तु सुन्दरता, शूरता और उदारता का अत्युक्ति अत्यन्त आनन्ददायक होती है, इसी से परिभाषा में केवल इन्हीं के नाम गनाये गये हैं ।

(१०३)--निरुक्ति

दोहा-नामन को निज बुद्धिबल कहियं अर्थ बनाय ।

ताको कहत निरुक्ति हैं भूषण जे कविगय ॥

बिचरण-जहां किसी नाम का कोई कल्पित अर्थ किया जाता है उसे निरुक्ति कहते हैं । जैसे:-

दोहा-कविगण को दारिदरिद्र याही दल्यो अमान ।

याते श्री शिवराज को सरजा कहत जहान ॥

२-हरयो रूप इन मदन को याते भो शिव नाम ।

लियो बिरद सरजा सबल अगि गज दलि संग्राम ॥

- १-छीनी छाबि मृग मोन की कहौ कहां की रीति ।
 नामहिं में नहिं नीति का कहैं नयन ये नीति ॥
- ४-बिरही नर नागन को यह रितु चाय चबाय ।
 'दास' कहैं याको सरद याही अर्थ सुभाय ॥
- ५-रखत न हित कहूँ काहु सों बन बन करत विहार ।
 यहै समुझि विधि ने कच्यो मोहन नाम तुम्हार ॥
- ६-तनु विचित्र कायर बचन अहि भहार मन घोर ।
 तुलसी हरि भये पच्छधर ताते कह सब मोर ॥

(१०५)-प्रतिषेध

- दाहा-जहां जु बस्तु प्रसिद्ध का प्रगटहिं करै निषेध ।
 कवि कोविद तासों कहत अलंकार प्रतिषेध ॥

(यथा)

- १-जीत्यो जाहि विरोध करि सो विगथ मैं नाहि ।
 मैं हौं रावण राम तुम का ममुझ्यौ मन माहि ॥
- २-बेगि चलैं रसखान बलाय ल्यौ क्यौं अभिमान ते भौहँमरोरत
 प्यारे पुरंदर होय न प्यारी अबै पल आधिक मैं ब्रज बोरत ।
- ३-छुटी न गाँठि जु राम सों तियन कहौ तेहि ठाहिं ।
 सिय कंकण को छोरिबो धनुष तोरिबो नाहिं ॥
- ४-तिपटहि द्विज करि जानेसि माहीं । मैं जस विप्रसुनावहुँ तोहीं ।
- ५-जीतेहु जे भट संगर माहीं । सुनु तापस मैं तिन सम नाहीं ।
- ६-अंगद कह दसबदन सों यह न चोरिबो नारि ।
 नर बानर सों राम संग प्रान हरन है रारि ।

सूचना-शुद्धापन्हति, पर्यम्नापन्हति और प्रतिषेध में भेद यह है कि:-

- १-शुद्धापद्धति में सत्य वस्तु को छिपाकर उसके स्थान में उसी के सम किसी दूसरी वस्तु की कल्पना की जाती है ।
- २-पर्यायपद्धति में एक वस्तु का गुण किसी दूसरी वस्तु में आरोपित किया जाता है ।
- ३-प्रतिषेध में प्रतिद्वन्द्व वस्तु का निषेध होकर मनमाना कल्पना की जाती है ।

(१०६)—विधि

दो०—जहां सिद्ध ऊ अर्थ को करिये बहुरि विधान ।
अलंकार विधि ताहि सों कहत सबै मतिमान ॥

(यथा)

- १—विश्वभरन पोषण कर जोई । ताकर नाम भरत अस होई ।
- २—जाके सुमिरन ते रिपु नासा । नाम शत्रुहन वेद प्रकासा ।
- ३—सेवक सो जो करै सेवकाई ।
- ४—दीनदयाल हरी हमरो दुख ता । तोहि दीनदयाल सराहौं ।
- ५—कोकिल है कोकिल तवै रितु में करिहै टेर ।
- ६—मुरली मुरली होति है मोहन के मुख लागि ।

इन उदाहरणों में प्रत्येक नाम स्वयं सिद्ध है, परंतु कवि ने पुनः उसका विधान किया है । ' निरुक्ति ' में मनमाना अर्थ कल्पित किया जाता है । ' विधि ' में सिद्धार्थ ही पुनः कहा जाना है ।

(१०७)—प्रमाण

दो०—कहुँ प्रतप्त अनुमान कहुँ कहुँ उपमान दिखाय ।
कहुँ बड़नकी बात लै, आत्मतुष्टि कहुँ पाय ॥
अनुपलब्धि संभव कहुँ कहुँ लहि अर्थापत्ति ।
कवि प्रमाण भूषण कहैं बात जो बरपैं सति ॥

बिबरण—‘ सत्य कथन ’ को ‘ प्रमाण ’ कहते हैं । इसके आठ भेद हैं । यथा:—

१—(प्रत्यक्षप्रमाण)

दो०—इंद्रिय अरु मन ये जहां विषय आपनो पाय ।

ज्ञान करै, प्रत्यक्ष तेहि कहैं सकल कविराय ॥

(यथा)

१—छप्पय—सर सर हंस न होत बाजि गजराज न शर शर ।

त० तरु सुफल न होत नारि पतिव्रता न घर घर

तन तन सुमति न होति मलैगिरि होत न बन बन

फन फन मणि नहि होत मुक्तजल होत न घन घन ।

रन रन सूर न होत हैं जन जन होत न भक्त हरि ।

कविरहरि निरख कवित्त कहि सय नर होत न एक सरि ।

२—तात् जनक तनया यह साई । धनुषयज्ञ जोई कारण होई ।

पूजन गौरि सखी लै आई । करत प्रकाश फिरति फुलवाई ।

३—कुल को कुलीन होय उपकार लीन होय पंडित प्रवीन होय

दोष सब खाई है । उदित उदार होय, पूर परिवार होय

चाबुक सवार होय बैद बुध जोई है । बलको निधान होय,

बोल को प्रमान होय सब गुन थान होय शील संत सोई है ।

सूर होय बीर होय सुन्दर शरीर होय लक्ष्मी न होय ताहि

पूछत न कोई है ।

सूचना—इन उदाहरणों में कही हुई बातें सब कोई जानता है कि प्रत्यक्ष सत्य मानी जाती है ।

२—(अनुमानप्रमाण)

दो०—चिन्हहि लखि अनुमान बल बस्तुहि लीजै जानि ।

तहँ अनुमान प्रमाण सब भूषण कहैं बखानि ॥

(यथा)

१-नाचि अचानक ही उठे बिन पावस बन मोर ।

जानति हौं नन्दित करी यहि दिसि नन्दकिसोर ॥

२-यह पावस तम, सांझ नाँह है दुचिती मति भूल ।

कोक अशोक बिलांकिये रहौ कोकनद फूलि ॥

३-धुवाँ देखि सब कोउ करत आगी को अनुमान ।

४-जिन लोखरी मारी नहीं कहा मारिहै शेर ?

३-(उपमानप्रमाण)

दो०-उपमा के सादृश्य ने बिन देखो उपमेय ।

जानियरै, उपमान सो अलंकार है ज्ञेय ।

(यथा)

१-दो०-सहस घटन में लखि परै ज्यों एकै रजनीश ।

त्यों घट घट में ' दास ' हैं प्रतिबिंबित जगदीश ॥

२-सो रोहिणि जानहु सखे जो है शकट समान ।

४-(बड़ों की बात वा शब्द प्रमाण)

दो०-जहां शास्त्र अरु बड़न को बचन प्रमाण बखान ।

सोई शब्द प्रमाण है भाषन सुकवि सृजान ॥

(यथा)

१-छप्य-मरै सूम सगदर मरै वह कहर टट्टू ।

मरै हठोली नारि मरै वह पुरुष निखट्टू ।

ब्राह्मण सो मरि जाय हाथ लै मदिरा प्यावै ।

भूत वही मरि जाय जो कुल में दाम लगावै ।

बेनियाउ राजा मरै नींद धड़ाधड़ सोइये ।

बैताल कहै विक्रम सुनो इनके मरे न रोइये ।

२-देखु विचार सार का सांचो कहा निगम निजु गायो ।

भजहि न अजहुँ समुझि तुलसी तेहि जेहि महेश मन लाया ।

३-सो०-तुम जु हरी पर बाल, ताते हम यहि हाल में ।

नाथ बिदित सब काल, जो हन्नति सो हन्यते ॥

४-वेद पुराण संत अस गावा । जो जस करै सो न सफल पावा ।

५-(आत्मतृष्टि प्रमाण)

दो०-अपने अंग स्वभाव को दृढ़ विश्वास जहाँहि ।

आत्मतृष्टि प्रमाण कबि कोविद कहैं तहाँहि ॥

(यथा)

१-मोहि भरोसो रीझिहौ, उझकि झांकि इकवार ।

रूप रिभावनहार वह ये नैना रिझवार ॥

२-मोहि अतिशय प्रतीत जियकेरी । जेहि सपने परनारि न हेरी ॥

६-(अनुपलब्धि प्रमाण)

दो०-जानि परै नहि वस्त कछ अनुपलब्धि है सोय ।

बिबरण-जहाँ कोई कारण नहीं मिलता वहाँ किसी कल्पित कारण को मान लेते हैं । उसे ही अनुपलब्धि प्रमाण कहते हैं ।

(यथा) *

बालि बध्यो बलिराज बँध्यो कर शूली के शूल कपालथली है ।

काम जसो जरकाल पसा बँध सेतु धरसो विष हालहली है ।

* सू०-नीचे कहे हुए उक्त की घटनाओं का जब कोई मुख्य कारण समझ में न आया तब कवि ने कह दिया कि “ अदृष्टबली है ” । ऐसे ही प्रमाणको अनुपलब्धि प्रमाण कहते हैं ।

स्निग्ध मध्यो कल काली नथ्यां कह केशवचंद कुचाल बली है । रामहु को हरी रावण बाग जहूँ दिशि एक अद्भुत बली है ।

७—(संभव प्रमाण)

दो०—जहँ संभव है वस्तु को संभव जानो ताहि ।

बिबरण—जहां किस बात का होना संभवित हो सकता हो, उसे संभव प्रमाण कहने हैं । (इसमें यह जरूरी नहीं है कि वह बात होवे भी अवश्य, केवल उसकी संभावना मात्र से मतलब है) । (संभावना अलंकार देखो)

पृष्ठ १८०

(यथा)

१-दो०—सुनी न देखी तब सरिम हे वृषभानुकुमारि ।

जानत हौं कहूँ होयगी बिपुला धरनि विचारि ॥

२-उपजैंगे, ह्वैहैं अजौं, हिंदूपति से दानि ।

कहिय काल निगमवाधि लखि बड़ी बसुमती जानि ॥

ठाकुर कहत कछु कांठन न जानो याहि हिम्मत किये ते कहो कहा न सु शर जाय । चारि जने चागिहूँ दिखा ते चारों कोन गहि मेरु को हलाय कै उखारैं तो उखार जाय ।

८—(अर्थापत्ति प्रमाण)

दोहा—जहां अर्थ में अर्थ का और जोग ते थाप

अर्थापत्ति प्रमाण तहँ कहैं मुकवि सह दाप ॥

बिबरण—जहां किसी अर्थ को किसी और ही योग से स्थापित किया जाय ।

(यथा)

१-दो०-इतो पराक्रम करि गयो जाको दूत निशंक ।

कंत कहो दुस्तर कहा ताहि तोरिबो लंक ॥

२-पिय तेहिते जीतब संग्रामा । जाके दुन केर अस कामा ।

(१०८)-हेतु * (द्विविधि)

(प्रथम)

दोहा-कारज कारण संगही जहँ वरगैं इकठौर ।

प्रथम हेतु तासों कहत जिनकी मति सिरमौर ॥

१-भाग जगै लछिराम दुहून में छाये तरंग सुप्रीति भली के ।

रामसुरूप निहारत ही उर मोद मढ़े मिथिलेश लली के ।

२-उयो अरुण अवलोकहु ताता । पंकज लोक कोक सुखदामा ।

३-जासु विलोकि अलौकिक शोभा सदजपुनीत मोर मन लोभा ।

४-अरुणोदय सकुच कुमुद उदगण ज्योति मलीन ।

५-उयो भानु विनश्रम तमनासा । दुरे नखत जग तेज प्रकासा ।

६-आपुहिँ सनि खद्योत सम रामहिँ भानु समान ।

परम बचन सुनि काहि असि बोला अति खिसियान ।

(दूमरा)

दो०-कारण कारज ये जबै तंसस एकता पाय ।

हेतु अलंकृत दूसरो ताहि कहैं कविराय ॥

बिबरण-जहां कारण ही को कार्यरूप वर्णन करते हैं, वह दूसरा ' हेतु ' है ।

* इस ' हेतु ' अलंकार ' में ' काव्यलिंग ' के विरुद्ध केवल वरपादक हेतु का ही वर्णन होता है ।

(यथा)

-मेरी रिद्धि समृद्धि है तुव दाया रघुनाथ ।

-परम पदारथ चारहु श्री राधागोविन्द ।

१-कोऊ कोरि क संग्रहौ कोऊ लाख हजार ।

मो संपति यदुपति सदा विपति विदारनहार ।

४-मोहि परमपद मुक्ति सब तो पदरज घनश्याम ।

तीन लोक को जीतिवो, मोहि वसिवो ब्रजग्राम ।

—:~:—

तीसरा पटल

(उभयालंकार)

भूषण इक तें अधिक जहँ सो उभयालंकार ।

संस्मृष्टि रु संकर तहां उभय भेद निरधार ॥

तिल तंदुल के न्याय सों है संस्मृष्टि बखान

नीर छीर के न्याय सों संकर कहत सुजान ॥

बबरण-जहां एक से अधिक अलंकार आजाते हैं, ऐसे

ग को उभयालंकार कहते हैं । इस मिश्रण के दो भेद हैं-

संस्मृष्टि (२) संकर ।

१-संस्मृष्टि

जुदे जुदे भासैं सकल अपने अपने ठाम ।

तिल तंदुल की रीति करि, सो संस्मृष्टि सुनाम ॥

बबरण-जैसे तिल और चावल मिला देने से भी अपने

रंग से प्रत्यक्ष ही अलग अलग देख पड़ते हैं, इसी प्रकार,

हुए अलंकार यदि मिले हुए होने पर भी अपनी सिद्धि-

के लिये एक दूसरे की अपेक्षा न रखते हों तो वह मिश्रण संसृष्टि कहलावेगा। इसके तीन भेद हो सकते हैं:—(१) शब्द + शब्द (२) शब्द + अर्थ (३) अर्थ + अर्थ।

१—(शब्दालंकार+शब्दालंकार)

शब्दालंकार के वर्णन में 'तुरमुती तहखाने' वाला कवित्त देखिये। उसमें, छेकानुप्रास, लाटानुप्रास, वृत्तानुप्रास सब पृथक् २ दिखाई पड़ते हैं।

२—(शब्दालंकार+अर्थालंकार)

लसत मंजु मुनि-मंडली मध्य सीय रघुनंद ।

ज्ञान-सभा जनु तनु धरे भक्ति सच्चिदानंद ॥

इसमें पूर्वार्द्ध में 'म' अक्षर का अनुप्रास है 'जनु' शब्द से उत्प्रेक्षा प्रगट है। मुनि मंडली, सीय, रघुनंद कहके पुनः क्रमसे ज्ञानसभा, भक्ति और सच्चिदानंद क्रम से कहकर क्रमालंकार स्पष्ट किया गया है।

दो०—दंड यतिन कर भेद जहँ नर्तक नृत्यसमाज ।

जीतहु मनहि सुनिय अस रामचंद्र के राज ॥

यहां नर्तक और नृत्य में 'न' का और रामचंद्र और राज में 'र' का अनुप्रास है और कुल दो हासे परिसंख्या अलंकारसिद्ध है।

३—(अर्थालंकार+अर्थालंकार)

दो०—ससि सो उज्ज्वल मुख लसै, खंजन हैं मनु नैन ।

अधर नासिका बिंब शुक, मधुर मुधा से बैन ॥

यहां प्रथम चरण में पूर्णोपमा, दूसरे में उत्प्रेक्षा, तीसरे में क्रम, और चौथे में पुनः पूर्णोपमा, प्रत्यक्ष और अलग अलग स्पष्ट देखे जाते हैं। पुनः—

नील सरोरुह श्याम, तरुण अरुण बारिज नयन ।

करो सो यम उर धाम, सदा क्षीर-सागर-सयन ॥

यहां प्रथम दो चरणों में लुप्तोपमा, और चौथे चरण में पर्यायोक्ति अलंकार है ॥

२-संकर

दो०-पय पानी की रीति तें होयँ परस्पर लीन ।

ताकहँ संकर नाम दै भाषत सुकवि प्रवीन ॥

बिबरण—दूध पानी की तरह से मिले हुए (पृथक् न होने योग्य) अलंकार हों उस मिश्रण को 'संकर' कहते हैं । इसके चार भेद होते हैं—(१) अंगांगी भाव, (२) समप्राधान्य (३) सन्देह और (४) एक वाचकानुप्रवेश वा ' एकपद संकर '

१-अंगांगी भाव

दो०-बीज वृक्ष के न्याय करि इक इक को अंग होय ।

सो अंगांगी भाव है कवि गुलाब मति जोय ॥

बिबरण—जहां बीज वृक्ष के न्याय से मिले हुये अलंकार हों उसे 'अंगांगीभाव संकर' कहते हैं अर्थात् जहां एक के बिना दूसरा सिद्ध ही न हो सके जैसे बिना बीज के वृक्ष और बिना वृक्ष के बीज नहीं हो सकता । यथा:—

दो०-हलत पवन ते तरुन तर दीखत छाँह अचूक ।

शशि-हरि ने तम-गज इनो मानो ताके दूक ॥

(पवन से हिलते हुये वृक्षों के नीचे जो छाया देख पड़ती है वह मानो शशिसिंह के मारे हुए तमगज के डुकड़े हैं)

यहां 'मानो' शब्द से उत्प्रेक्षाअलंकार मुख्य है, सो अंगी है और शशिसिंह तथा तमगज 'अमेव रूपक' उसके अंग हैं ।

दो०-तुव अरितियगण बन भजत लूटी सब बटमार ।

अधर बिब दुति गुंज गुनि हरे न मुकुता हार ॥

(तेरे शत्रुओं की स्त्रियों को बन में भागते समय लुटेरे भीलों ने लूट लिया, परन्तु ओंठों की दुति से लाल हुए गोतियों को गुंजा समझ कर मोतियों के हार न लूटे)

यहां ओंठों के संग से मोती गुंजा से होगये यह तद्गुण अलंकार है, मोतियों के हार को गुंजा का हार समझकर लुटेरों ने नहीं लूटा, इसमें भ्रांति अलंकार है । यहां तद्गुण के जोर से भ्रांति की सिद्धि है, और भ्रांति के जोर से तद्गुण की सबलता प्रगट हुई । अतः अंगांगी भाव सङ्कर है ।

पिहित अलंकार के वर्णन ' में राम जानकी ' घाला सबैया देखो । वहां तीन चरणों तक 'पिहित' अंग भाव है तब चौथे चरण में 'अप्रस्तुप्रतशंसा' अंगी भाव है ।

(पुनः)

साधु चरित शुभ सरिस पासू । निरसविशद गुणमयफल जासू ।
जो सहि दुख पर छिद्र दुरोवा । बंदनीय जेहि जग जस पावा ॥
इसमें श्लेषालंकार उपमा का अंग है । साधुचरित और कपास सरिस है यह उपमा है । उसके फल निरस, विशद और गुणमय हैं । इन तीन विशेषगुणों के श्लिष्ट अर्थसाधुचरित और कपासफल दोनों पर लगते हैं तब उपमा सिद्ध होती है । छिद्र शब्द भी श्लिष्ट है ।

२-(समप्राधान्य)

दो०-दिन दिनपति के न्याय करि सँग प्रगटै सँग भासु ।

नाम सु समप्राधान्य है कवि गुलाब कह तासु ॥

बिबरण-दिन और सूर्य की तरह साथ ही प्रगटें और साथ ही लख पड़ें यह समप्राधान्य संकर है । यथाः—

दो०—रघुपति कीरति कामिनी क्यों कह तुलसी दासु ।

शरद प्रकास आकाश छवि चारुचिबुक तिल जासु ॥

इसमें क, स, और च के अनुप्रास, प्रतीप और रूपक दोहा पढ़ते ही भासित हो जाते हैं—

पुनः—

सेये सीता-राम नहिं भजे न संकर गौरि ।

जनम गंवायो वादि ही परत पराई पौरि ॥

इसमें स, र और प के अनुप्रास और दृष्टान्त एक साथ ही भासते हैं ।

३—(संदेह)

एक मिटाये दूजो भासै । दूजो त्यागे प्रथम प्रकासै ।

बोध न होय कौन को लीजै । तहँ संकर संदेह भनीजै ॥

द्विवरण—जहां पर दो वा अधिक अलंकार लख पड़ें, पर निश्चय न हो सके कि किस का ग्रहण करें वा किसका त्याग करें। एक के लिये न तो कोई साधक प्रमाण हो । और न दूसरे के लिये निषेध वा बाधक वाक्य हो । ऐसे मिश्रण को 'संदेह संकर' कहते हैं ।

यथा:—

‘सुनि मृदु बचन मनोहर प्रियके । लोचन नलिन भरे जल सियके’ ।

इसमें 'लोचन नलिन' में उपमा माने' वा रूपक माने ऐसा संदेह होता है ।

मनोहर प्रिय के मृदुबचनों से दुःख होना—भले उद्योग से बुरा फल होना—विषम अलंकार है, अथवा 'लोचननलिन भरे जल सिय के' इस कार्य के मिस सीताजी के दुःख रूपी कारण का कथन होने से अप्रस्तुत प्रशंसा है । न तो किसी के खंडन की कोई सामग्री इसमें है और न मंडन ही की । अतः निश्चय नहीं कह सकते कि कौन अलंकार मानना चाहिये ।

दो०—जैसै निर्मल कांति अरु रतन भरो गंभीर ।

तैसे विधि या जलाधि को क्यों न कियो मधुनीर ।

यहां समुद्ररूप प्रस्तुत में अप्रस्तुत की प्रतीति होने से क्या यह, समासोक्ति ' है, वा समुद्ररूप अप्रस्तुत द्वारा उसके समान गुणवाले प्रस्तुत किसी धनी पुरुष की प्रशंसा प्रतीत होने से क्या यह ' अप्रस्तुत प्रशंसा ' है, ऐसा संदेह होने से यह ' संदेह संकर ' है ।

दो०—नयनानंददायी लसत यह शाशि विम्ब प्रकाश ।

अजहुँ न तम बिनस्यो कहा ? जेहि रोकी सब आश ॥

इसमें रूपकातिशयोक्त, रूपक, दीपक, तुल्ययोग्यता और समासोक्ति इत्यादि कई एक अलंकारों का संदेह हो सकता है ।

४—(एक वाचकानुप्रवेश)

दो०—न्याय नृसिंहाकार करि एकहि पद के माहिं ।

युग मूषण, इक वाचकानुप्रवेश कहि ताहि ॥

विबरण—नृसिंहाकार न्याय से (एकही देह में मनुष्य और सिंह की आकृतिवत्) जहाँ एक ही पद में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों हों वहाँ एक वाचकानुप्रवेश (वा संक्षेप से ' एक पद संकर ' कहा जाता है । जैसे—

दो०—हे हरि दीन दयाल हौ मैं मांगौं सिर नाय ।

नुव पद—पंकज आसरे मन मधुकर लगिजाय ॥

इसमें ' पदपंकज ' में तथा ' मन मधुकर ' में शब्दालंकार अनुप्रास और अर्थालंकार रूपक का सङ्कर है ।

पुनः—सबैया ।

केतकि धूरि धरे सिर ऊपर गुंजत मंजु सु कुंजन में ।

दान भरै मधुनीर, समीर जँजूर सु आवत है छन में ।

मत्त छुटे नव पंकज थान ते दर्प अखंड करे मन में ।
 तोरि कै सौरभ सांकर को यह भृङ्ग मतंग फिरै बन में ।
 यहां 'भृंग मतंग' इस एक ही पद में रूपक और वृत्त्या-
 नुप्रास का संकर है ।

पुनः—सोइ जल अनल अनिलसंघाता । होय जलद् जगजीवनदाता
 यहाँ जलद्, जग, जीवनदाता में अनुप्रास भी है और
 जीवन शब्द अर्थश्लेष होने से अर्थालंकार भी है, क्योंकि जीवन
 का अर्थ है 'पानी' और 'प्राण' ।

सूचना—थोड़ा सा नमूने के तौर पर लिख दिया गया । सब अलंकारों
 के सब प्रकार के 'संकरों' के उदाहरण एकत्र दिखाना असंभव ही है ।

३—[रसवत् अलंकार]

यद्यपि कितने ही कवि सात प्रकार के 'रसवत् अलंकार'
 भी मानते हैं, परंतु हम उन्हें अलंकार नहीं मानते । इसी से
 उन्हें हमने नहीं लिखा ।

(चौथा पटल)

दोषकोष

पाठकों को जानना चाहिये कि संसार में ऐसी कोई वस्तु
 नहीं जिसमें गुणही गुणहों और दोष न हों । इसी सिद्धान्त के
 अनुसार इन अलंकारों में भी कुछ दोष हुआ करते हैं । उन्हें
 भी समझ लेना चाहिये ।

(१)—शब्दालंकारों के दोष

शब्दालंकारों में सर्वप्रधान 'अनुप्रास' और "यमक" हैं,
 इसलिये इनके ही दोष खूब समझ लेना चाहिये ।

क—(अनुप्रास के दोष)

अनुप्रास अलंकार के मुख्य तीन दोष हैं:—(१) प्रसिद्धाभाव (२) वैफल्य और (३) वृत्त्यविरोध ।

१—प्रसिद्धाभाव

दो०—अप्रमाण बातें कहै अनुप्रास के हेत ।

दोष प्रसिद्धाभाव तेहि भाषैं सुकवि सचेत ॥

(यथा)

रविजा कहे ते रण जीतै जाय जोरि जोरि, यमुना कहे ते यमुनाके हेत हेरि बिन । भानु होति कीरति प्रभानुके परमपुंज भानुतनया के कहे ते ही फेर फेर बिन । ग्वाल कबि मंजु मारतंड नंदिनी के कहे, महिमा मही में होत दीनन के डेर बिन । दरि जात दारिद बिनेशतनया के कहे, कहत कलिन्दी के कन्हैया होत डेर बिन ।

इसमें श्री यमुना जी की महिमा का वर्णन है । यमुना की महिमा से 'यद्यपि सब कुछ होसकता है, तो भी 'रविजा' कहने से 'रणजीतै', 'यमुना, कहने से, यम, के नाके बंद हो जायँ, 'भानुतनया' कहने से 'भानु, हो जाय, 'मारतंड-नंदिनी, कहने से 'महिमा, बढ़े, 'दिनेशतनया, कहने से 'दारिद दर जाय' और 'कलिन्दी, कहने से 'कन्हैया हो जाय, इन बातों का कोई प्रमाण नहीं है । कबिने केवल अनुप्रास के हेत ही ऐसा कहा है । अतः यह प्रसिद्धाभाव दोष है ।

२—वैफल्य

चमत्कार का होय अभाव । तेहि वैफल्य कहैं कविराव ॥

(यथा)

का 'सरदार' कहौं तोहि सौ सरदार सबै सरदार सचा हैं ।
सासन सासन सासन में हम सासन सासन सासन चाहैं ।
काननदी ननदी ननदी ननदी ननदी जु न दीन दचा हैं ।
का बलमा बलमा बलमा बलमा बलमा बलमा बलमा हैं ।

यहां वाच्यार्थ में कोई चमत्कार नहीं, केवल शब्दाडम्बर मात्र है। अतः अनुप्रास व्यर्थ वा विफल है। ऐसे विफल अनुप्रास 'ग्वालकवि' और 'पञ्जनेश' कवि की कविता में बहुधा पाये जाते हैं।

३-वृत्ति-विरोध *

उपनागरिकादि वृत्तियों के नियमविरुद्ध वर्णविन्यास को वृत्तिविरोध दोष कहते हैं।

(यथा)

१-दो०-पञ्चवटी गुणगण जटी ठटनि ठटी नटरास ।

अयट घटी दुख सुख पटी कुटी करो तहँ वास ॥

२-सवेया—एक घटी न घटी सिय के दुख राम रहे मुनि के निकटी । घट के सुत सो हित नारि जटी मनु धूरजटी नहि काम छटी । दुपटी फटिजात जहां तम की प्रगटी घट में गुरुब्रान गटी । कहिये कहूँ मुक्ति हटी बरटी जहं पर्णकुटी रघुनाथ ठटी ।

३-दो०-तौ लागि या मन सदन महुँ हरि आवैं कोहि बाट ।

निपट विकट जौ लौं जुटे खुलैं न कपट कपाट ॥

* सूचना—'पञ्जनेश' कवि की कविता में यह दोष प्रायः पाया जाता है। इस कवि ने शृङ्गार वर्णन में परुषा वृत्ति टपगी शब्दों का बहुतायत से प्रयोग किया है।

४-सब जाति फटी दुख की दुपटी कपटी न रहैं जहँ एक घटी ।
निघटी रुचि माचु घटी हु घटी जग जीव जतीन की छूटी तटी ।
अघ ओघ की बेरी कटी विकटी निकटी प्रकटी गुरु ज्ञान गटी ।
चहुँ ओरन नाचति मुक्तिनटी गुण धूरजटी बन पंचबटी ॥

यह शांत रस संबंधिनी कविता 'कोमला' वृत्ति में होनी चाहिये थी, सा 'परुषा' वृत्ति में की गई है। 'राम' कवि कृत हनुमन्नाटक में ऐसी कविता बहुत है।

(ख) — यमक का दोष

यमकालंकार के नियमानुसार यमक किसी छंद के एक चरण में वा दो चरणों में वा चारों चरणों में होना चाहिये। इसके विरुद्ध यदि तीन चरणों में यमक हो तो 'अप्रयुक्त' दोष कहलाता है। जैसे:—

दो०—तोपर बारों उरबसी सुनु राधिके सुजान ।

तू मोहन के उरबसी, है उरबसी समान ॥

यहां 'उरबसी' शब्द का यमक केवल तीन चरणों में है।

अतः अप्रयुक्त दोष है।

दो०—वाणीरूप अनूप वर, वरण वाम ते वाम ।

कहैं वाम बिधि विधिकरी, वामदेव धनु वाम ॥

यहां वाम शब्द का यमक भी तीन ही चरणों में है। अतः अप्रयुक्त दोष है।

(२) — अर्थालंकारों के दोष

१—(उपमा के दोष)

अर्थालंकारों में मुख्य 'उपमा' अलंकार है। अतः इसके दोषों को भली भांति समझ लेना चाहिये। उपमालंकार में मुख्यतः ६ दोष माने गये हैं। यथा:—

१—(न्यूनता)

जहां उपमेय से उपमान की न्यूनता दर्शित हो, उसे न्यूनता दोष कहते हैं। इसके तीन भेद हैं—(क) जातिगत (ख) प्रमाणगत (ग) धर्मगत ।

क—(जातिगत न्यूनता का उदाहरण)

दो०—चतुर सखिन के मृदु बचन बासर जाय विताय ।

पै निशि में चंडाल लौं मारत यह शशि आय ॥

यहां चन्द्रमा का उपमान चंडाल कहा गया है। यह जातिगत न्यूनता दोष है।

ख—(प्रमाणगत न्यूनता का उदाहरण)

‘सोहत अग्निफुलिंग लौं यह रविरथ नभ थान’

यहां सूर्य के रथ को अग्नि की चिनगारी की उपमा दी गई है। यह बड़ी बस्तु की छोटी बस्तु से उपमा है। इसी को प्रमाणगत न्यूनता कहते हैं।

ग—(धर्मगत न्यूनता का उदाहरण)

दो०—कृष्ण अजिन पट लसत मुनि शुचि मौंजी युत गात ।

नील मेघ के निकट जिमि नभ दिनमणि विलसात ॥

यहां मुनि उपमेय के काली मृगछालारूप धर्म का तो सूर्य उपमान के नीलमेघ की निकटता रूप धर्म कहा गया है, परन्तु मौंजी के समान दूसरा धर्म विजली और भी कहना चाहिये था, सो नहीं कहा गया। यही धर्मगत न्यूनता दोष है।

२—(अधिकता)

जहां उपमेय से उपमान की अधिकता प्रदर्शित हो, वहां

‘अधिकता’ नामक दोष होता है। न्यूनता की तरह अधिकता भी तीन भांति की है :—

क—(जातिगत अधिकता)

दो०—कमलासन आसीन यह चक्रवाक विलसाहि ।

यहां चक्रवाक की उपमा ब्रह्मा से दी गई है। यह अधिकता दोष है। नीच पक्षी का उपमान अति उच्च देवता को ठहराना केवल हास्यास्पद है।

ख—(प्रमाणगत अधिकता)

जहां किसी छोटे उपमेय की उपमा अत्यंत बड़े और भड़े उपमान से दी जाय। जैसे नख की उपमा खाँड़े से वा दाँत की उपमा बज्रशिला से।

ग—(धर्मगत अधिकता)

दो०—लसत पीतपट चाप कर मनहर बपु घनश्याम ।

तडित इन्द्रधनु शशि सहित ज्यों निशि में घनश्याम ॥

यहां उपमेय श्री कृष्ण के पीताम्बर तथा धनुष के स्थान पर उपमान नीलघन बिजली तथा इन्द्रधनुष सहित कहा गया सो ठीक है, किन्तु उपमान चन्द्र सहित कहा गया है इसके जोड़ की वस्तु (शंख) उधर कृष्ण के पास कथन नहीं की गई, अतः उपमान में अधिकता है।

३—(लिंगभेद) और ४—(वचन भेद)

दो०—कहे जायँ कहु कौन विधि या नृपके गुणकूल ।

मधुरे वच हैं दाख लौं, चरित चांदनी तूल ॥

यहां उपमेय ‘वच’ एक वचन पुल्लिंग और क्रिया बहुवचन है।

‘साख’ उपमान स्त्रीलिङ्ग और एकवचन है। ‘चरित’ पुल्लिङ्ग और बहुवचन है, उपमान चाँदनी एकवचन और स्त्रीलिङ्ग है। यह अनुचित है। अतः दोषरूप है।

पुनः—दैत समान लगै अति दाहण चैत की चाँदनी रामे सिया बिन।

पुनः—दो०—मनमोहन तन घन सघन रमणि राधिकामोर।

श्रीराधामुख चन्द को गोकुलचन्द चकोर॥

यहां ‘राधिका’ स्त्रीलिङ्ग के लिये ‘मोर’ पुल्लिङ्ग की उपमा अनुचित है।

५—(कालभेद)

उपमेय के साथ और काल की क्रिया लाना, उपमान के साथ और काल की। यथा:—

दोहा—रण में इमि शोभित भये राम बाण चहुँ ओर।

जिमि निदाघ मध्यान में नभ रबिकर खर घोर॥

इसमें रामबाण इमि शोभित भये (भूतकालिक क्रिया) और जिमि रबिकर मध्यान में होते हैं (वर्त्तमानकालिक क्रिया का अध्याहार) अनुचित होने से दोषरूप है।

६—(पुरुषभेद)

जहां उपमेय को और पुरुष में और उपमान को और पुरुष में कहें। यथा:—

दो०—राजत हौ प्यारी ! रुचिर पट कुसुंभ तनुधारि।

लाल सुबाल प्रबालतरु—प्रभव लता अनुहारि॥

यहां ‘प्यारी’ उपमेय ‘मध्यमपुरुष’ में और ‘लता’ उपमान ‘अन्यपुरुष’ में है। यह अनुचित होने से दोषरूप है।

७-(विधिभेद)

जहाँ उपमेय और उपमान की विधि न मिलै । जैसे:-

नृप तव कीरति सम सदा दिनकर करै प्रकाश ।

सूर्य स्वयं ही सदा प्रकाशमान् है । कीर्ति सम प्रकाशित हो, ऐसा कथन नितान्त असंगत है ।

८-(अप्रसिद्धि)

ऐसी उपमा देना जैसी लोक में प्रसिद्धि न हो । जैसे:-

“ काव्य चंद्र रचना करत अर्थ किरण युत चारु ” ।

काव्य को चन्द्र और अर्थको किरण कहना अप्रसिद्धि दोष है । इसे ' असादृश्य ' भी कहते हैं ।

९-(असम्भव)

दो०-धनु मंडल सों परत है दीपत शर खर धार ।

ज्यों रवि के परिवेष तें परत ज्वलित जल धार ॥

यहां धनुष से छूटे हुए दीप्तिमान बाणों को सूर्यमण्डल से गिरती हुई ज्वलित जलधाराओं की उपमा दी जाने से असम्भव दोष है, क्योंकि ऐसा सम्भव ही नहीं है ।

१०-(उत्प्रेक्षा के दोष)

१-' उत्प्रेक्षा ' में मनु, जनु, मानो, जानो, ध्रुव, खलु, इष. शब्दों से ही सम्भावना स्फुरित हो सकती है, 'यथा', ज्यों, शब्दों से नहीं । अतः उत्प्रेक्षा में 'ज्यों', वा 'यथा' बाचक लाना दोष है । इसे ' नवाचकता, दोष कहते हैं ।

२-उत्प्रेक्षा के समर्थन को अर्थान्तरन्यास का कथन करना दूसरा दोष है जिसे 'अनुचितार्थता' दोष कहते हैं। जैसे:—
दो०-रक्षत हिमगिरि तमहिं मनु गुफा लीन रवि भीत ।

शरणागत छोटेहु पर करत बड़े जन प्रीत ॥

यहां अचेतन 'तम' को सूर्य से भय होना ही संभव नहीं, फिर हिमगिरि कृत रक्षा कैसी? तिसपरतुरा यह कि अर्थान्तर न्यास से उसी असंभव बात की पुष्टि करना मानो बिना आधार के चित्र खींचना है।

३-(समासोक्ति का दोष)

'समासोक्ति' अलंकार में समान विशेषणों द्वारा ही उपमान विशेष का प्रकाशन होता है, उसके लिये उपमान वाचक पद कहना एक दोष है, जिसे 'पुनरुक्तता' वा अपुष्टार्थता, कहते हैं जैसे:—
दो०-परस करत रवि करन दिसि लखि उर ताप जु आन ।

कामिनि अरु चिर दिवस-श्री ग्रहण कियो बहु मान ॥

यहां सूर्य और दिशा के वर्णन मात्र से नायकत्व और नायिकात्व (पुंलिंगता और स्त्रीलिंगता) प्रगट ही हो जाती है, फिर अप्रस्तुत का नायकात्व प्रगट करने के लिये 'कामिनी' शब्द का कथन नितान्त निष्प्रयोजनीय है।

४-(अन्योक्ति का दोष)

इस अलंकार में भी समान विशेषणों से ही प्रस्तुत प्रगट हो जाता है। उसके लिये कोई वाचक शब्द लाना 'पुनरुक्त' दोष है।



नीचे लिखी पुस्तकें हमारे यहां से मिल सकती हैं:-

विहारी बोधिनी बड़ी	...	...	...	२॥), २।)
सनेहसागर (कृष्ण चरित्र काव्य)	...	...	...	॥१)
विहारी-बोधिनी (केवल सप्तम शतक)	...	...	...	॥)
अनुवाद-शिक्षक	...	...	...	।)
अलंकार-चन्द्रिका	...	...	...	॥)
अघट-घटना	...	...	...	॥१)
सूक्तिसरोवर	...	...	...	२॥)
काशिका	...	...	...	॥)
केशव-कौमुदी (रामचन्द्रिका सटीक)	...	...	...	५)
रत्ने तारानी	...	...	...	॥)
ब्रह्मचर्य की वैज्ञानिक व्याख्या	...	...	...	१)
प्रियाप्रकाश (कविप्रिया सटीक)	...	...	...	२)

पता—

लाला भगवानदीन

साहित्यभूषण कार्यालय, काशी ।

निम्न लिखित पुस्तकें भी हमारे यहाँ तैयार हैं ।

लोअर प्राइमरी भूगोल पाठ	०)	तथा भाग २	॥)
लोअर प्राइमरी स्वास्थ्यविद्या	०)	ऐक्शन सौंग	०)
लोअर प्राइमरी प्रकृति पाठ	०)	फर्स्टबुक आफ रीडिंग की की	॥)
विद्यार्थी जीवन	०)॥	सेकेंड बुक आफ रीडिंग का नोट	०)
अपर इतिहास का नोट	०)॥	अपर लिटरेरी रीडर की की	०)
अपर भूगोल का नोट	०)॥	तथा मिडिल " " "	०)
अपर विज्ञान का नोट	॥)	मिडिल भूगोल का नोट पांचवां भाग	॥)
सब शिक्षकसुद्ध का नोट	॥)	तथा छठा भाग	॥)
निम्न शिक्षकसुद्ध का नोट	॥)	अपर स्वास्थ्य का नोट	०)॥
दिपिंगस थर्ड स्टैण्डर्ड रीडर का नोट	०)	मिडिल स्वास्थ्य का नोट	०)
फोर्थ स्टैण्डर्ड का नोट	॥)	थर्ड ऐक्शन सौंग	०)
फिफथ स्टैण्डर्ड का नोट	॥)	सदुपदेश	०)॥
सिक्स्थ स्टैण्डर्ड का नोट	१)	थर्ड स्वास्थ्य	०)
ऑगमैन फर्स्ट इयर रीडिंग	१)	अपर जौर्न की की	॥)
बुक का नोट	॥)	मिडिल विज्ञान का नोट	॥)॥
सेकेंड इयर रीडिंग बुक का नोट	०)	अपर और मिडिल व्याकरण का नोट	०)
थर्ड इयर रीडिंग बुक का नोट	॥)	लिटरेरी नं० १ का नोट	॥)
फोर्थ इयर रीडिंग बुक का नोट	१)	तथा २ का	०)
एलीमेण्टरी संस्कृत		न्यूहिन्दी रीडर पहिला भाग का नोट	०)
ग्रामर का नोट भाग १	॥)	दूसरा भाग	०)
		लिखना पढ़ना	०)

इनके सिवाय और भी सब प्रकार की पुस्तकें तथा नोट तैयार हैं, ॥) की पुस्तकें मँगानेवाले को डाइल्वर्च नहीं देना पड़ेगा । अधिक माल मँगानेवालों को अच्छा कमीशन दिया जायगा । पत्र द्वारा पूछ सकते हैं । बालाविचार-
(जियो के लिये अति उत्तम उपयोगी पुस्तक) दाम ॥)

रामसहायलाल, बुकसेलर,

मालिक विद्याप्रचारक बुकडिपो,

